ISSN NUMBER : 2455-9717
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
वर्ष : 4, अंक : 14
जुलाई-सितम्बर 2019
मूल्य 50 रुपये

# शिवना साहित्यिकी

बूढ़ी औरतें
पवित्र बिल्लियों की
ममियाँ हैं
या तो वे पायी जाती हैं
सिकुड़कर छोटी हुई झुर्राई हुई
सूखे जलस्त्रोत
सूखे फल जैसी
या मोटे
गोलमटोल बुद्ध जैसी
और जब वे मरती हैं
तो एक आँसू
गाल से ढुलककर
एक युवा औरत के
चेहरे की मुस्कान से
जा मिलता है

-तादेयुश रोज़ेविच

# अकाल में उत्सव

## की अपार सफलता के बाद शिवना प्रकाशन प्रस्तुत करता है पंकज सुबीर का नया उपन्यास

# जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था

## चुनौती बन कर खड़े वर्तमान समय के सबसे ज़रूरी प्रश्नों की सभ्यता समीक्षा के बहाने तलाश करता एक उपन्यास...

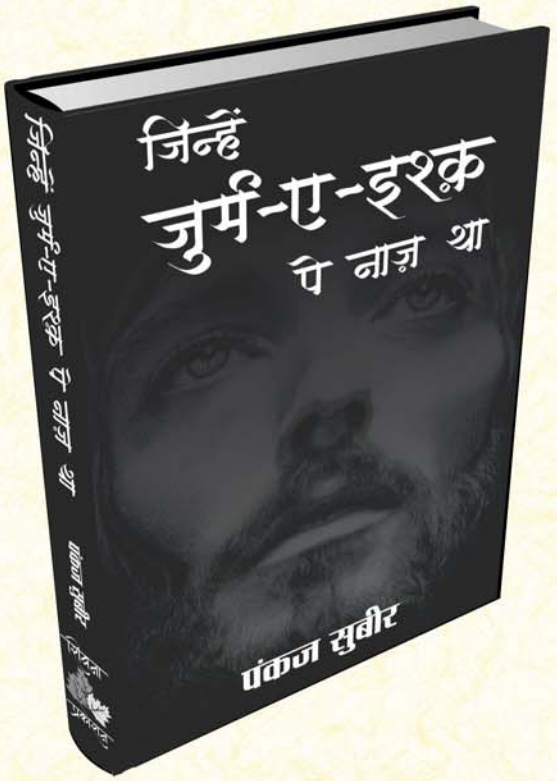


पंकज सुबीर का यह उपन्यास जिस समय में आया है, वह संकीर्णतावादी शक्तियों के और क्रूर होने का समय है। ऐसे समय में मानवता से, इंसानियत से इश्क़ करना भी एक प्रकार से बग़ावत करना है। यह उपन्यास उस बग़ावत को सामने लेकर आता है। जब आप इस उपन्यास को पढ़ते हैं तो पता चलता है कि यह केवल एक रात की कहानी नहीं है, यह नब्बे के दशक में कहीं प्रारंभ होकर यहाँ तक आता है। सांप्रदायिकता जैसे विषय पर इस समय लिखा जाना सबसे ज़रूरी है और पंकज सुबीर ने यह उपन्यास लिख कर वही ज़रूरी काम किया है।

-प्रज्ञा
( सुप्रसिद्ध कथाकार )

इस उपन्यास ने अंदर तक एकदम हिला कर रख दिया। ऐसी जानकारियाँ धर्म के बारे में, सदियों पहले की, विभाजन की, हिन्दू धर्म की, इस्लाम की, यहूदियों की, क्रिश्चियन की जो हमें पता ही नहीं थी। और बात सिर्फ पता होने न होने की नहीं, वो बातें, वो शिक्षाएँ जो हर धर्म का मूल है, अहिंसा, इंसानियत वो आज के धर्म मे तो कहीं दिखाई नहीं देते। ख़ैर, इस उपन्यास पर जितना लिखो कम है, और बहुत सारी भ्रांतियाँ दूर हुईं। हर नागरिक को जो वोट देता है, हर कलाकार को जो जागरूक है, सब लोगों को ये उपन्यास पढ़ना चाहिए।

-यशपाल शर्मा
( सुप्रसिद्ध अभिनेता )

पंकज सुबीर ने उपन्यास में सभी धर्मों के मूल तत्व, जिस पर हर धर्म टिका हुआ होता है, की पड़ताल की है। मूल तत्व जिसे हर धर्म ने भुला दिया गया है; जिससे हर धर्म का स्वरूप ही बदल गया है। पाँच हज़ार साल पहले के इतिहास, विभिन्न धर्मों पर किया गया शोध, हिन्दू धर्म की, इस्लाम की, यहूदियों की, क्रिश्चियन की, बौद्धों की, पारसियों की और जैन धर्म की तथ्यों से भरपूर ढेरों जानकारियाँ हैं। इतिहास को खंगालता, शोध परक और बौद्धिक श्रम लिए उपन्यास का एक -एक पृष्ठ भीतर के ज्ञान-चक्षु खोल देता हैं और उपन्यास हाथ से छूटता नहीं।

-सुधा ओम ढींगरा
( सुप्रसिद्ध कथाकार )

ये उपन्यास अपने समय का एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ बन गया है। तथ्यों की खोज में की गई मेहनत हर पृष्ठ पर दिखाई देती है। इस उपन्यास के प्रकाशन का इससे उपयुक्त समय नहीं हो सकता। आरंभ के पृष्ठों पर किया गया विश्लेषण अद्भुत और प्रासंगिक है। ये उपन्यास अपने साहसिक कथ्य के लिए हमेशा याद रखा जाएगा। यह अपने समय से बहुत आगे का उपन्यास है; क्योंकि मुझे लगता है इसे समझने लायक ज़रूरी परिपक्वता का अभी अभाव है। यदि हम इसे पढ़ कर समझ पाते हैं तो यकीन मानिए समाज में बहुत बड़ा परिवर्तन आने वाला है।

-नीरज गोस्वामी
( सुप्रसिद्ध समीक्षक )

**उपन्यास सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर उपलब्ध है-**

अमेज़न लिंक- https://www.amazon.in/Jinhen-Jurme-Ishq-Naaz-Tha/dp/B07TBN27MT

फ़्लिपकार्ट लिंक- https://www.flipkart.com/jinhen-jurme-ishq-pe-naaz-tha/p/itmfhqhhvfv6hgsh?pid=9789387310698

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

संरक्षक एवं
सलाहकार संपादक
**सुधा ओम ढींगरा**

प्रबंध संपादक
**नीरज गोस्वामी**

संपादक
**पंकज सुबीर**

कार्यकारी संपादक
**शहरयार**

सह संपादक
**पारुल सिंह**

छायाकार
**राजेन्द्र शर्मा**

डिज़ायनिंग
**सनी गोस्वामी**

**संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय**
पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : 07562405545, 07562695918
मोबाइल : 09806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivnasahityiki@gmail.com
ऑनलाइन 'शिवना प्रकाशन'
http://shivnaprakashan.blogspot.in
फेसबुक पर 'शिवना प्रकाशन'
https://facebook.com/shivna prakashan

एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष)
1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)
बैंक खाते का विवरण : Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda, Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE



संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णतः अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।


# शिवना साहित्यिकी


**वर्ष : 3, अंक : 14**
**त्रैमासिक : जुलाई-सितम्बर 2019**
**RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929**
**ISSN : 2455-9717**







आवरण चित्र
**राजेन्द्र शर्मा**



आवरण कविता
**तादेयुश रोज़ेविच**

**इस अंक में**


**संपादकीय** / शहरयार / 4
**व्यंग्य चित्र** / काजल कुमार / 5
काश पंडोरी न होती / सीमा शर्मा/ मृदुला श्रीवास्तव / 6
चुनी हुई कविताएँ / राधेलाल बिजधावन / राजेन्द्र नागदेव / 9
जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था / सुधा ओम ढींगरा / पंकज सुबीर / 10
देशी चश्मे से लंदन डायरी / डॉ. उषा किरण / शिखा वार्ष्णेय / 12
मैं बनूँगा गुलमोहर / डॉ. गरिमा संजय दुबे / सुशोभित सक्तावत / 14
हमन हैं इश्क मस्ताना / डॉ. रमेश कुमार गोहे / विमलेश त्रिपाठी / 16
दो ध्रुवों के बीच की आस / संतोष मोहंती 'दीप' / डॉ. गरिमा संजय दुबे / 17
हसीनाबाद / डॉ. कमल किशोर गोयनका / हसीनाबाद / 18
नक़्क़ाशीदार केबिनेट / मनीषा कुलश्रेष्ठ / सुधा ओम ढींगरा / 19
वैश्विक संवेदन-संसार / डॉ. नीना मित्तल / डॉ. मधु संधु / 20
खोई हुई परछाँई / देवी नागरानी / शौकत शौरो / 22
वक़्त की गवाही / डॉ. विनय कुमार पाठक / बुधराम यादव / 23
स्त्री और समुद्र / प्रो. बी. एल. आच्छा / राकेश शर्मा / 24
51 किताबें ग़ज़लों की / पारुल सिंह / नीरज गोस्वामी / 26
इस समय तक / दीपक गिरकर / धर्मपाल महेन्द्र जैन / 27
जब आदिवासी गाता है / राजेन्द्र नागदेव / जमुना बीनी तादर / 28
कथा सरित्सागर / निधि जैन / विष्णु प्रभाकर / 29
हैशटैग मी-टू / पारुल सिंह / आकाश माथुर / 30
अभी तुम इश्क़ में हो / शिवकुमार अर्चन / पंकज सुबीर / 31
लेडीज़ सर्कल / पारुल सिंह / गीताश्री / 32
प्रवासी हिन्दी कहानी कोश / डॉ. सुनीता शर्मा / डॉ. मधु संधु / 34
कुबेर / दीपक गिरकर / डॉ. हंसा दीप / 35
यायावर हैं, आवारा हैं, बंजारे हैं / पारुल सिंह / पंकज सुबीर / 36
कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न / शहरयार अमजद ख़ान / आकाश माथुर / 35
सच कुछ और था / डॉ. अशोक प्रियदर्शी / सुधा ओम ढींगरा / 38
भट्ठी में पौधा / कमल चोपड़ा / सुरेश चन्द्र शर्मा / 39
तंत्र कथा / अरुण अर्णव खरे / कुमार सुरेश / 40
उम्र जितना लम्बा प्यार / सुषमा मुनीन्द्र / सपना सिंह / 41
कछु अकथ कहानी / दीपक गिरकर / कविता वर्मा / 42
निर्भया / कान्ता राय / सुरेश सौरभ / 43
चुनी हुई 51 व्यंग्य रचनाएँ / सूर्यकांत नागर / अश्विनी कुमार दुबे /44
पेड़ लगाओ / शशि पुरवार / राज कुमार जैन राजन / 45
द ट्रुथ बिहाइंड ऑन एयर / श्रद्धा श्रीवास्तव / पुष्पेन्द्र वैद्य / 46
साझा मन / दीपक गिरकर / वसुधा गाड़गिल / 47
कौन देस को वासी... वेणु की डायरी / डॉ. प्रमोद त्रिवेदी / सूर्यबाला / 48
पराई जमीन पर उगे पेड़ / संजीव वर्मा 'सलिल' / विनीता राहुरीकर / 49
मिल्कियत की बागडोर / डॉ. नीलोत्पल रमेश / जयनंदन / 50
साँझ का सूरज / डॉ. अशोक प्रियदर्शी/ पद्मा मिश्रा / 51
तुरपाई / सवाई सिंह शेखावत / ओम नागर / 52
बारह चर्चित कहानियाँ / शहरयार अमजद ख़ान / सुधा ओम ढींगरा, पंकज सुबीर / 53
यात्राओं का इन्द्रधनुष / प्रो. शोभा जैन / ज्योति जैन / 54
शिगाफ़ / शशि बंसल / मनीषा कुलश्रेष्ठ / 55
यादें / डॉ. मलय पानेरी / क़मर मेवाड़ी / 56
चौपड़े की चुड़ैलें / अशोक अंजुम / पंकज सुबीर / 57
झूठ बोले कौवा काटे / पंकज त्रिवेदी / बीनू भटनागर / 58
तुमसे उजियारा है / सुनीता काम्बोज / ज्योत्स्ना शर्मा / 59
देर आयद / दीपक गिरकर / दिलीप जैन / 60
निःशब्द नहीं मैं / प्रो. बी. एल. आच्छा / नीरज सुधांशु / 61
कई-कई बार होता है प्यार / डॉ. भावना / अशोक सिंह / 62
उस दौर से इस दौर तक / प्रतीक श्री अनुराग / डॉ. मनोज मोक्षेंद्र / 63
वार्ता का विवेक / प्रो. बी. एल. आच्छा / राकेश शर्मा / 64

# संपादकीय

# आपकी भाषा किस दौर से गुज़र रही है

**शहरयार**

shaharyarcj@gmail.com
+91-9806162184

इस बार का अंक कुछ अधिक पृष्ठों का है। पिछला अंक एक विशेषांक के रूप में निकाला गया था, इस कारण पिछले अंक के लिए आई हुई पूरी सामग्री रुक गई थी। इस बार उस सामग्री के साथ इस अंक के लिए आई हुई सामग्री को भी शामिल करने के कारण पृष्ठ बढ़ गए हैं। पुस्तक समीक्षा समय पर लग जाए तो ही पाठक को उसका लाभ मिलता है। इन दिनों पुस्तकों की आवक जिस प्रकार बम्पर हो रही है, वैसे में पुस्तकों की उम्र भी कम हो रही है। पहले यह होता था कि पुस्तक आती थी, पढ़ी जाती थी, चर्चाओं में रहती थी। अब तो यह हो गया है कि लेखक स्वयं ही छह महीने बाद कोशिश करता है कि अब उसकी नई पुस्तक आ जाए। जैसे ही नई पुस्तक आती है, उसका पूरा ध्यान पिछली पुस्तक से हट कर इस पर हो जाता है। भले ही पिछली पुस्तक अभी पाँच-छह महीने पहले ही आई थी मगर उसके बाद भी लेखक उसे छोड़ कर अगली पुस्तक पर आ जाता है। ऐसे में ज़ाहिर सी बात है कि अगर पुस्तक की समीक्षा समय पर प्रकाशित नहीं हुई, तो बाद में उसके प्रकाशन का भी कोई अर्थ नहीं होता है। इसलिए ही पत्रिका के लिए आई हुई सारी स्वीकृत समीक्षाओं को इस अंक में ही लगाया जा रहा है, बजाए इसके कि कुछ चयनित समीक्षाओं को अगले अंक के लिए टाला जाता। सारी स्वीकृत समीक्षाएँ लगा देने के पीछे उद्देश्य यह है कि अब नए सिरे से नई पुस्तकों पर समीक्षाएँ प्राप्त हों। समीक्षा पत्रिका का प्रमुख दायित्व तो यही होता है कि वह पाठक को नई पुस्तकों से परिचित करवाए। उनके बारे में जानकारी प्रदान करे। इस घोर इंटरनेटीय समय में भी आज भी कुछ पाठक ऐसे हैं, जो समीक्षा पढ़कर ही तय करते हैं कि उनको कौन सी पुस्तक ख़रीदना है और कौन सी नहीं। वह आज भी समीक्षकों पर विश्वास करने का जोखिम उठा रहे हैं। हालाँकि अब यह जोखिम भी धीरे-धीरे बढ़ता ही जा रहा है। इस पर आगे हम चर्चा करेंगे कि किस प्रकार यह जोखिम बढ़ रहा है। इस बार का यह अंक एक प्रकार से समीक्षा विशेषांक के रूप में ही आपके सामने आ रहा है। चयनित रचनाएँ किसी भी पत्रिका के लिए ज़िम्मेदारी होती हैं। चूँकि नई रचनाएँ भी लगातार आ रही हैं, ऐसे में धीरे-धीरे यह होता जाता है कि पूर्व चयनित रचनाएँ पीछे हटती जाती हैं। संपादक का पूरा ध्यान नई आ रही रचनाओं पर केंद्रित हो जाता है। कहानी, कविता तथा समीक्षा के बीच एक अंतर तो यह भी होता है कि अच्छे समीक्षकों की वैसे ही कमी होती जा रही है, ऐसे में अच्छी समीक्षाएँ करने वाले समीक्षकों को सहेजना, सँभालना भी संपादक की एक बड़ी ज़िम्मेदारी हो जाती है। इस अंक में केवल समीक्षाएँ हैं। अन्य कुछ सामग्री नहीं है इस अंक में।

आइए अब बात करते हैं आज के संपादकीय के शीर्षक की। किसी समीक्षा पत्रिका का संपादक होना, किसी भी भाषा के दिनों-दिन गिर रहे स्तर को बहुत पास से देखने की जगह होती है। विधाओं में आप इसको महसूस नहीं कर सकते। लेकिन समीक्षाओं में भाषा की, वर्तनी की तथा दूसरी बहुत सी बड़ी-बड़ी ग़लतियाँ देख कर आपको पता चलता है कि आपकी भाषा किस दौर से गुज़र रही है। उस पर और ज़्यादा क्षोभ होता है जब आपको यह पता चलता है समीक्षक तो भाषा के ही क्षेत्र का व्यक्ति है। जब भाषा के क्षेत्र में काम कर रहे व्यक्ति की ही यह स्थिति है, तो बाक़ी क्या हाल होगा यह समझा जा सकता है। यदि भाषा विशेषज्ञ ही वर्तनी की, विन्यास की, भाषा की बड़ी ग़लतियाँ करे, जिनको मात्र टाइपिंग की ग़लतियाँ कह कर टाला नहीं जा सके, तो आप समझ ही सकते हैं कि मामला कितना गंभीर हो चुका है। चूँकि समीक्षाएँ लिखने का काम अधिकतर भाषा से जुड़े लोग ही करते हैं, इसलिए समीक्षा पत्रिका के संपादक को ही सबसे ज़्यादा पता चलता है विचलन का। उस पर हो यह गया है कि समीक्षक हर पुस्तक को उस तरह की अंतिम पुस्तक तथा न भूतो न भविष्यति सिद्ध करने का जो प्रयास करता है, उसके चलते समीक्षा और बचकानी हो जाती है। इन दिनों समीक्षाएँ नहीं लिखी जाती, संबंध निभाए जाते हैं। ज़ाहिर सी बात है कि जब आप किसी एक संबंध को निभाने की कोशिश कर रहे हैं, परिधि से बाहर जाकर कोशिश कर रहे हैं, तो किसी न किसी दूसरे संबंध को तो नुकसान पहुँचेगा ही। क्योंकि आप यदि परिधि से बाहर जा रहे हैं, तो सामान्य सी बात है कि आप केंद्र से दूर हो रहे हैं। इन दिनों समीक्षक जो संबंध निभाने का काम कर रहे हैं, उसके कारण असल नुकसान दो लोगों का हो रहा है, एक तो पाठक का और दूसरा भाषा का। यह दोनों ही नुकसान बहुत ख़तरनाक हैं। कोई भी साहित्य असल में तो इन दोनों ही स्तंभों पर टिका होता है, भाषा और पाठक। इन दोनों के ही बिना कुछ नहीं है साहित्य। इसलिए समीक्षकों को यह समझना होगा कि अगर संबंध निभाने हैं, तो उसका एक बहुत अच्छा तरीक़ा यह है कि किसी बहुत ख़राब किताब की समीक्षा ही न की जाए। यही सबसे अच्छा तरीक़ा होगा। क्योंकि यह तो समीक्षक को भी समझ में आता है, कि कौन सी किताब किस स्तर की है। तो बजाय इसके कि यह लिखा जाए कि इस किताब को अविलंब नोबल पुरस्कार के लिए नामित कर देना चाहिए; कुछ न लिखना ही बेहतर होगा, पाठक के लिए भी और भाषा के लिए भी। **आपका ही**

शहरयार

# व्यंग्य-चित्र

**काजल कुमार**

kajalkumar@comic.com

# पुस्तक समीक्षा

## काश पंडोरी न होती

**समीक्षक : सीमा शर्मा**

**लेखक : मृदुला श्रीवास्तव**

**प्रकाशन : अंतिका प्रकाशन, ग़ाज़ियाबाद**

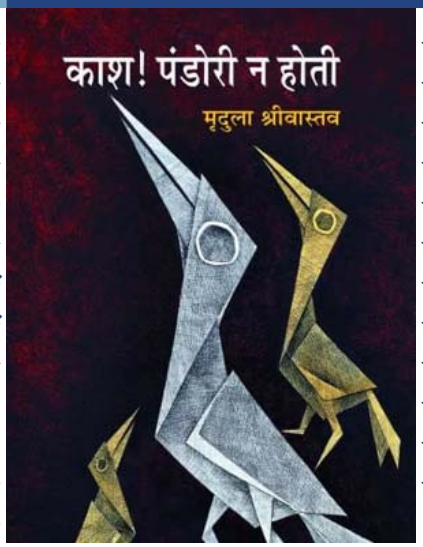




मृदुला श्रीवास्तव का प्रथम कहानी संग्रह ''काश पंडोरी न होती'' अपने नाम से ही जिज्ञासा जगाता है और संग्रह की सभी दस कहानियों में उस जिज्ञासा और आकर्षण को बनाए रखने में सफल होता है। लेखिका ने सभी कहानियों को सायास, सश्रम तथा बहुत धैर्य के साथ लिखा है। सभी कहानियाँ अलग-अलग विषयों पर लिखी गई कहानियाँ हैं, जो संग्रह को विविधता प्रदान करती हैं और पठनीय बनाती हैं।

प्रस्तुत संग्रह की प्रथम कहानी 'ब्रेन' चिकित्सकीय प्रणाली की बड़ी सूक्ष्म पड़ताल करती है। इस व्यवसाय में स्वार्थ हित व अकुशलता का घालमेल कितना भयावह हो सकता है, 'ब्रेन' कहानी इस सच को उजागर करती है। एक डॉक्टर के लिए एक जीवंत मानव, मानव न रहकर, मात्र एक शरीर रह जाता है तथा उसके हित के लिए साधन मात्र। एक चिकित्सक की थोड़ी सी लापरवाही या कहें अकुशलता और कई बार तो स्वार्थ भी एक व्यक्ति पर कितना भारी पड़ता है। 'ब्रेन' कहानी के नायक प्रकाश के साथ भी कुछ ऐसा ही होता है। एक जीवित व्यक्ति से 'लाश' में उसकी परिणति और इसके बिन घटित क्रम को लेखिका ने बहुत विश्वसनीय ढंग से रचा है। लेखिका की गहन अनुभूति के कारण कहीं भी बनावटीपन नहीं आता।

यह कहानी किसी एक प्रकाश की नहीं है, हमें अपने आस पास कोई न कोई 'प्रकाश' दिख ही जाएगा, किसी न किसी न रूप में। लेखिका ने इस सच्चाई को कहानी के एक प्रमुख पात्र डॉ. प्रशांत के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया है-''पहले तो न्यूरो का केस होने की वजह से इसकी याददाश्त जाती रही। उसके बाद दवाओं की गर्मी से एलर्जी। पीजीआई में ग़लत इंजैक्शन लगाने से उसके पूरे शरीर पर छाले हो गए। छालों को ठीक करने के लिए जो ड्रग दी गई उसी से उसको टी. बी. हो गई। कमज़ोर तो पहले ही था। अब इसका शरीर एक ज़िंदा लाश है।'' क्योंकि प्रकाश किसी रूप में उपयोगी नहीं रह जाता, तो छोड़ दिया जाता है मरने के लिए। कहानी इस मानसिकता पर प्रश्न चिह्न लगाती है। क्या एक डॉक्टर को यंत्रवत होना चाहिए? क्या इस व्यवसाय में मानवीय संवेदना का कोई स्थान नहीं? ये कुछ विचारणीय प्रश्न हैं, जिन्हें कहानी उठाती है। लेकिन कई बार घोर स्वार्थ से वैराग्य की उत्पति भी होती है। इसके उदाहरण के रूप में डॉ. कुमार को देखा जा सकता है। प्रकाश के ब्रेन पर किए गए उत्कृष्ट शोध के लिए जब डॉ. कुमार के नाम की घोषणा होती है तब सम्मान मिलने पर प्रसन्नता नहीं वरन् ग्लानि का अनुभव होता है। उसे लगता है जो श्रम मृत प्रकाश के ब्रेन पर किया गया, यदि उसे बचाने के लिए किया या होता तो अधिक सार्थक होता। क्योंकि प्रकाश अपनी समस्त कठिनाइयों के बाद भी जीना चाहता था। तभी तो वह 'आदमी' औरत और दो प्यारे बच्चों वाले परिवार नियोजन के पोस्टर को बड़े चाव से निहार रहा था। लेकिन डॉक्टर के लिए किसी बीमार व्यक्ति की भावनाओं को कोई अर्थ नहीं, उसे तो एक शरीर का उपचार करना होता है (उस पर भी रोगी यदि निर्धन हो तो फिर तो दायित्व और भी कम हो जाता है)।

'खेस' तथा कहीं एक और ग्रंथि ये दोनों ही कहानियाँ उस पितृसत्तात्मक मानसिकता को उजागर करती हैं, जो स्त्री की उन्नति व प्रगति को स्वीकृति नहीं देती है। सामान्यतः स्त्रियाँ अपने जीवनसाथी की उन्नति अपनी उन्नति के रूप में देखती हैं लेकिन पुरुष सामान्यतः ऐसा करते दिखाई नहीं देते। प्रस्तुत दोनों कहानियाँ इसी तथ्य को पुष्ट करती हैं। पुरुष साम, दाम, दंड, भेद अपनाकर स्त्री को अपने अधीन रखने का हर संभव यत्न करता है। हमारी सामाजिक व्यवस्था भी ऐसी है जो स्त्री के विरुद्ध ही दिखाई देती है। उसे निर्भरता का प्रशिक्षण दिया जाता है।

विकास नारायण राय के शब्दों में ''एकमात्र स्त्री ही ऐसी प्राणी है, जो स्व रक्षा की स्वाभाविक प्रवृति से वंचित की जाती है। एक कछुआ, एक केंचुआ, एक खरगोश, एक साँप, एक गाय तक भी अपने बचाव में आख़िरी दम तक लड़ लेते हैं, पर लड़की को लगातार सिखाया जाता है कि वह अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकती। उसकी रक्षा उसके पिता, पति, भाई या किसी पुरुष द्वारा ही की जानी है। स्त्री के मनोविज्ञान में पुरुष निर्भरता कूट-कूट कर भरी जाती है।''

'खेस' कहानी में इसका एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण उपस्थित है। रश्मि की माँ अपने पति से अच्छा पद होते हुए भी, पति की धमकी के आगे झुक जाती है और उसकी आत्मनिर्भरता त्यागकर अधीनता स्वीकार कर लेती है। वैसे भी आर्थिक रूप से जब वह स्वतंत्र थी तब भी कहाँ स्वाधीन थी ? रश्मि के शब्दों में ''माँ के दफ़्तर से आने की प्रतीक्षा थी। दरवाज़ा खुला हुआ था। पिता ही दीवान पर लेटे

जाग रहे थे। माँ आ गई थी। सीधे हाथ-मुँह धो रसोई में गई। चाय लेकर आई। रोज़ ही बनाती थी, दो घंटे पहले उसी दफ़्तर से घर पहुँच चुके पति के लिए। यदि पति-पत्नी दोनों नौकरी करें किंतु घर के कामकाज तो स्त्री करेगी ही। इससे कोई अन्तर नहीं आता कि स्त्री के कार्य के घंटे अधिक हैं या वह कार्यालय में बड़ा पद रखती है। घर में तो पुरुष ही श्रेष्ठ माना जाएगा। रश्मि की माँ ने इस यथार्थ को स्वीकार भी कर लिया था लेकिन उसकी पदोन्नति इस पर भारी पड़ी। उसने विभागीय परीक्षाएँ पास की परंतु उसका पति नहीं कर पाया तो भी उसी का अपराध माना जाता है न। एक ही कार्यालय में पति पत्नी से उच्च स्तर पर हो यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है? तो उसने भी अपनी पत्नी को नीचा दिखाने का सबसे आसान रास्ता अपनाया आरोप लगाकर ''औरत होने का फायदा उठाया है तुमने। सच सच बताओ किस किस अधिकारी का बिस्तर.....?'' इस स्थिति में किसी स्त्री की स्थिति का अनुमान लगाना भी आसान नहीं, पर वह इतने पर भी रुकता वह अंतिम आदेश पारित कर देता है-''कल से तुम्हारा दफ्तर जाना बद... वरना मायके निकल लो सुबह की पहली गाड़ी से अकेली''। मायका! मायका तो कभी उसका अपना था ही नहीं। कभी तो बचपन से ही पराए घर की अमानत कहकर संबोधित किया जाता है ऐसे में मायके लौटना तो लगभग असंभव उस पर भी पुरुष निर्भरता की घुट्टी जो उसे शैराव से पिलाई गई वह स्वतंत्र जीने का साहस नहीं उत्पन्न होने देती। वह भले ही पुरुष से अधिक कमाती है तो क्या हुआ, उसे संरक्षण तो पुरुष ही देगा।

लगभग यही स्थिति 'कहीं एक और ग्रंथि' में भी दिखाई देती है। परिस्थितियाँ अलग है। पात्र अलग है। कहानी का स्वरूप भी अलग है लेकिन सोच वही है। 'खेस' में पुरुष जीत जाता है तो सब ठीक है लेकिन 'कहीं एक और ग्रंथि' में शैलेश का ऋचा से कम पढ़ा लिखा होना उसकी कुंठा का कारण बन जाता है। इस कुंठा के कारण वह पहले शराब में डूब जाता है और इसका अंत उसकी मृत्यु के रूप में होता है। यहा दोष शैलैश का नहीं है दोष उस सोच का है जो उसने बचपन से देखी है, जिसमें वह पला बढ़ा। इसी सोच के कारण ऋचा को आजीवन अकेले रहने के लिए अभिशप्त होना पड़ता है।

स्त्रियाँ अबला होती हैं नहीं, बनाई जाती हैं। न अधिकार, न अवसर, न आत्मरक्षा न आत्मविश्वास और न हीं संपति। इसमें भी संपति सबसे बड़ा कारक है लेकिन पुरुष को जन्म से ही प्राप्त हो जाता है अधिकार, अवसर, आत्मविश्वास, संपति और सहयोग तथा स्त्रियों में बलपूर्वक इन अधिकारों को होना जाता रहा है स्त्रियाँ तो अपने ही घर में सामंजस्य बिठाने और जीवन के सुचारू निर्वाह के लए न जाने कितने समझौते करती चलती हैं। 'खेस' कहानी के अधिकांश स्त्री पात्र भी यही करते दिखाई देते हैं। रश्मि, रश्मि की माँ, रश्मि की दादी तथा रजनी बुआ, तरह तरह के समझौते करते हैं लेकिन कहानी की एक पात्र है जो अपने जीवन में किसी प्रकार का समझौता नहीं करती वह है सुधांशु की माँ। एक ओर रश्मि की माँ एक उम्दा पद छोड़कर अपने जीवन के साथ समझौता करती है तो वहीं दूसरी ओर तमाम विरोध के बाद भी वह नौकरी नहीं छोड़ती और पूरी ठसक से अपना जीवन जीती है। लीक से हटकर कोई कार्य काने पर सुधांशु की माँ के चरित्र को कुछ नकारात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है जबकि मुझे लगता है ऐसा नहीं होना चाहिए था। एक ओर जहाँ स्त्री स्वतंत्रता की पक्षधरता है तो फिर दूसरी ओर उसी स्वतंत्रता पर इस प्रकार से प्रश्नचिह्न क्यों?

'खेस' कहानी एक महत्त्वपूर्ण समकालीन समस्या 'स्त्रियों की आत्मनिर्भरता' को बहुत मज़बूती के साथ उठाती है। स्त्रियों को अपनी आत्मनिर्भरता की कीमत चुकानी पड़ती है। उनकी जो पारिवारिक व सामाजिक स्थिति है वह किसी से छुपी नहीं है। उन्हें आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ता है और किसी तरह प्राप्त कर भी लें तो आगे की परिस्थितियाँ आसान नहीं होती। उन्हें दोहरी भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। एक ओर तो कार्यक्षेत्र में स्वयं की क्षमता तथा कार्यकुशलता सिद्ध करने का दबाव वहीं दूसरी ओर घर की सब ज़िम्मेदारियों के निर्वहन के साथ-साथ अपनी ईमानदारी तथा वफादारी सिद्ध करने की विवशता। रश्मि के सामने तो विवाहपूर्व ही यह चुनौती आती है। तो वह अपनी माँ और बुआ जैसा जीवन नहीं जीना चाहती, क्योंकि उसने उन दोनों के दुख और छटपटाहट को बहुत निकट से देखा था, इसलिए रश्मि अपनी सगाई तोड़ने जैसा साहसपूर्ण निर्णय करती है।

'मुल्लमा तथा बात अभी बाकी है' कहानियाँ स्त्री के दमन और शोषण को उजागर करती हैं। किस तरह छलपूर्वक या धोखे से कभी प्यार दिखाकर या कभी परवाह दिखाकर स्त्रियों को शिकार बनाया जाता है। और धकेल दिया जाता है देह व्यापार में। भोली-भाली स्त्रियाँ समझा ही नहीं पाती। 'बात अभी बाकी है' की नायिका नल्ली भी इस प्रकार के धोखे का शिकार होती है। एक विवाहित आदमी मत्तुस्वामी नल्ली को धोखे से फंसाता है और उससे विवाह का नाटक रचता है और उसे देह व्यापार की दलदल में धकेल देता है यही नहीं वह स्वयं ही उसके साथ अछूतों जैसा बर्ताव करता है जैसे नल्ली के छूने भर से अपवित्र हो जाएगा। जबकि उसकी इस दशा के लिए वह स्वयं दोषी है क्योंकि नल्ली स्वेच्छा से ऐसा नहीं करती बल्कि बलपूर्वक उसे इस ओर धकेला जाता है।

'मुल्लमा' कहानी इससे भिन्न है इसमें एक तरह का अन्तर्विरोध दिखाई देता है। 'मुल्लमा' कहानी के अन्य पात्र तेनम्मा और उसके परिजन त्यागराजन की नीयत से भली-भाँति परिचित थे सो उसको बढ़ावा क्यों दिया जा रहा गया? स्वाभाविक सी बात है अपनी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए। जब त्यागराजन ने अपनी कार के काले शीशे नीचे किए। आँखों ही आँखों में तेन्म्मा से कुछ कहा। तेनम्मा ने माँ की आज्ञा माँगी। माँ की नज़रें एक साथ तंगम्मा, बेटों की गड्ढों में धँसी आँखों, बीमार पति, खाली लुड़कते-लुड़कते बर्तनों और गीले चूल्हे से होती हुई तेनम्मा को कब डॉक्टर के साथ ले जाने की अनुमति दे दी गई, पता ही नहीं चला।

''यहाँ सब प्रयोजित ढंग से हो रहा है। भले ही कारण कारण कुछ भी रहें हो लेकिन परिणाम तो तय ही था। ऐसे में रोना और दोषारोपण व्यर्थ ही है।'' इस कहानी

को इस रूप में भी देखा जा सकता है कि परिस्थितियाँ मनुष्य को कितना विवश बना देती हैं कि वह सब कुछ जानते-बूझते भी ऐसे कदम उठा लेता है, जिनके कारण बाद में उसे पछतावा होना भी स्वाभाविक ही बात है।

'चवन्नी' तथा 'रैंपवॉक' कहानियाँ भी बहुत महत्त्वपूर्ण विषय को उठाती हैं। 'चवन्नी' कहानी गंगवा उर्फ चवन्नी के माध्यम से बाल श्रम, बाल शोषण, बाल तस्करी जैसे गंभीर मुद्दे उठाती है। तथा लोगों के दोहरे चरित्र को भी उजागर करती है। तथाकथित समाज सेविका जो चवन्नी को सहानूभूतिपूर्ण बातों से बहला रही थी लेकिन चवन्नी की उम्र के बच्चे के साथ उसके व्यवहार ने उसे बहुत कुछ समझा दिया था।

'रैंपवॉक' कहानी में भी लेखिका ने समाजसेवी संस्थाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार की भयावहता को बड़े सूक्ष्म ढंग से रेखांकित किया है।'पूह' संस्था से जुड़े तथाकथित वे बड़े जो वास्तव में बहुत छोटे आत्मा विहीन व असंवेदनशील है। उन सबसे बड़ा और साहसी तो अनाथ कान्छा है, जो माँगकर नहीं खाना चाहता बल्कि श्रम करता है और स्वाभिमान से जीता है। कूड़ा बीनने वाले बच्चों के रैंम्प वॉक से कई लोगों को लाभ मिला। किसी को पैसा मिला, किसी को कहानी की कथावस्तु, किसी को कविता के लिए अच्छा मसाला, किसी को लेख के लिए विचार लेकिन कान्छा के हिस्से में क्या आया? मौत। और उसी जैसे अन्य बच्चों को क्या मिला? समाजसेवी संस्थाओं का महत्त्व तभी तक है, जबकि वे समाज के लिए कुछ सार्थक कार्य करें परंतु वास्तव में ऐसा कम ही देखने को मिलता है।'चवन्नी' और 'रैंप वॉक' कहानियाँ इसी यथार्थ को प्रस्तुत करती है।

'फिरन' कहानी में मृदुला श्रीवास्तव ने कश्मीर में व्याप्त एक विशिष्ट वर्ग के प्रति भयावह हिंसा जैसे जटिल और संवेदनशील मुद्दे का उठाया है। इस्लामिक आतंकवाद की आग में झुलसते निरीह, असहाय लोग ''और कश्मीरी दरिंदों के चेहरों पर लाशों को देखने की लिप्सा और ए.के.47 राइफलों वाला खूनी दहशत, खूनी माहौल।'' कहानी के नायक मनोहर काव को वो भयावह हिंसा भुलाए नहीं भूलती जिसे उसके अपनों ने झेला। उसे अपनी विवशता पर भी अपराध बोध है क्योंकि वह अपने सामने क्रूरता का नंगा नाच देखते हुए भी अपनी बहनों और पड़ोस में रहने वाली लड़कियों और उनके परिवार को भगा नहीं सका था।

अनंतनाग जिले के मार्तण्ड गाँव के मनोहर काव की कहानी उसके अकेले की नहीं है, न जाने कितने ही लोग मनोहर काव को अपने गाँव, अपने घरों से विस्थापित होकर शरणार्थी शिविरों में रहने को विवश है। वे सभी अपने 'फिरन' (पारंपरिक कश्मीरी वस्त्र जिसे सर्दियों में पहना जाता है) या कहें अपने घर में अपने हृदय में अपने घर के सपने को छुपाए रहते हैं। जड़ों कटने की जो पीड़ा है वह बड़ी मर्मांतक है। लेखिका ने स्वप्निल घर की अधूरी पेंटिंग में छुपे मनोहर काव के सपने को बहुत बारीकी से अंकित किया है। कहानी का नायक तमाम पीड़ा झेलकर भी किसी से बदला लेना नहीं चाहता, वरन् सभी अपने घर के सपने को पूरा होते देखना चाहता है। भले ही उसका अपना घर उसके पास नहीं है। वह एक मरते हुए व्यक्ति को रक्त देकर बचाता है जबकि वह व्यक्ति उसके समुदाय का नहीं है फिर भी उसे खुशी है एक घर को बचाने की।

संग्रह की अंतिम और प्रतिनिधि कहानी है 'काश पंडोरी न होती'। यह एक ऐसी पाकिस्तानी स्त्री की कहानी है जिसका जीवन अनंत यातनाओं से भरा हुआ है। सलमा का जन्म ही जैसे इन यातनाओं को झेलने के लिए हुआ हो। पाकिस्तान के कब्ज़े वाले कश्मीर के उस अब्बोवाला गाँव की सलमा का निकाह अम्बदेवाला गाँव के मुहम्मद युनुस से हुआ था। अभी तीन महीने ही बीते थे कि सास और पति के सितमों को सहते, पता नहीं कैसे मानसिक विक्षिप्तता की हालत में पंडोरी की तरफ बढ़ती चली गई। वह अपने घर में वह कैसी परिस्थितियों में जी रही होगी कि उसने आत्महत्या का निर्णय किया होगा। वह भी उस नदी में जिसमें उसका बचपन खेलते हुए बीता। इसे नियति ही कहा जाएगा कि वह मरी नहीं बल्कि नदी के रास्ते भारत की सीमा में प्रवेश कर गई और यहीं से आरम्भ हुआ उसके जीवन में अनंत यातनाओं का दौर। सलमा के जीवन के माध्यम से लेखिका ने पूरे सरकारी तंत्र की जटिलताओं और अमानवीय व्यवहार को बहुत बारीकी से चिन्हित किया है वह भी एक स्त्री की दृष्टि से। स्त्रियों के उत्थान की बहुत बात होती है लेकिन सच्चाई तो कुछ और ही है। 'स्त्रियों की उपस्थिति बदली है स्थिति नहीं'। यह कहानी इस तर्क को और भी पुष्ट करती है कि -''मर्द सब एक जैसे होते है। और औरत......? औरत भी एक जैसी होती है, चाहे मेरी जैसी आठवीं फेल हो चाहे, माफ कीजिएगा, आपके जैसी बड़ी बड़ी डिग्रियों वाली।''

सलमा और उसकी बेटी पंडोरी के जीवन में एक बड़ा प्रश्न है कि उनका देश कौन सा है? भारत उन्हें स्वीकार नहीं कर पाता पाकिस्तान वह जा नहीं पाती। उनके जीवन के इस द्वंद्व में तस्लीमा नसरीन की ये पंक्तियाँ अनायास ही याद आ जाती है-''हाँ मैं विश्वास करती हूँ औरत का कोई देश नहीं होता। देश का अर्थ अगर सुरक्षा है, देश का अर्थ अगर आज़ादी है, तो निश्चित रूप से औरत का कोई देश नहीं होता। धरती पर कहीं कोई औरत आज़ाद नहीं, धरती पर कहीं कोई औरत सुरक्षित नहीं।'' सलमा और पंडोरी के जीवन पर तो यह कथन शब्दश: सत्य सिद्ध होता है।

'काश पंडोरी न होती' ऐसा कहानी संग्रह है जिसमें देश के अलग-अलग भू-भाग की कहानियाँ है, जो लेखिका के विस्तृत अनुभव की परिचायक है। लेखिका विशिष्ट क्षेत्र से कहानियाँ ही नहीं उठाती वे वहाँ की संस्कृति, लोक व भाषा को भी कहानी में स्थान देती हैं, जिससे कहानी में विश्वसनीयता उत्पन्न हो जाती है। किसी कृति को जो तत्व महत्त्वपूर्ण बनाता है वह है उसकी पठनीयता। इस दृष्टि से यदि इन कहानियों को देखें तो निसंदेह यह विशिष्टता इन कहानियों में उपस्थित है। यह कहानी संग्रह हिन्दी साहित्य में अपनी पहचान बनाने में सफल होगा, इसी आशा के साथ।

❒❒❒

L-235, शास्त्रीनगर, मेरठ, 250004, उ.प्र.
मोबाइल : 9457034271
ईमेल : sseema561@gmail.com

# पुस्तक समीक्षा

# चुनी हुई कविताएँ

**समीक्षक : राधेलाल बिजधावने**

**लेखक : राजेन्द्र नागदेव**

**प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर**

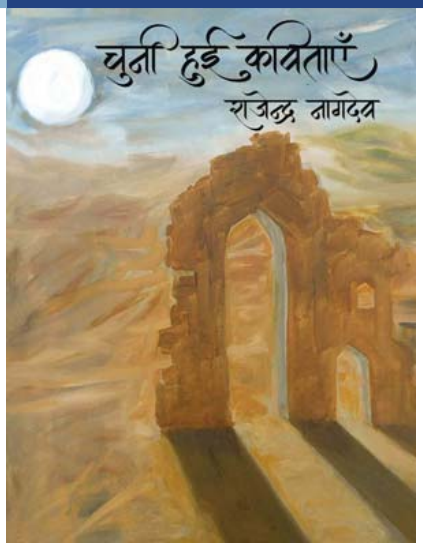


कविताएँ मानवीय मन में रचनात्मक ऊर्जा पैदा कर मानवीय सोच को फिल्टर करती, संवेदनात्मक प्रतिभा को सँवारती हैं तथा मानवीय अस्मिता के एहसासों को विस्तारित करती हैं। इसके साथ ही अँधेरे से डरे लोगों के मन में आत्मविश्वास पैदा कर उनको उजाले की आत्मशक्ति की ओर आगे बढ़ाती हैं। ये जन चेतना के दरवाज़ों को खटखटाती हैं। चुनी हुई कविताएँ संग्रह की राजेंद्र नागदेव की कविताएँ समाजोन्मुख, सृजनात्मक चेतना की जुझारू कविताएँ हैं, जो निजी एवं सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, नैतिक मूल्यों के संकटों को बारीकी के साथ पहचानती हैं। इन कविताओं में विचारों और भाषा शिल्प का नितांत नया अन्वेषण सृजनात्मक प्रतिफलन के साथ प्रस्तुत हुआ है। संग्रह की कविताएँ तमाम मानवीय ख़ामियों और विरोधाभासों को प्रस्तुत करने में सक्रिय नज़र आती हैं। राजेंद्र नागदेव की कविताएँ करुणा जनित संवेदना की कविताएँ हैं, जो संपूर्ण मानव जीवन के प्रति बढ़ते अन्याय का प्रतिरोध करती हैं तथा नए-नए विधान की भावना को स्वीकारती हैं। इन कविताओं में संवेदनात्मक उत्स व्यक्ति की स्वतंत्र लोक भावना के आधार पर प्रस्तुत हुआ है।

हत्यारा घर के पिछवाड़े / तलवार को धो-पोंछ कर चमका रहा है / उसने तलवार पर कल के लिए लिख दिया है / एक बच्चे का नाम / उस बच्चे का / जिसकी थकी हुई आवाज़ / ख़ामोशी को हिलाती हुई रह-रह कर आ जाती है / वह बुला रहा है देर से पड़ोस के घर में / अपनी मरी माँ को / हत्यारा खूब अच्छी तरह चमका रहा है / तलवार पर बच्चे का नाम / प्रेम और युद्ध के बारे में / उसे कुछ नहीं मालूम / पर दंगे के बारे में / अच्छी तरह मालूम है / कि उसमें सभी कुछ जायज़ है। (कविता- दंगे के बाद)

चुनी हुई कविताएँ संग्रह की राजेंद्र नागदेव की कविताएँ विचार परंपरा से जुड़ी हैं। संग्रह की कविताएँ लंबे और पके अनुभवों को काव्य रूप में ग्रहण करती हैं। इसलिए कवि की इन कविताओं का ताना-बाना भिन्न है। यह कविताएँ सामाजिक विकृतियों, विद्रूपताओं का खुलासा करती हैं। इसलिए भी कि न्याय और समता पर आधारित होने के मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करती हैं तथा साज़िशों को रचने वाले लोगों के चेहरों को बेनकाब करती हैं।

सड़क पर उस दिन / भर चुकी थी बस और चलने को थी ही / कि सब कुछ उलट गया / धुआँ, चीखें, हवा में हाथ, हवा में पाँव, / हवा में सिर, हवा में चुनरी, / हवा में उछली दूध की बोतल / जिसे बच्चे ने शुरू किया ही था अभी चूसना / फिर दो-चार पलों में ज़मीन पर सब कुछ / पर कुछ भी नहीं पहले की तरह / किसी थैले की चिन्दियाँ इधर-उधर / बारूद और नफ़रत को / ठूँस कर किसी ने भरा था इन्हीं चिन्दिओं में / कुछ लोग शरीरों में से निकले और चले गए बहुत दूर / अपने घर से / इतने लंबे सफ़र पर निकले तो नहीं थे लोग। (कविता- सड़क)

इस संग्रह की राजेंद्र नागदेव की कविताएँ मानव संवेदना से पूर्ण हैं। यह कविताएँ करुणा तथा आशा का अभावुकतापूर्ण दृढ़ संकल्प ग्रहण करती हैं। इसलिए संग्रह की कविताएँ अपने समय के मानवीय मूल्यों की समाज के प्रति जवाबदेही को निसंकोच स्वीकारती हैं।

संग्रह की कविताएँ विस्मृत अतीत की जाती संवेदनाओं को पुनर्जीवित करती हैं। संग्रह की कविताएँ पीड़ाओं, त्रासदियों के सागर में डूबते लोगों को बचाने की कोशिश करती हैं। माननीय प्रकृति एवं प्रवृत्तियों से जुड़ी उन घटनाओं से ताल्लुक इन कविताओं का है, जो मानवीय जीवन को पूरी तरह प्रभावित कर उसके अस्तित्व को मिटा देने की कोशिश में सक्रिय होती हैं। संग्रह की कविताएँ गहरे आत्मनिरीक्षण से गुज़रती हैं इसलिए माननीय मन की भीतर सच्चाइयों को प्रस्तुत करती हैं।

चुनी हुई कविताएँ संग्रह की कविताएँ समय की तासीर और उसके रंग को पहचानती हैं। यह कविताएँ मानव मुक्ति एवं स्वतंत्रता की चिंताओं से गहरे से जुड़ी हैं और दुष्काल में उम्मीदें जगाती हैं। कविताओं में संवेदनशीलता का बिम्ब है। सर्व संकट हरण की मन:स्थिति इन कविताओं के केंद्र में है।

राजेंद्र नागदेव की कविताओं में मानवधर्मी नैतिकता को महत्त्व दिया गया है और नैतिक मूल्यों के पतन के प्रति गहरी चिंता व्यक्त की गई है। ये आत्मानुभूतिपरक कविताएँ नए-नए खोल ओढ़ने वाले अन्यायियों, अत्याचारियों की अनैतिकता की सारी खोलों को उघाड़ती हैं। संग्रह की कविताएँ बाज़ारीकरण के ख़तरों को भी उजागर करती हैं।

❐❐❐

8/73, भारत नगर, शाहपुरा, अरेरा कॉलोनी, भोपाल 462039, मध्य प्रदेश

# पुस्तक समीक्षा

# जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था

**समीक्षक : सुधा ओम ढींगरा**

**लेखक : पंकज सुबीर**

**प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर**

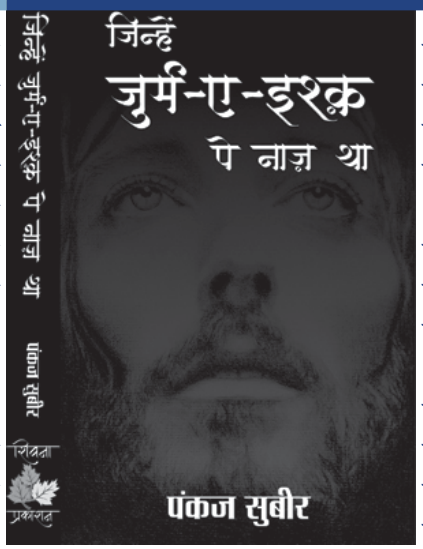


पंकज सुबीर की कहानियाँ और उपन्यास बड़े शौक से पढ़ती हूँ। हाल ही में उनका नया उपन्यास आया है। नाम है जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था। नाम ने मुझे इतना आकर्षित किया कि मैंने पैकेज में आई सब पुस्तकों को छोड़ कर पहले इस उपन्यास को उठाया और उसे पढ़ने लगी। अभी समाप्त किया है। समझ नहीं पा रही अपनी बात कहाँ से शुरू करूँ!

उपन्यास पढ़ने के बाद स्तब्ध हूँ। जी हाँ, बेहद हैरान हूँ। आप पूछेंगे हैरान क्यों ? इसलिए कि ऐसा अद्भुत उपन्यास बहुत कम पढ़ने को मिलता है। हिन्दी साहित्य में तो मैंने पहला ही पढ़ा है। समसामयिक, दुर्लभ, नाज़ुक, गंम्भीर और चिंतनशील विषय का कुशलता से निर्वाह किया गया है। गज़ब की क़िस्सागोई। जो विषय उपन्यास में उठाया गया है, वह विषय अपने आप में बहुत सी भ्रांतियाँ, पूर्वग्रह, संशय, विरोधाभास और प्रश्न समेटे हुए है। जिन्हें लेकर बुद्धिजीवी अक्सर द्वंद्व में और अंधविश्वासी भ्रम में रहते हैं। जिसकी थाह सही अर्थों में कोई नहीं पा सका, मगर अपने-अपने तरीकों से उसे परिभाषित ज़रूर कर दिया गया है। उपन्यास धर्म की भ्रांतियों, पूर्वग्रहों, संशय और विरोधाभासों को स्पष्ट करता हुआ कई प्रश्नों के उत्तर देता है। पाँच हज़ार साल के इतिहास को नई दृष्टि से देखा और परखा गया है।

डैन ब्राउन ने 'डा विन्ची कोड' में बाइबल की थियोरी और सलमान रश्दी ने 'स्टैनिक वर्सेज़' में क़ुरआन में तथ्यों के आभाव पर रौशनी डाली है। पर पंकज सुबीर ने अपने उपन्यास 'जुर्म -ए-इश्क़ पे नाज़ था' में सभी धर्मों के मूल तत्व, जिस पर हर धर्म टिका हुआ होता है, की पड़ताल की है। मूल तत्व जिसे हर धर्म में भुला दिया गया है; जिससे हर धर्म का स्वरूप ही भिन्न हो गया है। कागज़ों पर लिखे शब्दों के अर्थों को ही बदल दिया गया है। अफ़सोस की बात है कि भारतीय दर्शन, मीमांसा, जीवन पद्धति तक उसे भुला चुके हैं। पाँच हज़ार साल पहले के इतिहास, विभिन्न धर्मों पर किया गया शोध, हिन्दू धर्म की, इस्लाम की, यहूदियों की, क्रिश्चियन की, बौद्धों की, पारसियों की और जैन धर्म की तथ्यों से भरपूर ढेरों जानकारियाँ हैं। इतिहास को खंगालता, शोध परक और बौद्धिक श्रम लिए उपन्यास का एक -एक पृष्ठ भीतर के ज्ञान-चक्षु खोल देता हैं और उपन्यास हाथ से छूटता नहीं।

लेखक ने निर्लिप्त होकर, निष्पक्ष लिखा है। उपन्यास पढ़ते हुए महसूस होता है जैसे किसी मलंग ने या सूफ़ी लेखक ने लिखा है, जिसके लिए सब धर्म एक बराबर हैं। न काहू से दोस्ती, न काहू से बैर.... बस सभी धर्मों का मूल मन्त्र, प्रेम, विश्वास और इंसानियत की पैरवी की है। ये हैं तो हिंसा पैदा ही नहीं होती। दु:ख की बात तो यही है कि आज धर्मों में यही मूल मन्त्र गायब हैं और हिंसा बलवती हो गई है। अहिंसा तो भारतीय मूल्यों में भी मिटती जा रही है, जो पूरे विश्व में हमारी पहचान है। उपन्यास में लेखक ने दुनिया के सभी प्रमुख धर्मों पर बात की है, उनके सिद्धांतों पर चर्चा की है। हर धर्म के मूल तक पहुँच कर लेखक ने अपने पाठक के लिए जैसे किसी नई दुनिया के दरवाज़े खोलने का काम किया है। जैसे-जैसे पाठक इस उपन्यास को पढ़ता जाता है, वैसे-वैसे उसके सामने नई-नई जानकारियों के दरीचे खुलते जाते हैं। लेखक समभाव से समदृष्टि रखते हुए हर धर्म के बारे में पड़ताल करता हुआ गुज़र जाता है।

हालाँकि यह मेरा प्रिय विषय है और मैंने स्वयं भी इस विषय पर बहुत शोध किया हुआ है। पर इस उपन्यास ने मेरी तलाश और भटकन दूर कर दी।

उपन्यास के आरंभ में ही लेखक ने एक लम्बी चर्चा के माध्यम बहुत सारी बातों की व्याख्या की है। इस व्याख्या में उदाहरण लिए हैं, संदर्भ लिए हैं और उनके द्वारा धर्म का फिर से परिभाषित करने का कार्य किया है। यदि आप यह कहेंगे कि यह उपन्यास धर्म को ख़ारिज करता है, तो आप ग़लत होंगे, यह उपन्यास असल में धर्म में आए हुए विचलन को, भटकाव को ख़ारिज करता है। यह पहुँचने की कोशिश करता है उन बिन्दुओं तक, जो दुनिया के हर धर्म में मानव के भले के लिए तय किए गए थे।

यह उपन्यास केवल एक उपन्यास नहीं है, यह असल में एक समीक्षा है कि हमारी यह मानव जाति पाँच हज़ार साल पहले अपने लिए क्या तय कर के निकली थी और आज पाँच हज़ार साल बाद कहाँ है ? यह उपन्यास परत दर परत पाँच हज़ार सालों की कहानी को स्पष्ट करता हुआ चलता है। और उस कहानी के साथ फिर-फिर लौटता है आज की कहानी पर। भारत-पाक विभाजन पर बहुत सी रचनाएँ सामने आई हैं, लेकिन यह अपनी तरह का एक अनोखा प्रयास है, जिसमें विभाजन के मूल कारणों तक जाने की कोशिश की गई है। इतिहास के पात्रों के साथ सवाल-जवाब करते हुए उस

विभाजन के सूत्र तलाशने की कोशिश लेखक ने की है। यही कोशिश इस उपन्यास को अपने समय से आगे का उपन्यास और अत्यंत विशिष्ट उपन्यास बना देती है। जो नई सूचनाएँ भारत और पाकिस्तान के विभाजन को लेकर सामने आती हैं उन्हें पढ़कर पाठक दंग रह जाता है। यह उपन्यास उस धीमी प्रक्रिया का विस्तार से विश्लेषण करता है, जो अलगाववाद के रूप में पैदा हो रही होती है। और जिसकी परिणति अंततः भारत-पाक विभाजन के रूप में सामने आती है। इस पूरी प्रक्रिया की बात करते समय लेखक किसी को क्षमा नहीं करता है। वह इतिहास के हर उस पात्र को कठघरे में खड़ा करता है, जो भारत-पाक विभाजन से जुड़ा हुआ है।

'जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था' एक रात का उपन्यास है। क़स्बे और उसके पास की बस्ती में किन्हीं कारणों से दो सम्प्रदायों के मध्य दंगे शुरू हो जाते हैं। दंगे के कारणों को उपन्यास पढ़ कर ही जाना जा सकता है। दंगों से पैदा हुई दहशत, असुरक्षा और ख़ौफ़ की रात का इतना स्वाभाविक और बखूबी से चित्रण किया गया है कि भय का कहर बरपाने वाली रात बेहद वास्तविक लगती है और पाठक स्वयं को दंगे में फंसा हुआ महसूस करता है।

उपन्यास के मुख्य पात्र रामेश्वर का चरित्र शुरू से लेकर अंत तक बहुत परिपक्व और सुलझा हुआ रहता है। लेखक ने इस पात्र का निर्वाह बेहद कुशलता से किया है, बौद्धिकता से लबालब और संवेदना से भरपूर। धर्म और सम्प्रदाय, राजनीति में धर्म का प्रवेश, देश का बँटवारा, कांग्रेस, मुस्लिम लीग, हिंदू महासभा, आर एस एस, सांप्रदायिक दंगे और उनके पीछे की तथ्य परक कहानियाँ दंगे के दौरान वह बताता है। रामेश्वर जो कहता है, इस कहन को जिस शैली में बाँधा गया है, वह अक्सर उन विदेशी उपन्यासों में देखने को मिलती है, जिनमें इतिहास के तथ्यों की पुष्टि की जाती है।

ज़िला कलेक्टर वरुण कुमार और एडिशनल एस पी भारत यादव दो ऐसे पात्र हैं, जो सरकारी तंत्र और प्रशासन के प्रति विश्वास और आदर पैदा करते है। दंगे में वे सिर्फ इंसानियत धर्म को निभाते हैं और दंगाइयों को पछाड़ कर पीड़ितों को बचाते हैं। युवा पात्र विकास, खुर्शीद को सही मार्गदर्शन मिलने पर उनका बेहतरीन सामने आता है।

युवा पीढ़ी उचित मार्गदर्शन के आभाव में कन्फ्यूज्ड है। धार्मिक ग्रंथों की शिक्षाएँ, व्याख्या और अर्थ ही धार्मिक नेताओं ने सुविधानुसार बदल दिए हैं; जिससे युवा पीढ़ी भटक गई है, सही अर्थों में धर्म को, उसकी परिभाषा को समझती ही नहीं। सोशल मिडिया मनघडंत ज्ञान बाँट रहा है। ऐसे में 'जुर्म -ए-इश्क़ पे नाज़ था' ताज़ी हवा के झोंके सा महसूस होता है, जो दिल दिमाग के सारे जाले साफ़ कर देता है।

मुख्य पात्र रामेश्वर द्वारा विकास को कही गईं कुछ बातें मन -मस्तिष्क पर गहरी छाप छोड़ती है

'सुनो बच्चे.....नफ़रत करना बहुत आसान है, लेकिन प्रेम करना बहुत मुश्किल है। इसलिए ये दुनिया आसान काम को ही चुनती है। मगर जीने के लिए का असली आनंद मुश्किल काम करने में ही है। मार देना बहुत आसान है, मगर बचा लेना बहुत कठिन है। इसलिए ज़्यादा लोग पहले वाले आसान काम को ही चुनते हैं। एक बात याद रखना भीड़ जिस भी दिशा में जा रही होती है वह दिशा और वह रास्ता हमेशा ग़लत होता है। भीड़ कभी सही दिशा में नहीं जाती है इसलिए क्योंकि भीड़ स्वयं नहीं चलती उसे चलाया जाता है।'

'पाकिस्तान बन जाने के बाद भी जो मुसलमान यह देश छोड़कर वहाँ नहीं गए, वो सब हमारे भरोसे पर यहाँ रुक गए थे। इस भरोसे पर कि कुछ भी हुआ तो हम उनको बचाएँगे। जिस तरह यह सलीम यहाँ रुका हुआ है न हमारे भरोसे पर, ठीक उसी तरह। अब ये हम सब की ज़िम्मेदारी है कि हम इस भरोसे को बचा कर रखें। हमारे अपने ही कुछ लोग हमें इस भरोसे को तोड़ देने के लिए उकसाते हैं, लेकिन तोड़ने वालों को कभी याद नहीं रखा जाता, जोड़ने वालों को याद रखा जाता है।'

एक जगह रामेश्वर भारत को बताता है ' मुसलमानों ने अपनी कट्टरता नहीं छोड़ी और धीरे-धीरे यह हुआ कि हिन्दू, जो दुनिया के दूसरे धर्मों के मुक़ाबले में कम कट्टर धर्म था, वह भी कट्टर होता चला गया। हिन्दुओं ने धार्मिक कट्टरता का पाठ मुसलमानों से ही सीखा है। आज तो स्थिति यह है कि आज का हिन्दू तो मुसलमानों की तुलना में और अधिक कट्टर हो गया है। और अब यह कट्टरता ही मुसलमानों को परेशान कर रही है।'

'भारत में इस्लाम कैसा होना चाहिए! यह बात केवल सूफ़ी संतों ने समझी, लेकिन उन सूफ़ी संतों का संदेश ही मुसलमान नहीं समझ पाए। मुसलमानों ने अपना आदर्श सूफ़ी संतों को न बनाकर आक्रमणकारी योद्धाओं को बनाया।'

उपन्यास पढ़ते हुए ऐसी बहुत सी बातें हैं जो जिज्ञासा बढ़ाती हैं। उत्सुकता जागती है, कभी मन विचलित होता है, कभी शांत तो कभी उद्वेलित।

रामेश्वर के साथ एक और पात्र है, शाहनवाज़। रामेश्वर उन्हें अपने बेटा मानते हैं और उसी के इर्द -गिर्द सारा उपन्यास घूमता है। बहुत कुछ आपको बता दिया, अब आप उपन्यास पढ़ कर पूरी कहानी जाने। इतना कहूँगी कि उपन्यास बेहद पठनीय है और यह उपन्यास घर-घर पढ़ा जाना चाहिए। लेखक ने शिल्प में कई नए प्रयोग किए हैं, जो उपन्यास को रोचक बनाते हैं।

मुझे अंत बहुत प्रभावशाली लगा। बेहद सकारात्मक। दंगे के बाद जिस भारत का जन्म होता है, उसे हिन्दू और मुसलमान दोनों थामते हैं।

डॉक्टर जोसफ़ मर्फ़ी की पुस्तक 'दा पावर ऑफ़ यौर सब कांशियस माइंड' पूरे विश्व में बहुत पढ़ी गई; क्योंकि इस पुस्तक में लेखक ने उस शक्ति को मनुष्य के भीतर बताया है, जिसे सभी धर्मों में तलाशा जाता है। अपनी भिन्नता के कारण यह पुस्तक बहुत सराही गई है।

'जिन्हें जुर्म- ए-इश्क़ पर नाज़ था' पंकज सुबीर का उपन्यास भी एक भिन्न संदेश देता है और एक ऐसा पैग़ाम ले कर आया है, जिसे पढ़ कर ही समझा जा सकता है। बेहतरीन उपन्यास लिखने के लिए पंकज को बधाई! यह बेडरूम की साइड टेबल पर रखने वाला उपन्यास है।

❑❑❑

101, Guymon Ct., Morrisville, NC-27560, USA
ईमेल: sudhdrishti@gmail.com

# पुस्तक समीक्षा

# देशी चश्मे से लंदन डायरी

**समीक्षक : डॉ. उषा किरण**

**लेखक : शिखा वार्ष्णेय**

**प्रकाशक : समय साक्ष्य**

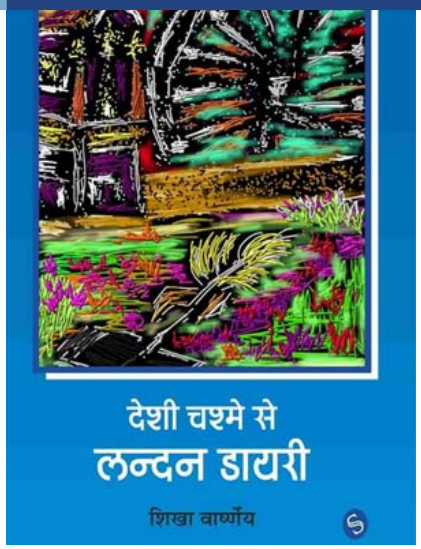




पूरी किताब लिखकर छपवाने के बाद पुस्तक की लेखिका शिखा वार्ष्णेय जब बेहद, मासूमियत से हमसे पूछतीं हैं कि मेरी किताब 'देशी चश्मे से लंदन डायरी' किस विधा के अन्तर्गत आएगी, तो उनकी सादगी पर बहुत प्यार आता है और कहीं पढ़ी ये पंक्तियाँ बरबस याद आ जाती है.... 'लीक पर वे चलें जिनके पग हारे हों'।

अब चाहे किसी भी विधा में आती हो पर उक्त पुस्तक बेहद मनोरंजक, ज्ञानवर्धक व संग्रहणीय है, जिसे शिखा वार्ष्णेय ने बहुत दिल से काफी रिसर्च व ऑब्ज़र्ब करने के पश्चात लिखा है। ऐसा लगता है जैसे हमारे लिए कोई झरोखा खोल दिया है लंदन से; या फिर जैसे कोई हमारी बहुत आत्मीय स्वजन दोनों देशों के बीच एक ऐसा दर्पण लेकर खड़ी हैं, जिसमें एक तरफ तो लंदन व आसपास की सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, भौगोलिक एवम् सामाजिक झलक देखने को मिलती है, तो दूसरी तरफ हम विदेशी परिप्रेक्ष्य में अपनी संस्कृति, सभ्यता व नैतिक मूल्यों को भी तुलनात्मक रूप से तौलते चलते हैं।

जब भी हमारे बच्चे या हम लंदन जाना चाहें या कि जा रहे हैं या जाकर लौटे हों, तो जो प्रश्न लगातार दिमाग में बंवडर मचाते हैं उन सभी का उत्तर है इस पुस्तक में।

लंदन की साफ-सुथरी सड़कें, वैभव-पूर्ण ऊँची इमारतें, बहुत सुंदर, साफ, हरे-भरे पार्क, सभ्यता, तमीज़, अनुशासन, खूबसूरत गोरे-चिट्टे, लम्बे जैसे साँचे में ढले मोम के पुतले जैसे लोगों को देख बरबस मुँह से निकलता है- '''गर फिरदौस बर रूये ज़मीं अस्त, हमी अस्तो हमी अस्तो'', 'लगता है स्वर्ग ऐसा ही होता होगा! कहीं कोई समस्या ही नहीं होती होगी यहाँ के लोगों को परन्तु जब शिखा की लंदन डायरी पढ़ी, तो सारा भ्रम जाता रहा कि नहीं आख़िर तो हम इंसान हैं, चाहे जहाँ रहें पूर्ण कैसे हो सकते हैं। सभी की अपनी उपलब्धियाँ हैं, तो परेशानियाँ और समस्याएँ भी हैं, जिनसे वे लगातार जूझ रहे हैं।

बचपन में जैसे बाइस्कोप वाला चंद पैसों में चुटकियों में हमें भारत भ्रमण करा देता था, ठीक वैसे ही 63 आलेखों के माध्यम से शिखा हमें बेहद रोचक-शैली में एक के बाद एक लेख पढ़ने के लिए मजबूर कर देती है। पहले आलेख 'पुरानी साख व गौरवपूर्ण इतिहास' में वे वहाँ के राजसी ठाठ-बाठ के बारे में बताते हुए कहती हैं कि आज ब्रिटेन भी बाकी देशों की तरह आर्थिक मंदी से गुज़र रहा है, ऐसे में इंगलैंड की रानी का हीरक-जयंती पर शाही सेलिब्रेशन में खुल कर ख़ज़ाना लुटाने पर वे अपनी प्रतिक्रिया देती हैं कि 'पूरा यूरोप किस आर्थिक मंदी से गुज़र रहा है अब यह किसी से छुपा नहीं है, पर बढ़ती बेरोज़गारी व गरीबी जैसी समस्याओं का असर कहीं पड़ता नहीं दिखाई देता।'

दूसरे आलेख 'लोमड़ी का आंतक' जब हम पढ़ते हैं तो हँसी आ जाती है। 'लो जी लंदनवासियों, हम जाने कब से बंदरों, गली के आवारा कुत्तों, साँपों, मक्खियों, मच्छरों से दो-दो हाथ कर रहे हैं और तुमसे एक लोमड़ी मौसी नहीं सँभल रहीं, नाक में दम कर रखा है उनका। वे लिखती हैं कि 'यू के एक ऐसा देश है, जहाँ सर्वोच्च पद पर महारानी के रूप में स्त्री ही आसीन है, वहाँ भी स्त्रियों के खिलाफ़ अपराध व भेदभाव के क़िस्से प्राय: सुनाई दे जाते हैं।' पढ़ कर हम कुछ सोचने पर विवश हो जाते हैं। पर वहीं जब हम पढ़ते हैं कि स्कूलों में लड़कों व लड़कियों को समान रूप से सिलाई, कुकिंग, छोटी-मोटी रिपेयरिंग, बुज़ुर्गों की देखभाल सिखाई जाती है, तो अच्छा लगता है।

हमारे अंधविश्वास पर, हँसने वालों, तोहमतें लगाने वालों की आँखों में आँखें डाल 'अंधविश्वास की व्यापकता' आलेख में शिखा पूछती हैं कि भाई ठीक है हमारी रोज़मर्रा की न जाने कितनी बातों को अंधविश्वास या रूढ़िवादिता कहा जाता है परन्तु भारत से बाहर लगभग सभी देशों व समाज में इस तरह की धारणाएँ प्रचलित हैं। वे कहती हैं -हाँ हम पत्थर की मूर्ति पूजें तो अंधविश्वासी और ये जो 'स्टोन हैज' को विरासत समझ सहेज रहे हैं वो क्या है? हम भूतों, चुड़ैलों को मानते हैं, तो आपके यहाँ भी तो हॉन्टेड हाउस हैं जहाँ प्रेतात्माएँ टहलती हैं। हैलोइन जैसे त्यौहार तो आप भी मनाते हैं... ठीक है हम परियों की, फरिश्तों की कहानियों से बच्चों को सपने दिखाते हैं, तो आपके सांता क्लॉज भी तो बच्चों को भरमाते ही हैं। यदि हम पुनर्जन्म में आस्था रखते हैं, तो मरने के अगले ही दिन पुन: ईसा मसीह का ज़िन्दा हो जाना भी तो वही है न?

अपने देश पर गर्व महसूस होता है जब ये 'प्रवासी का महत्त्व' आलेख में बताती हैं कि ब्रिटेन में भारत का चिकन टिक्का राष्ट्रीय पकवान माना जाता है। वह ब्रिटेन जिसकी आर्थिक उन्नति में विदेशी यात्रियों का बहुमूल्य योगदान है, जिसके प्रसिद्ध

विश्वविद्यालय की शान विदेशों से आने वाले छात्र ही बढ़ाते हैं।

अच्छा लगा पढ़ कर कि वहाँ के लोग हर संस्कृति को अपना लेते हैं। क्रिसमस के साथ होली, दीवाली, ईद, नवरात्रि, गरबा सब त्यौहारों को मिलजुल कर अनुशासित ढंग से मनाते हैं। वे लिखती हैं कि 'मतलब साफ है आपको अपने हाथ फैलाने का हक है पर वहीं तक जहाँ से किसी और की नाक नहीं शुरू होती'। वे पतझड़ को भी उत्सव की तरह मनाते हैं।

लिखती हैं कि जब भी इंडिया में कोई बड़ा हादसा होता है तो उसकी धनक लंदन प्रवासी भारतीयों के मन में भी छटपटाहट पैदा करती है। उनको भी बुरा लगता है क्योंकि इससे विदेशों में हमारे देश की छवि खराब होती है। वे मदद करने की भी कोशिश करते हैं।

'ऐसा भी चुनावी प्रचार' में लेखिका लिखती हैं कि हमारी तरह लाउडस्पीकर का शोर नहीं, कहीं कम्बल नहीं बँटते, घर-घर जाकर हाथ जोड़ने की भी परम्परा नहीं, साफ-सुथरी दीवारें, एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप के स्थान पर वे सब सिर्फ अपनी पॉलिसी एवं कार्यों का ब्यौरा देते हैं। यह सब चुनावी बवंडर से गुज़रे हम भारतवासियों को अनुकरणीय लगता है। साथ ही हैरानी होती है यह पढ़ कर कि यू के के प्रधानमंत्री व एम पी भी मेट्रो से ऑफिस जाने में गुरेज नहीं करते। साधारण घर में रहते हैं, आम लोगों की तरह लाइन में लगते हैं। मेयर 'बोरिस जॉनसन' साइकिल से ऑफिस जाते थे।

'गलियों के गैंग' पढ़कर ज्ञान होता है कि वहाँ गैंग्स की गुंडागर्दी से जूझ रहे समाज व अभिभावकों के लिए कितनी चिंता का विषय है। इसके अलावा बच्चों पर बढ़ता शिक्षा का दबाव, बढ़ती स्वास्थ्य समस्याएँ, मंदी की मार पर भी प्रकाश डाला है। अधिकारों की दुविधा जैसे लेख पढ़ कर लगता है कि बहुत कुछ समस्याएँ समान हैं। आपने युवकों की समस्याओं लाइफ स्टाइल व मानसिकता पर भी लिखा है। सोलह वर्ष की आयु के पश्चात माता-पिता से अलग रहने की मजबूरी और भविष्य में पुन: संयुक्त-परिवार की संभावना पर भी प्रकाश डाला है। शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन व प्रतियोगिताओं के बढ़ते प्रेशर के कारण वहाँ के बच्चों का दर्द शिखा को द्रवित कर देता है; क्योंकि वहाँ भी फ्रस्टेटेड होकर वे आत्महत्या कर रहे हैं।

माँ के भी नौकरी करने के कारण बच्चों की परवरिश की समस्या दोनों देशों में लगभग समान ही है। नैनी व क्रच के विकल्प मौजूद है पर सारे दिन माँ से अलग रहकर बच्चा माँ के सीने से लग रात में यही पूछेगा कि 'कल स्कूल से लेने आप आओगी न मम्मा...'। इस पुस्तक में बुज़ुर्गों की समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है। जहाँ हमारे देश में तीन पीढ़ियाँ आज भी कई परिवारों में हँसी-खुशी साथ रह लेती हैं, एक दूसरे का सहारा बनती हैं वहीं इंग्लैंड में ज़्यादातर लोग अकेले जीवन बिता रहे हैं। परन्तु कहीं न कहीं असहिष्णुता व आधुनिकता के चलते हम भारतीय भी इस व्यवस्था को अपनाते जा रहे हैं। जो बहुत दुखद है।

बहुत अच्छा लगा पढ़ कर कि जहाँ हमारे यहाँ हिन्दी की उपेक्षा होती है, लोग इंगलिश बोलने में शेखी समझते हैं, वहीं लंदन में हिन्दी को बहुत सम्मान प्राप्त है। स्कूलों में भी हिन्दी बहुत चाव से सीखते हैं व समय-समय पर हिन्दी में विभिन्न प्रतियोगिताएँ आयोजित होतीं हैं। वे हास्य के मूड में काका हाथरसी को याद करती हैं क्योंकि कभी उन्होंने रूस जाकर हिन्दी सीखने की बात की थी। कहती हैं वे आज होते तो कहते-

'पुत्र छदम्मी लाल से बोले केसरी नंदन,
हिन्दी पढ़नी होय तो जाओ बेटा लंदन।'

एक समय था जब दुनिया के हर कोने से बेहतर इलाज के लिए लोग लन्दन जाते थे, आज उसी लंदन शहर में अपने नागरिकों के लिए बेहतर स्वास्थ्य-व्यवस्था नहीं है। वहाँ की कमज़ोर होती अर्थव्यवस्था पर भी उक्त पुस्तक प्रकाश डालती है।

'यहाँ भी बाबा' पढ़ कर हैरानी होती है कि सैकड़ों एशियन लंदन में झाड़-फूँक या भूत- आत्माओं के भगाने के चक्कर में पैसों व जान से हाथ धो बैठते हैं।

'योगा डे' की तर्ज़ पर ही कुत्तों के लिए 'डोगा डे' की भी कक्षाएँ चलती हैं। धन्य हो! पढ़ कर हँसी आ जाती है। 'डब्बा वाला ऑफ़ लंदन' में वे कहती हैं कि किसी अंग्रेज़ को खाने की इतनी चिन्ता करते नहीं देखा, जितनी हम भारतीयों को रहती है कि 'बेटा शादी कर लो तब विदेश जाना वर्ना खाने-पीने की परेशानी होगी'। तो भई जिनके भी बच्चे लंदन जाना चाहते हैं या जा रहे हैं बेफ़िक्र होकर जाएँ। शिखा ने बताया कि हर तरह का डब्बा वाला, भारतीय खाने की व्यवस्था है वहाँ भी।

लिखती हैं कि हैरानी होती है कि यहाँ युवाओं में विवाह-संस्था के प्रति सम्मान माता-पिता व बुज़ुर्गों का सम्मान करने वाली युवा पीढ़ी बेहद सुलझी व इरादों में स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त स्कूल बस का महत्त्व वी.आई.पी. कल्चर खेलों के प्रति बढ़ती आशा, ऐसा भी दान (शुक्राणु दान), हॉर्न-संस्कृति, अधिकारों की दुविधा आदि विषयों पर भी बहुत बेबाकी से रोचक व ज्ञानवर्धक तरीके से लेखिका ने अपने विचार प्रस्तुत किए हैं।

वे बताती हैं कि बेशक भारतीय भारत से निकल आएँ पर उनके अंदर से भारत को नहीं निकाला जा सकता। भारत और उसकी संस्कृति किसी न किसी रूप में उनके अंदर साँसें लेती ही रहती है। यहाँ के रहन-सहन, व्यवहार, परम्पराओं को भले ही हमने छोड़ दिया है परन्तु अभी भी वहाँ उसे दिल में बसा रखा है और उसमें बहुत बड़ा हाथ टीवी चैनलों से प्रसारित होने वाले धारावाहिक फिल्मों व हिन्दी गानों का भी है। थेम्स के किनारे लगे साउथ ईस्ट सांस्कृतिक मेले व उसमें सजे भारतीय व्यंजनों के स्टाल देख याद कर वह कह उठती हैं-

'नींद मिट्टी की महक सब्ज़े की ठंडक
मुझको अपना घर बहुत याद आ रहा है।'

शिखा के रंग-रूप पर बिल्कुल भी न जाएँ क्योंकि उनका दिल पक्के हिन्दुस्तानी रंग में रंगा है और वे भारतीय संस्कृति व सभ्यता से पूर्णत: लबरेज़ हैं जो कि आपको इस पुस्तक को पढ़कर साफ नज़र आ जाएगा।

❑❑❑

हेड ऑफ़ दि डिपार्टमेंट (फाइन आर्ट)
मेरठ कॉलेज, मेरठ
मोबाइल -9412702551

# पुस्तक समीक्षा

## मैं बनूँगा गुलमोहर

**समीक्षक : डॉ. गरिमा संजय दुबे**

**लेखक : सुशोभित सक्तावत**

**प्रकाशक : लोकोदय प्रकाशन**

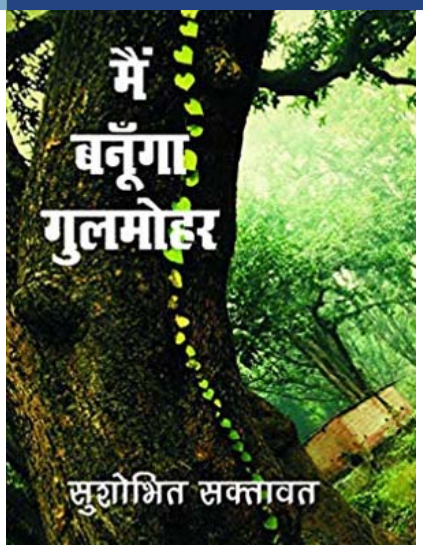




सुशोभित शक्तावत की 'मैं बनूँगा गुलमोहर' हिंदी साहित्य में एक नए युग की शुरूआत करने में सक्षम है। बरसों से फेसबुक और अन्य माध्यम से अपने लिए व्यापक स्वीकार्यता तो वे बना ही चुके थे। अपनी अद्भुत रचनात्मक प्रतिभा, गहरे दृश्य बोध, स्मृतियों के कोलाज में रंग भरते हुए, अपनी पत्रकारिता की जिज्ञासा व पाठ्य वृत्ति का भरपूर दोहन करते हुए, इतनी कम उम्र में चमत्कृत कर देने वाले लेखन के लिए भी वे जाने जाते हैं। यूँ तो हर विषय पर उनका ज्ञान व उनका लेखन आपको आश्चर्य में डाल देता है किंतु अपनी पहली ही कृति जो कि एक काव्य संग्रह है 'मैं बनूँगा गुलमोहर' से वे सितारा हैसियत प्राप्त कर चुके हैं, पहले ही दिन से यह पुस्तक बेस्ट सेलर में शामिल हो चुकी है।

प्रेम के जितने रंग हो सकते हैं, वे सब आप इन कविताओं में महसूस कर सकते हैं। साथ ही विस्मय से भर जाएँगे, जब पाएँगे कि एक प्लास्टिक का क्लचर, लाल बत्ती का सिग्नल और ब्लश वाली स्माइल, एक फ़ोन नंबर, एक मेट्रो ट्रेन में सफ़र करती लड़की, किसी उपन्यास का कोई किरदार भी प्रेम का विषय हो सकता है।

अनूठे बिम्ब, प्रतीक, उपमा, अलंकारों से सजी ये कविताएँ अद्भुत हैं।

भाषा का लालित्य, भावों की तीव्रता, प्रेम का ताप, हर किसी शै में प्रेम को परख लेने वाली अद्भुत नज़र का कमाल है कि आप बहते चले जाते हैं इस लेखनी के साथ। शब्द साथ छोड़ देते है, हठात्, चमत्कृत।

समीक्षा .? ......किसी एक कविता की समीक्षा ही अत्यंत कठिन है, फिर यह तो पूरा का पूरा सरोवर है साहित्य का, जिसमें इतने अनगिनत सुवासित पुष्प हैं कि इस नफ़रतों भरी दुनिया में एक फूल भी बिखरा दिया जाए, तो सारा संसार महक उठे। सुशोभित को पढ़ना आत्मा के, मन के उन सूखे कोनों को नमी का पोषण देना हैं, जो केवल बौद्धिकता की जुगाली से मृतप्राय हो रहे हैं। इन कविताओं को पढ़ना आत्मा का उत्सव है। सोचती हूँ लेखक तो उत्सव मूर्ति हो गया होगा लिखते-लिखते।

केवल केवल एक कविता पर ही कई पन्ने लिखे जा सकते हैं, फिर इतने सीमित शब्दों में पूरी किताब की समीक्षा करना कविताओं के साथ, कवि के साथ, प्रेम के साथ अन्याय होगा। और आज वही अन्याय मैं कर रहीं हूँ।

देखना चाहेंगे कुछ रंग  
कान्स की सुबह  
और सरपत की साँझे,  
तुम्हारी कल्पनाओं का पश्मीना,

मानवीकरण अलंकार का ऐसा प्रयोग हिंदी साहित्य में एक ताज़ी हवा का झोंका है। प्रकृति तटस्थ नहीं है, चैतन्य है और उसका हर तत्व जाग्रत हो शामिल है इन कविताओं में। इन कविताओं को पढ़ने के बाद मुझे तो लगा जैसे हर जड़-चेतन ज़िंदा शै है और मेरे इर्द-गिर्द हज़ार हज़ार आँखों का घेरा है, जो मुझ पर नज़र रखे हैं।

वर्ड्सवर्थ के पैंथेइसम और प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी वर्मा के छायावादी युग को याद कीजिए; उससे आगे ले जाती हैं इन कविताओं में प्रयुक्त ध्वनियाँ।

मानवीकरण का ऐसा प्रयोग है,  
सफेद गुलाब स्वप्न देखता है,  
घोंघों की तरह दम तोड़ देती है साँझ की धूप,  
दलदल निगल जाता था,  
सितंबर के कंधे पर काँपती रही लालटेन,  
समय की उतरती सीढ़ियों पर  
सूखी नदी के निशान हैं,  
जब-जब मुस्कुराती हो तुम  
रौशनी का रुमाल फैलता है  
जहाँ मोमबत्तियाँ सुबकती हैं  
बस ऊँघता हुआ समंदर  
दरख़्तों पर लदा लस्त-पस्त आकाश  
सुई की आँख से झाँकती चाह,  
और भी अनेक कई।,

प्रेम की नई परिभाषा, प्रेम के नए रंगों का एक पूरा धनक पाएँगें आप इन कविताओं में और धक्क से रह जाएँगें कि क्या इन पर भी, इस तरह भी प्रेम लिखा जा सकता है, प्रेम इस तरह भी किया जा सकता है। रोमांटिसिज़्म की मुकम्मल परिभाषा। प्रेम होता नहीं, प्रेम में जीना और प्रेम से प्रेम को देखना, हर शै में प्रेम का दर्शन, हर भौतिक भाव में प्रेम का अवलंबन Romaticism है जो इन कविताओं में तीव्रता से उभर आया है। देखें :

''प्रेम और आत्मनाश की एक समानांतर ग्रेविटी होती है''

एक कविता देखिए ''हाथ गुलाब भी हो सकते थे'', ''मन के मानचित्र पर यूँ भी कहाँ कोई विषुवत रेखा नहीं होती है'' या कि ''प्रणय पुरुष का एकालाप है'', ''दुनिया तुम्हारी अनुपस्थितियों से भरी हुई है'', में आप स्तब्ध रह जाते हैं। किसी जादूगर की तरह मन के कोमल अहसास का ऐसा वर्णन। सच में अनुपस्थिति में उपस्थित सांद्र हो जाती है। गोया कि तेरे होने से तेरे न होने में तू अधिक मौजूद है, हर तरफ है हर कहीं है।

होने में खोने का अहसास प्रबल होने लगता है। महादेवी वर्मा ने एक बार कहा था प्रतीक्षा में गहरा सुख है, प्राप्त में गहरी निराशा वैसा ही कुछ।

''गायत्री नाम के साथ जुड़ी स्मृतियाँ, ज्यों किशोर वय का पहला प्यार'',

''अकेली लड़की की दिनचर्या'', खुद लड़की हैरान रह जाए कि कौन सी परकाया प्रवेश कर इस अनुभव को जाना कवि ने, या कि कोई केमेरा है कवि के पास, जिससे घरों में झाँकता फिरता है और चुरा लेता है निजी पलों की मासूम हरकतें।

''सड़क पर लड़की'' जैसे शरतचंद्र की तरह स्त्रीत्व से भरे वे स्त्री मन के गहरे तक पड़ताल कर आते हैं। वैसा ही कुछ स्त्री पुरुष के प्रणय कविताओं में भी स्त्री मन को जैसे टटोला है, वह डरा भी देता है कि सामना होने पर इस लेखक से मन का कोई भाव छुपा भी रह पाएगा। आँखों की चितवन, शरीर की भंगिमाओं के कौन से अर्थ हैं, जो इस कवि की भेदक दृष्टि से छुपे रह सकेंगें। इस कवि की आँखों में मन का स्केनर लगा है क्या, जो गहरे बहुत गहरे अवचेतन के भाव भी पकड़ लेता है। कवि के पास बहुत आधुनिक राडार है, जिससे मन की कोई तरंग बच नहीं पाएगी।

दीप्ति नवल पर लिखी उनकी कविताएँ पढ़ तो खुद दीप्ति को अपने आप से प्यार हो गया होगा। किसी की नज़र से अपने को यूँ देखना अद्भुत अनुभव होता है। वह दीप्ति है, एक जोड़ी दंत पंक्ति धवल धूप में दीपती हैं। दीप्ति की मासूमियत, फ़ारुख का भलापन, उनकी फ़िल्मों के दृश्य का ऐसा बारीक वर्णन, रीड बिटवीन द लाइन्स, दृश्यों के प्रतीकों के ऐसे अर्थ जो खुद बनाने वाले ने न सोचें होंगे, विस्मित करते हैं।

वियोग, विरह की तीव्रता, प्रतीक्षा अवसाद नहीं, मीठी सी टीस के साथ याद करना, और प्रेमिका के न होने में उसके होने की कल्पना आपके रोंगटे खड़े कर देती है। एक ठंडी सी सिसकारी फुट पड़ती है इन पंक्तियों को पढ़कर, रोमांच और सिहरन पैदा करता ऐसा काव्यात्मक गद्य जिसके आगे कविता नतमस्तक हो जाए।

''पाने की हर कोशिश में खोने का प्रयोजन है''

''अभाव का अभाव खटकता है''।

छायावाद, रहस्यवाद, प्रेम और क्या क्या नहीं है उनकी कविताओं में। प्रकृति अपने पूरे लावण्य, लास्य और संगीत के साथ नृत्य करती सी दिखाई देती है, मानों खुश हो कि -अरे! अब तक तो हमारे सौन्दर्य को ऐसी उपमाओं से किसी ने नहीं नवाज़ा था। ओस, समंदर, पुष्प, साँझ, भोर, चंद्र, सूरज, शुक्र तारा, ध्रुव तारा, धूप, छाँव ऐसे तो न चितेरे गए थे कभी, ऐसे तो न देखा गया था कभी उनकी तरफ :

''नमक की ज़री वाला लहरों के पश्मीना''

''धूप धुले वर्षों के शहद से भरी''

अपने जन्मस्थल की उन मासूम स्मृतियों से गुज़रते यूँ लगता है, मानों हम लेखक के साथ सराफा स्कूल की क्लचर वाली लड़की से मिल लिए, या कि जान लिया कि बचपन कैसी सोंधी स्मृतियों का कोलाज है।

कच्ची मासूम स्मृतियों से भरे एक बच्चे के मासूम मन को याद करते दो बूँद आँख से न टपके आपके, ऐसा हो नहीं सकता।

पढ़ते-पढ़ते भय भी लगने लगता है लेखक की अति संवेदनशीलता से कि यह दुनिया इतनी मासूम नहीं, कि यह दुनिया इतनी उदार नहीं, जो मासूमियत को सहेज सके। अपनी संवेदनशीलता के दायरे से बाहर निकलना भी कभी-कभी ज़रूरी होता है कि यह दुनिया केवल भोर, साँझ मुस्कुराहटें, आँखों के कत्थई रंग और ब्लश वाली स्माइल ही नहीं है, कठोर धरातल पर कठोर यथार्थ भी एक सच्चाई है।

सौन्दर्य, काव्य के नए प्रतिमान गढ़ती, रूमानियत का नया संसार रचती ये कविताएँ आपको संसार से परे ले जाती हैं। ये कविताएँ कल्पना, स्वप्न, स्मृतियों, प्रेम की अकुलाहट, ऐंद्रिक प्रेम से परे मन की पवित्र भूमि पर कवि की पदताल है, जिसके निशान बहुत स्थाई हैं, बहुत गहरे से छप जाते हैं आपके मन पर, जिसे मिटा पाना किसी बारिश के लिए संभव नहीं।

इन कविताओं की दुनिया बड़ी लुभावनी है, भौतिकता के प्रपंचों से दूर कोमलता से सहलाती सी।

वहाँ आपके उलझ जाने और यथार्थ से कट जाने का जोखिम भी है, किन्तु फिर भी मन पर ओस की बूँदों सी शीतलता के छींटे इन कविताओं से हमें मिलेंगें यह तय है। अरसे बाद ऐसी भाषा का लालित्य कवि को आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, गौरापंत शिवानी, संस्कृत के विद्वान आचार्यों, रशियन, अंग्रेज़ी, फ्रेंच, स्पेनिश, जर्मन कलम के जादूगरों का मानस शिष्य साबित करता है।

भाषा प्राचीन और बिम्ब आधुनिक यह प्रयोग चकित कर देता है। किसी लय ताल, छंद में बँधे बिना ये कविताएँ एक प्रयोगधर्मी कवि का अधुनातन, सफल प्रयोग है।

उनकी अपनी भाषा, शैली, बिम्ब, प्रतीक उपमा अलंकारों की सहजता स्पष्ट दिखाई देती है। उनकी विद्वता और पैनी नज़र से शब्द चित्र उभरते हैं। भाषा में चमत्कार है, शब्द शक्तियों का सुंदर प्रयोग है। लक्षणा, व्यंजना कवि को प्रिय है।

वे दत्तात्रेय की तरह अनेक गुरुओं से उनकी विशेषता ले कर अपनी नैसर्गिक शैली में साहित्य साधना में लगे हैं। भाषा संस्कृत निष्ठ है और हिंदी के अद्भुत सौन्दर्य से पाठक का परिचय करवाती है। जहाँ सरल है वहाँ भी सीधे-सादे शब्दों का ऐसा सम्मोहक प्रयोग है कि मन उसके साथ ही बँध जाता है।

भाषा की क्लिष्टता के आरोप का जवाब यह युवा कवि तनिक दम्भ से देते हुए कहता है ''अपनी भाषा का स्तर ऊँचा उठाइए यदि मुझे पढ़ना चाहते हैं तो''। सच है साहित्य केवल मनोरंजन ही नहीं रुचियों के परिष्कार का माध्यम भी है। कुछ श्रेष्ठ पढ़ने का मन हो तो सुशोभित शक्तावत का यह कविता संग्रह अवश्य पढ़ा जाना चाहिए।

❑❑❑

18 बी वंदना नगर एक्स. इंदौर म.प्र.
मोबाइल : 9009046734
ईमेल : garima.dubey108@gmail.com

# पुस्तक समीक्षा

## हमन हैं इश्क मस्ताना

**समीक्षक : डॉ. रमेश कुमार गोहे**
**लेखक : विमलेश त्रिपाठी**
**प्रकाशक : हिन्द युग्म प्रकाशन**

यह उपन्यास कवि-कथाकार विमलेश त्रिपाठी का दूसरा उपन्यास है। उपन्यास की कथा महानगरीय जीवन शैली में नौकरीशुदा एकल परिवार में रह रहे पति पत्नी के व्यवहारिक संबंधों, व्यवहारिक समस्याओं, एकल परिवार की विडम्बनाओं, व्यक्ति, विशेषकर पुरुष चरित्र की परतों में दमित वासनाओं, स्त्री-पुरुष जीवन के पति-पत्नी और अन्येत्तर संबंधों, कार्यालयी जीवन व्यवहारों के साथ-साथ मनुष्य जीवन की उत्तर आधुनिक जीवन शैली की मूल आवश्यकता, उपयोग करने की विडम्बना, लोक व्यवहार के साथ-साथ उसके सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं पर चिंतन कराती, मानवीय मूल्यों की पड़ताल करती हुई आगे बढ़ती है।

कथानक में कोलकाता शहर, भोपाल और दिल्ली का वातावरण दिखाया गया है। जो कि महानगरीय जीवन शैली का परिचय देते हैं। तीनों शहर की जीवन संस्कृति में बहुत बड़े-बड़े बदलाव देखने को मिले हैं। घर में पति-पत्नी का पेशेवर होना, संतान और घर के काम काज के लिए मेड रखा जाना। ये सब आम बातें हैं। एक ओर जहाँ एकल परिवार व्यवस्था में घर के वृद्धों की जगह ख़त्म होती जा रही है। इस उपन्यास में उन समस्याओं पर भी गहरा चिंतन किया है। वहीं पति-पत्नी नोंक-झोंक, वाद-विवाद, छोटे-छोटे झगड़ों से बच्चों के मन पर पड़ने वाले आघात पर भी चिंतन किया है।

कथानक का समय उदारीकरण के बाद का समय है जब सामान्य मनुष्य भी फेसबुक जैसी सोशल साइट का उपयोग घड़ल्ले से करने लगा था। हिंदी रचनाकारों की एक फेसबुकी जमात पर भी व्यंग्य किया है, जो कि यहाँ पर दिखाने का सफल प्रयास किया है। इन रचनाकारों की बहस कभी-कभी झगड़े और गाली-गलौच तक उतर आती थी। नंगापन दिखाने में भी उन्हें कोई शर्म नहीं आती थी। अब फेसबुक उपयोगी के लिए ये घटनाएँ आम होने लगी थीं। कोई किसी पर ज़्यादा ध्यान नहीं देता था। अपने-अपने काम की दुनिया फेसबुक पर सभी खोज लेते थे। कोई चैटिंग बॉक्स में चला जाता था कोई और कहीं।

अमरेश भी कवि लेखक होने का अभिमान ढोने, सरकारी संस्थाओं द्वारा उचित सम्मान न मिलने और आम जगत् में एक बड़ा साहित्यकार के रूप में पहचान न मिलने से कभी-कभी साहित्य की इस पूरी दुनिया से चिढ़ने लगता है। आप क्या करते हैं का सवाल जैसे उसे उलाहना देने लगता है।

नौकरी नगरीय संस्कृति की एक विशेष पहचान है। एक ओहदा है। और घरेलू समस्याओं की जड़ भी। अगर पति-पत्नी दोनों नौकरीशुदा हुए, तो घर के सभी कामों के लिए दूसरे लोगों की ज़रूरत पड़ती है। भावनात्मक लगाव कम हो जाता है। परिवार के सभी सदस्य छिन्न-भिन्न अवस्था में अपने-अपने कमरों में घुसे रहते हैं और अब मोबाईल लैपटाप या कम्प्यूटर पर।

जीवन की तमाम उलझनें, त्रासदी और मनोविकार जो कि आज के समय की लगभग सभी के जीवन में कहीं न कहीं दिखाई दे ही जाती हैं, वे कभी-कभी हमारे कार्य व्यवहार में सामने आने लगती हैं। कई बार कार्यालयों में होने वाली बहसें, टशन और मनमुटाव के पीछे भी सीधी वजहें हमारी ये ही बातें होती हैं। अमरेश जो कि अपनी आभासी दुनिया के पीछे अपना घर बरबाद कर लेता है। पत्नी से उसका संबंध लगभग ख़त्म सा हो जाता है और अब उसे अपनी नौकरी पेशे की जगह कार्यालय की भी परवाह नहीं है।

यह एक पुरुष की कहानी है जो अपने व्यवहारिक पक्ष को सैद्धान्तिकी से कभी नहीं जोड़ पाता। वो सैद्धान्तिकी से कोसों दूर होता चला जाता है। पत्नी अनुजा को विक्षिप्त जैसी स्थिति में ला देता है। अनुजा को धोखा देता है। मंजरी की आत्महत्या का गुनहगार भी अमरेश है और सब कुछ खोकर वह शिवांगी की ओर रुख करता है। उसने अपने जीवन में कभी भी सैद्धान्तिक रहना ना ही सोचा ना उसकी आवश्यकता महसूस की। जो उसके साथ होता गया उसे वह स्वीकार करता गया। उसे ठीक करने के कई विकल्प उसके पास हो सकते थे, पर यहाँ कोई विकल्प प्रस्तुत ना करने के पीछे कथाकार का क्या उद्देश्य रहा होगा? अब इस तरह के प्रश्नों का कोई सीधा उत्तर किसी के पास शायद ही होगा। कहानी की समाप्ति के साथ ही हम अपनी-अपनी आभासी दुनिया की पड़ताल और भोगे हुए यथार्थ की अतीत यात्रा करने लगते हैं।

❑❑❑

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग गुरु घासीदास विश्वविद्यालय
बिलासपुर (छ.ग.)
मोबाइल : 9425629955

# पुस्तक समीक्षा

# दो ध्रुवों के बीच की आस

**समीक्षक : संतोष मोहंती 'दीप'**

**लेखक : डॉ. गरिमा संजय दुबे**

**प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर**

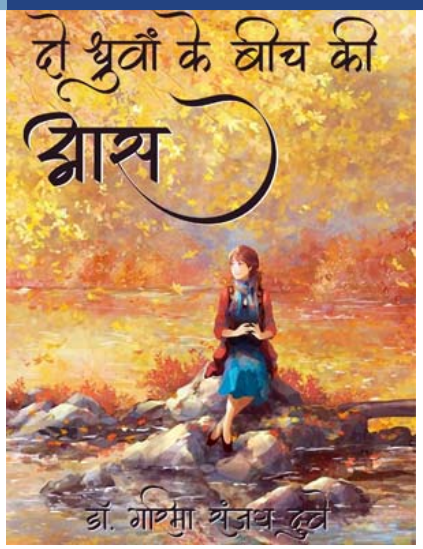


डॉ. गरिमा संजय दुबे जी द्वारा रचित इस कहानी संग्रह में विविध कहानियों के माध्यम से परिवार, समाज तथा आस-पास के परिवेश में व्याप्त विभिन्न पहलुओं को छूने का सार्थक प्रयास किया गया है। प्रत्येक कहानी अपने आप में परिपूर्ण हो बहुत कुछ कह जाती है।

प्रथम कहानी ही कहानी संग्रह के शीर्षक को ओढ़े हुए अत्यंत ही सहजता से नर्मदा नदी की निर्मलता तथा इसकी पुनीता की कथा कह जाती है। इस कहानी में नानाजी तथा उसकी नातिन नव्या को मुख्य पात्र के रूप में रखकर नर्मदा तट की सुंदरता, पूजा, आरती तथा उसके संस्कारों, परम्पराओं एवं सौंदर्य को समेटे सजीव चित्रण आँखों के आगे सहजता से सजीव होने लगते है। 'दो ध्रुवों के बीच' , दो पीढ़ियों के बीच सुंदर सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश में मन को सुकून देते हुए से प्रतीत होते हैं।

अगली कहानी 'बुत' अत्यंत ही मर्मस्पर्शी है जो हृदय को भीतर तक प्रभावित कर जाती है। विवशता का खाका खींचती हुई, मनुष्यों को बुत बनाकर प्रयोग कर आधुनिक बाज़ार व्यवस्था की शैली पर प्रहार करती हुई यह कहानी लेखिका के अतिसंवेदनशील तथा करुणा से परिपूरित मानस मन को अभिव्यक्त कर जाती है।

'ज़मीन ' कहानी के माध्यम से गाँव की ज़मीन की महत्ता को अत्यंत ही व्यावहारिक तरीके से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। 'ख़ैरात' कहानी आरक्षण की कटुता को प्रभावशाली एवं मनोवैज्ञानिक शैली में प्रस्तुत कर कई प्रश्नों को सामने रखती जाती है। आरक्षण का लाभार्थी सुविधासंपन्न होने के पश्चात भी निरंतर इसका लाभ पीढ़ी दर पीढ़ी प्राप्त करता रहता है और यह ख़ैरात उसे अनारक्षित वर्ग के सामने और दयनीय कर जाती है। नीतिकारों तथा राजनीतिज्ञों पर यह कहानी एक करारा प्रहार है।

इसी तरह 'मरहम' बेजान मूर्तियों के माध्यम से मनुष्य की क्रूर मानसिकता तथा सामाजिक पाषाणता का अद्‌भुत चित्रण है।

'ऋणं कृतवां' कहानी अत्यंत ही सहज शैली में क़र्ज़दार बन सम्पन्नता को ओढ़ने की प्रवृत्ति पर कठोर प्रहार है, जो एक सटीक सन्देश भी दे जाती है। 'प्रतिदान' में नारी शक्ति की गाथा, उसके त्याग, समर्पण, सहनशीलता को बड़ी ही मज़बूती के साथ प्रस्तुत किया गया है। पुरुष के अहंकार को परास्त करने का साहस भी एक नारी के पास ही होता है।

'पन्ना बा' एक किन्नर की जीवन शैली, उसकी वेदना, पीड़ा, तिरस्कार को बड़े ही मार्मिकता के साथ प्रस्तुत करती है।

'पुरुषार्थ', 'मरीचिका', 'अब मैं सो जाऊँ', 'ओर कई', 'निर्णय', 'आर टी आई', 'पीताम्बरा', 'किरायेदार', 'माँ', 'बाबूजी', 'डूब', 'जीवन राग', आदि सभी अन्य कहानियाँ अत्यंत ही सहजता, मार्मिकता तथा व्यावहारिकता के साथ अपने विषय के साथ पूर्ण न्याय करती हैं। हर कहानी में एक ज्वलंत विषय को अत्यंत ही पुरज़ोर तरीके से उठाया गया है। हर कहानी में उसके मनोविज्ञान को लेकर भी गहराई से पड़ताल की गयी है। सामाज में व्याप्त दूषित मानसिकता को भी मज़बूती से 'पीताम्बरा' में उठाया गया है जिसमें समस्या के समाधान को भी प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है। 'मरीचिका' में आज की युवा आधुनिक जीवन शैली की कटुता को प्रस्तुत करते हुए लिव इन रिलेशन पर कठोर प्रहार किया गया है। 'अब मैं सो जाऊँ' एक ऐसी मनोवैज्ञानिक कहानी है, जिसमें अपराध बोध के कारण निर्मित कुंठा भाव का सजीव वर्णन है।

इस कहानी संग्रह की लेखिका डॉ. गरिमा संजय दुबे ने अपने हर पात्र के साथ न्याय किया है, उसकी पीड़ा को समझा है, उसके मनोविज्ञान में उतरने की, उसकी मनोव्यथा को गहराई से छूने हेतु सार्थक प्रयास किया है। प्रत्येक कहानी में कथानक पूर्ण कसावट के साथ प्रस्तुत किये गए हैं तथा समस्याओं के साथ समाधान को भी सुझाया गया है। इन कहानियों का सबसे सशक्त पक्ष इनकी भाषा शैली है, जिसमें एक निरंतर प्रवाह बना रहता है। इनमें जगह-जगह परिस्थितियों के अनुकूल मालवी तथा निमाड़ी बोली का प्रयोग कर अभिव्यक्ति को सहजता प्रदान की गयी है; जिसके लिए लेखिका साधुवाद की पात्र हैं। इन कहानियों के पठन के पश्चात् निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि इनके सृजन में अवश्य ही गहरे अध्ययन को समावेशित किया गया है जिससे कहानी को जीवंतता प्राप्त होती गई है। समाज तथा आसपास के परिवेश में व्याप्त व्याधियों, जटिलताओं को प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत करने में लेखिका सफल हुई हैं।

❐❐❐

इंदौर
मोबाइल : 9425957064

# पुस्तक समीक्षा

## हसीनाबाद

**समीक्षक : डॉ. कमल किशोर गोयनका**

**लेखक : गीताश्री**

**प्रकाशक : वाणी प्रकाशन**

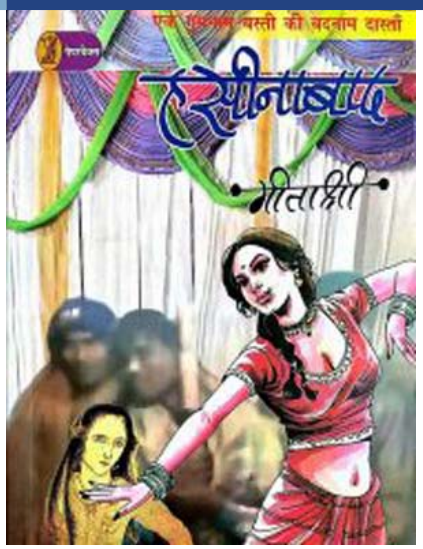




'हसीनाबाद' ठाकुरों द्वारा अपनी अय्याशियों के लिए बसाई गई बस्ती का नाम है। यह बिहार के मुज़फ्फरपुर की कहानी है जो लेखिका का जन्म-स्थान है। ठाकुर सजावल प्रताप सिंह पूर्वजों की परंपरा को निभाते हुए चुन-चुनकर हसीनाओं को अपनी रखैल बनाकर रखते हैं और इनकी संतानें उनके नौकरों, तामीरदारों के रूप में काम आती हैं। उनकी एक रखैल सुंदरी देवी की बेटी गोलमी इस उपन्यास की नायिका है। सुंदरी ठाकुर के आतंक में जीती है, लेकिन वह अपनी बेटी गोलमी को इस नर्क से बचाना चाहती है। वह चाहती है और प्रयत्न भी करती है कि गोलमी पढ़-लिखकर एक नई ज़िंदगी जिये, पर गोलमी तो नाच-गान के लिए बनी है। नृत्य उसका जीवन है, स्त्री की निजता और स्वनिर्णय के अधिकार की रक्षा, उसका संकल्प, सब पर विश्वास करने की सरलता उसका स्वभाव, नचनिया से मंत्री तक पहुँचने की कुशलता और पुरुष सत्ता को चुनौती देने का साहस तथा सत्ता के छल-छद्म से मुक्त होकर अपने पूर्व जीवन में लौटने का अकल्पनीय निर्णय लेने की क्षमता। ऐसी है 'हसीनाबाद' की नायिका गोलमी जो रखैल की बेटी होकर एक नया स्त्री-विमर्श रचती है। समाज की एक निम्नतम, तिरस्कृत, अपमानित स्त्री, ठाकुरों के समाज में स्त्री को उसका स्वत्व देती है, निजता का अधिकार देती है और सत्ता के शीर्ष तक पहुँचती है, परन्तु वह फिर भी अपने समाज की लड़कियों के कल्याण के कामों में लगी रहती है। नृत्य उसके लिए कला है, वह खुद कलाकार है और वह अंत में अपने कला जीवन में लौट जाती है। वह भद्र समाज को बदलने का झूठा आदर्श नहीं पालती। वह जिस रखैल दुनिया से आई है, उसे ही वह कीचड़ से निकालकर एक नई मानवीय दुनिया में ले जाने के लिए मंत्री पद से त्यागपत्र दे देती है। यह पलायन नहीं है, अपनी जड़ों को अभिशप्त जीवन से मुक्त करने तथा उसे नए जीवन देने की शुरुआत है।

इस प्रकार गीताश्री का यह स्त्री-विमर्श किसी मध्यवर्गीय शिक्षित स्त्री का विद्रोह या कायाकल्प नहीं है, बल्कि अपमानित भोग्या रखैलों में स्त्री के अस्तित्व तथा निजता की शक्ति उत्पन्न करना है। वह स्त्री के रूप में चट्टान बन जाती है जिसके ऊपर से नदी का पानी छलछलाता निकलता है और वह कभी भँवर, कभी प्रवाह, कभी किनारा और कभी झरने का संगीत बन जाता है। गोलमी स्त्री के इस रूप में से निर्मित होती है। वह चट्टान है पर नदी के संसर्ग से उसका व्यक्तित्व पूर्ण होती है। उसमें कठोरता और दृढ़ता के साथ चट्टान का ठोसत्व है तथा उसमें नदी की गतिशीलता, चंचलता, निर्मलता, स्थिरता एवं संगीतात्मकता है। लेखिका ऐसा स्त्री-विमर्श निर्मित करती है जिसमें क्रांति के साथ निर्माण भी है और यही भारतीय स्त्री का सच्चा विमर्श हो सकता है।

हिन्दी उपन्यास में प्रेमचंद पहले लेखक थे जिन्होंने वेश्या समस्या पर 'सेवासदन' उपन्यास (दिसंबर, 1918) तथा 'वेश्या' कहानी लिखी थी। 'सेवासदन' की खूब चर्चा हुई और उस समय के अनुसार वेश्याओं के लिए एक अलग बस्ती तथा वेश्या-पुत्रियों के लिए 'सेवासदन' की स्थापना का विचार रखा। प्रेमचंद की यह बड़ी क्रांति थी। किसी हिन्दी लेखक ने वेश्या-समाज पर ध्यान दिया था, लेकिन 'हसीनाबाद' में वेश्या नहीं रखैलों के जीवन की कहानी है और रखैल की बेटी अपनी माँ की नृत्य कला अपनाकर भी अपना एक नया रास्ता बनाती है और उसका अंत महिलाओं के एक बैंड को अपनाने तथा उससे स्वयं अपने पैरों पर खड़े होकर स्वाभिमान से जीवन जीने से होता है। गीताश्री ने इसे स्त्री के स्वत्व से, निजता के अधिकार से तथा पुरुष सत्तात्मक समाज में अपनी सत्ता को स्थापित करके स्त्री-विमर्श का महत्त्वपूर्ण उपन्यास बना दिया है। 'सेवासदन' की तुलना में 'हसीनाबाद' में एक नया प्रसंग है, स्त्री के संबंध में एक नई दृष्टि है और स्त्री को आधुनिक बनाने का कथात्मक प्रयास है। 'हसीनाबाद' प्रेमचंद से आगे बढ़ी हुई कृति है और मुझे विश्वास है कि अपने नए स्त्री-विमर्श के कारण वह पठनीय और चर्चित बना रहेगा। 'हसीनाबाद' स्त्री के आत्मबोध में बदलकर गीताश्री ने अपने स्त्री-विमर्श की झलक दे दी है। गोलमी ठाकुर की संतान है और वही ठाकुर-तंत्र की स्त्री-भोग की परंपरा को बदलकर आधुनिक चेतना का स्पर्श देती है। यह ठाकुर तंत्र के विध्वंस पर स्त्री शक्ति के नवनिर्माण का संकल्प है और यही उपन्यास की आत्मा है।

❑❑❑

ए-98, अशोक विहार,
फेज़ प्रथम, दिल्ली-110052
फोन : 011-27219251, मो. 9811052469, 7982117567
ईमेल : kkgoyanka@gmail.com

# पुस्तक समीक्षा

# नक़्क़ाशीदार केबिनेट

**समीक्षक : मनीषा कुलश्रेष्ठ**

**लेखक : सुधा ओम ढींगरा**

**प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर**

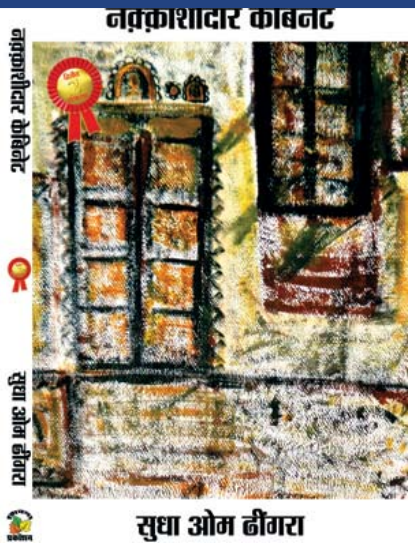


भीषण हरीकेन चक्रवात की आशंका और अफ़रा-तफ़री से शुरू होने वाला यह उपन्यास, इसकी कथा-नायिका जो डॉक्टर है और अमेरिका में रहती है, को अतीत में ले जाता है। वह बच्चों से खाली हो चुके नीड़ में अपने हमपेशा पति के साथ रहती है। हरीकेन के भय के बीचों बीच भी कभी वह भारत में लड़कपन में बीते सावन के झूले याद करती है, तो कभी दादी से सुनी प्रलय की कहानी। चक्रवात निकट आ जाता है। पति-पत्नी मृत्यु का साक्षात्कार करते हुए क्लोज़ेट में घुस जाते हैं और नायिका सम्पदा के मन में विचारों का बवंडर चलता है।

इस तूफान में सम्पदा की प्रिय मध्ययुगीन कला के नमूने सी नक़्क़ाशीदार केबिनेट औंधे गिर जाती है। वह केबिनेट केवल केबिनेट नहीं था। अनुभवों और यादों का ख़ज़ाना था। वह उसे उठाती है जिसमें पानी भर गया है, काँच टूट गए हैं। कुछ फ़ाइलें नष्ट हो गई हैं। मगर एक डायरी उसके हाथ पड़ती है। संपदा को वह पंजाबी लड़की सोनल याद आती है जिसने यह केबिनेट उपहार में और अपनी आपबीती की डायरी उसे सौंप दी थी।

बस उसी सोनल के जीवन की संघर्षपूर्ण, मार्मिक और जीवट भरी कहानी है नक़्क़ाशीदार केबिनेट। सोनल का गाँव, वहाँ पीछे छूट गया सम्पन्नता के चलते षड्यंत्रों के हत्थे चढ़ा अतीत। बड़ी बहन मीनल की हत्या! खालिस्तान की नींव, अशांत पंजाब के चलते सोनल ने बाद में पूरा परिवार खो दिया सिवा माँ के। उस पर रिश्तेदारों के लालच के चलते माँ-बेटी हमेशा ख़तरे में घिरी रहीं। सोनल ने इसी भय के बीच बचपन के दोस्त और मनमीत सुक्खी से विवाह न करके अमेरिका में बसे एक डॉक्टर से शादी के लिए हाँ कर दी थी कि गोली- बंदूकों, षड्यंत्रों से दूर भाग जाए। उसके कारण सुक्खी भी कहीं जान से हाथ न धो बैठे।

शादी के तुरंत बाद ही डॉ. बलदेव के अजीब व्यवहार से सोनल आशंकित थी मगर कुछ समझ न सकी। लेकिन जब डॉ. बलदेव की असलियत सामने आई तो वह भाग गई, उसे बूढ़े अमरीकन दंपत्ति ने शरण दी। पूरी कहानी अब मैं नहीं बताऊँगी इस रोचक उपन्यास की। आप खुद पढ़ें।

लेकिन संपदा और उसके बैकयार्ड में पनाह और भोजन पाने वाली कमली हिरणी ने मुझे बहुत मोहा, यह उपन्यास का तीसरा आयाम है। कमली हरीकेन के बाद उजड़े जंगल से निकल अपने बच्चों संग संपदा के पेटियो में शरण पाने चली आई थी। मूक जानवरों और मानव की मित्रता को सुधा ओम ढींगरा इतनी सुंदरता से प्रस्तुत करती हैं कि मन गीला हो जाता है।

संपदा का इस प्राकृतिक आपदा में आल्थी पाल्थी मार बैठना एक योगी और लेखक दोनों के आचरण का पता देता है। जाने क्यों मुझे संपदा में सुधा जी दिखीं, जो न जाने कितनी सोनलों को अमरीका और भारत दोनों में आत्मनिर्भर बनाने के प्रयास में हैं।

इस उपन्यास में पाश की उपस्थिति चकित करती है, एक मृत पात्र की तरह। उपन्यास अंत में बहुत से ज्वलंत सवाल उठाता है। धार्मिक कट्टरता, हिंसा और भारत की विविधता में छिपे अलगाव के तंतु। लेकिन भारत की एकता की रीढ़ की मज़बूती भींचकर नहीं। सोनल - सुक्खी की कहानी के पैरेलल डॉ. संपदा और डॉ. सार्थक की मानवीयता चलती रहती है। वे स्वयं बच जाते हैं, मगर अगली सुबह चक्रवात के पीड़ितों की सहायता हेतु निकल पड़ते हैं।

एक रोचक अनुभव रहा है यह उपन्यास पढ़ना। दो भिन्न परिवेशों पर टिका यह उपन्यास जिज्ञासा बनाए रखता है कि सोनल के संघर्षों की गाथा आख़िर कहाँ विराम पाएगी? पाठक भी संपदा संग डायरी पढ़ता हुआ बैठा रहता है। सुधा जी की क़िस्सागोई, दृश्यात्मकता और बहुत मीठी संवाद परक भाषा, आपको अमरीका में बसे भारतीयों के जीवन की जीवंत झाँकियों से रू-ब-रू कराती है। भाषा में रोचकता और कोमल व्यंजनात्मकता इस उपन्यास को पठनीय बनाती है।

हमारी विडंबना है कि हम साहित्य को धाराओं में बाँध कर बहुत से बेहतरीन साहित्य को मुख्यधारा से बाहर हाशिये पर टाँग देते हैं, जैसे प्रवासी साहित्य। जबकि अर्चना पैन्यूली, पुष्पिता अवस्थी, सुधा ओम ढींगरा, दिव्या माथुर, ऊषा राजे समर्थ महिला कहानीकार हैं, जिन्हें पढ़ते हुए मुझे हमेशा लगता है कि इनके साहित्य पर अलग से नहीं मुख्यधारा में बात होनी चाहिए।

❐❐❐

३८ लैंड्सडाउन पार्क, थुरुविक्कल, पोस्ट अक्कुलम, त्रिवेंद्रम, केरल 695031
मोबाइल : 9911252907,
ईमेल : manishakuls@gmail.com

# पुस्तक समीक्षा

# वैश्विक संवेदन-संसार और प्रवासी महिला कहानीकार

**समीक्षक : डॉ. नीना मित्तल**

**लेखक : डॉ. मधु संधु**

**प्रकाशक : अमन प्रकाशन, कानपुर**

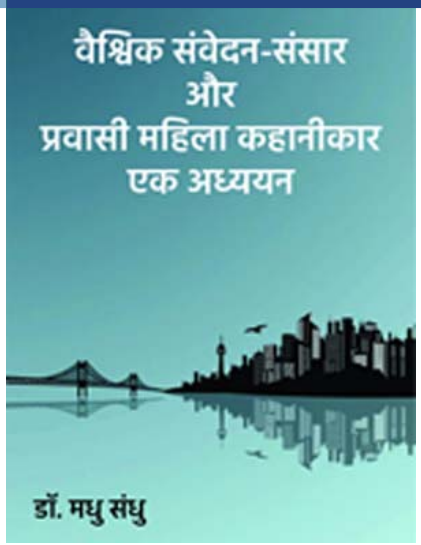


कथा साहित्य में मेरी शुरू से ही रुचि रही है। कथा आलोचना, विशेषत: कहानी आलोचना और शोध पर बात करें तो डॉ. मधु संधु का इस क्षेत्र में वर्चस्व है। विगत एक दशक से उनके आलेख, शोधपत्र, शोधग्रंथ लगातार प्रवासी कहानी पर आ रहे हैं। उनका अध्ययन क्षेत्र व्यापक है और आलोचना दृष्टि पैनी। प्रवासी महिला कहानीकारों द्वारा रचित कहानियों में एक ही धरातल पर सांसारिक संवेदना को सँजोने का स्तुत्य प्रयास डॉ. मधु संधु द्वारा रचित 'वैश्विक संवेदन संसार और प्रवासी महिला कहानीकार: एक अध्ययन' पुस्तक में मिलता है। डॉ. मधु संधु गुरु नानक देव विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष रह चुकी हैं। 'द सन डे इंडियन' ने उनकी गणना इक्कीसवीं शती की 111 हिन्दी लेखिकाओं में की है। दो कहानी संग्रह, एक कविता पुस्तक, दो संकलनों, चार कोश ग्रन्थों के अतिरिक्त उनकी कथा साहित्य पर किताबें आ चुकी हैं, जिनमें कहानीकार निर्मल वर्मा पर, साठोत्तर महिला कहानीकार, कहानी का समाजशास्त्र, महिला उपन्यासकार, साहित्य और समाज, हिन्दी का भारतीय और पाश्चात्य कथा लेखन, आदि अनेक शोध तथा आलोचना केंद्रित पुस्तकें आ चुकी हैं।

उनकी 'वैश्विक संवेदन संसार और प्रवासी महिला कहानीकार: एक अध्ययन' पाठकों का साधारणीकरण करती हुई संवेदना की उसी भावभूमि से निसृत होकर अध्ययन का एक विस्तृत फ़लक हमारे सामने प्रस्तुत करती है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' की बात करते हुए हम विश्व को ही एक परिवार मानते हैं, तो उसके सदस्यों की मानवीय संवेदनाओं को कैसे पीछे छोड़ सकते हैं। प्रवासी साहित्य वैश्विक स्तर पर अपनी एक महती पहचान रखता है। प्रवासी महिला कहानीकारों की अप्रतिम कहानियों में व्याप्त बदले जीवन संदर्भों, नई- पुरानी समस्याओं, देश- काल और वातावरण के अनुरूप कथानकों एवं नए मूल्यों को डॉ. मधु ने अपने अध्ययन का विषय बनाया है। अमेरिका से उषा प्रियम्वदा, सुषम बेदी, सुधा ओम ढींगरा, इला प्रसाद, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, ब्रिटेन से नीना पॉल, दिव्या माथुर, उषा राजे सक्सेना, कादंबरी मेहरा, डेनमार्क से अर्चना पेन्यूली, संयुक्त अरब अमीरात से पूर्णिमा बर्मन, कैनेडा से स्नेह ठाकुर, फ्रांस से मेनका शेरदिल- यानी विश्व के इस-उस हर कोने से लगातार लिख रही कहानीकारों की कहानियाँ यहाँ चर्चा का विषय हैं।

स्वदेश की जड़ों से अलग होकर परदेस की धरती पर प्रतिदिन आड़े आने वाली समस्याएँ, झेले हुए दुख, संत्रास, प्रवासी महिला कहानीकारों द्वारा भोगे गए पीड़ादायक यथार्थ उनके अंतस से निकल शब्दों का जामा पहन कर कहानी के रूप में प्रकट हुए हैं। डॉ. मधु संधु ने प्रवासी कहानीकार द्वारा चित्रित आम आदमी की इसी पीड़ा को अपनी पुस्तक में खुली वैचारिक चर्चा के रूप में स्थान दिया है। उन्होंने विभिन्न स्रोतों से संकलित प्रवासी महिला कहानीकरों की कहानियों के अथाह समुद्र में कुशल गोताखोर की भाँति अत्यन्त गहरे में पैठकर कथा जल को खँगाला है और उसमें से कुछ बहुमूल्य मोती लाने का प्रयास किया है।

अपनी इस पुस्तक की भूमिका में इसी बात को स्पष्ट करते हुए वे लिखती हैं-

''यह कहानी संसार प्रवास का दर्द और प्रवास की अनिवार्यता लिए है, स्थायी रेजीडेंट की अनुभूतियाँ/ उपलब्धियाँ और संघर्ष, प्रतिक्रियाएँ तथा इच्छित पाने का उल्लास समेटे है। यह साहित्य उखड़ने की पीड़ा, कुछ छूट जाने की वेदना एवं विश्व बाज़ार में अपनी ऊँचाई महसूसने का गर्व एक साथ चित्रित कर रहा है। यहाँ अपनी धरती से दूर होकर भी अपनी संस्कृति से बंधे अर्थ-समृद्ध लोगों की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ हैं।''

इसी संदर्भ में मुझे याद आती है मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'यह मेरी मातृभूमि है' के नायक की मानसिक वेदना- प्रवासी होकर भी स्वदेश के आकर्षण से पूरित- भरे पूरे परिवार एवं प्रवास को त्याग कर अंतिम समय मातृभूमि के रजकण में विलीन होने को तत्पर। बाबा नागार्जुन भी अपनी कालजयी कविता 'सिंदूर तिलकित भाल' में प्रवास से मिले दुख के प्रति अपने उद्‌गार प्रकट करते हुए लिखते हैं-

यहाँ भी
व्यक्ति और समुदाय
किन्तु जीवन भर रहूँ
फिर भी
प्रवासी ही कहेंगे
हाय।

अपने विवेचन को उन्होने 17 शीर्षकों में बाँटा है। 1. अछूती विषयवस्तु की दस्तक 2. समलैंगिकता/ उभय लैंगिकता, 3. लिव-इन संबंध, 4. परामनोविज्ञान/ दिव्य अनुभूतियों का अप्रत्यक्ष आभास, 5. संस्कृति चित्रण, 6. नस्लभेद/ रंगभेद के अभिशाप, 7. आतंकवाद और आतंक, 8. प्रवास और दारिद्रय, 9. वार्धक्य यानी जीवन की चौथी ॠतु, 10. दूसरे आदमी को झेलती संतान की कहानियाँ/ हैफ़फादर के भिन्न रूप, 11. नारी उत्पीड़न, 12. नायक प्रधान कहानियाँ/पुरुष उत्पीड़न, 13. बचपन के भिन्न रूप, 14. पासपोर्ट और वीज़ा से संबन्धित समस्याएँ, 15. ग्रामीण, चुनौतियाँ और समस्याएँ, 16. अंतर्राष्ट्रीय विवाह, 17. मानवाधिकार।

विवेचना का मूलाधार इन कहानियों के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, मनौवैज्ञानिक मुद्दों में समाए अत्यन्त संवेदनशील और अछूते विषयों और विषमताओं को प्रकट करना है। लेखिका ने बड़े तर्कसंगत ढंग से इन विषमताओं की संवेदनाओं को एक ही धरातल पर लाकर पंक्तिबद्ध किया है। इसी कारण लेखिका और पाठक का सीधा सहज सम्प्रेषण पुस्तक में वैयक्तिक प्रभावमयता को प्रकट करता है।

विवेचित विषयों को प्राचीन एवं आधुनिक परिप्रेक्ष्य में देखा गया है। समलैंगिकता/ उभयलैंगिकता को परिभाषित करने के उपरांत लेखिका ने स्कन्ध पुराण, भागवतपुराण, महाभारत में अर्जुन, शिखंडी और यूनानी देवता होरेस के सन्दर्भ को भी दिया है। विवाह संस्था के अस्तित्व को चुनौती देने वाले लिव-इन सम्बन्धों का व्योरा भी लेखिका ने प्रस्तुत किया है तथा एक शताब्दी पूर्व प्रेमचंद द्वारा लिव-इन संबंधो पर लिखी कहानी 'मिस पद्मा' और निर्मल वर्मा की 'दो घर' का ज़िक्र किया है। इन प्रवासी महिला कहानीकारों की बोल्डनेस के प्रशंसनीय प्रयास के संबंध में डॉ. संधु लिखती हैं-

''प्रवासी महिला कहानीकारों की लेखनी में अथाह हिम्मत, साहस और बल है। उनकी चेतना पूरी संवेदना से दैहिक, भौतिक या दैविक असंगतियों का चित्रण करती है। जिन विषयों को समाज और साहित्यकार अश्लील, अस्पृश्य, असंगत, बेकार मान मौन धारण कर लेता है, उन पर भी उन्होंने पूरी संवेदना और ईमानदारी से लिखा है।''

विवेच्य पुस्तक में लेखिका ने पाश्चात्य समाज में फैले नस्लभेद, रंगभेद और आतंकवाद का चित्रण भी किया है। यहाँ नारी उत्पीड़न के साथ-साथ उन कहानियों का भी ज़िक्र है, जिनमें पुरुष उत्पीड़न है। प्रवास और दारिद्रय विषय के अंतर्गत लेखिका ने प्रवासी जीवन की सच्चाई का पर्दाफाश करते हुए प्रवासी के जोखिम व विवशताओं से भरे जीवन को उजागर किया है, जो 'धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का' मुहावरे को चरितार्थ करता है। जीवन की चौथी ॠतु वार्धक्य के संबंध में भी कहानियों का सारगर्भित निचोड़ मधु जी ने यही निकाला है कि प्रवासी संतानों का रक्त सफ़ेद होता है। संवेदनाशून्य पुत्र-पुत्रियाँ बिना किसी अपराधबोध के माँ-बाप को मरने के लिए, अकेला छोड़ने के लिए प्रयत्नरत हैं।

मानवाधिकार के संदर्भ में लिखित कहानियों के संदर्भित विषय के अध्ययन के अंतर्गत लिखती हैं-

''मानवाधिकार व्यक्ति को सुरक्षा देते हैं, अस्तित्व को बनाए रखते हैं, अस्मिता को गरिमा देते हैं। भारतीय जहाँ- जहाँ गए, उसी धरती को अपनी कर्मभूमि बना लिया। यह कहानियाँ क्या खोया, क्या पाया के विवरण प्रस्तुत करती हैं। समाज और प्रशासन दोनों का सम्मिलित प्रयास ही प्रवासी समाज की अस्मिता के लिए अनिवार्य है।''

पासपोर्ट, वीज़ा, ग्रीन कार्ड, प्रवासी जीवन की मूलभूत अनिवार्यताएँ हैं। पराई धरती के नितांत अकेलेपन में पासपोर्ट ही उनका एकमात्र पहचानपत्र होता है और इन संसाधनों में पेश आने वाली दिक्कतें ही उनके लगातार बढ़ते तनावों का कारण बन जाती है। प्रवास के दौरान लोगों को लगभग एक जैसी अनुभूतियों से दो-चार होना पड़ता है। संवेदनशील महिला कहानीकारों ने प्रवासी समाज की ज्वलंत समस्याओं को कहानी में समेटा है तो एक जैसे विषयों का स्पर्श करते हुए अनेक कहानियाँ कलमबद्ध हुई हैं। डॉ. मधु संधु ने उन ज्वलंत सरोकारों को अलग-अलग शीर्षकों के माध्यम से वर्गीकृत किया है, जिससे पाठकों व शोधार्थियों के लिए वे सहज बोधगम्य बन गए हैं। लेखिका की प्रवाहमय समास शैली उनके इस अध्ययन के शैल्पिक पक्ष की साकारात्मकता को प्रकट करती एक शोधार्थी के लिए शोध की ठोस भूमि का निर्माण करते हुए कहानियों के स्रोत, शोध प्रक्रिया एवं संदर्भ ग्रंथ सूची की कसौटी पर खरा उतरती है।

जहाँ प्रवासी कहानीकारों की कथावस्तु पाश्चात्य समाज की विसंगतियों का आईना है, वहीं लेखिका का यह प्रयास भारतीय समाज की ओर भी ख़तरे के निशान के संकेत दे रहा है। क्योंकि हंस की चाल चलता हुआ कौवा अपनी भी भूल बैठा है अर्थात भारतीय पश्चिमी समाज का अंधानुकरण कर रहे हैं। लेखिका लिखती हैं-

''उन देशों का वातावरण और चिंतन स्तर भारत से थोड़ा अलग है। ऐसे में समलैंगिक और उभयलैंगिक लोगों तथा उनके आत्मीयों की पीड़ा, चीत्कार, विवशताएँ, संत्रास, घुटन, उद्वेलन को प्रवासी महिला कहानीकारों ने पूरे साहस, उत्तरदायित्व और आत्मीयता से स्वर दिया है।''

अतः अनेक आधारों पर बनाया गया यह दस्तावेज़ प्रवास की मृगतृष्णा के तिलिस्म को तोड़ता है। प्रवासी कहानीकारों द्वारा दर्शाए गए भयंकर दंश की पीड़ा का पर्दाफाश करता है कि विदेश की धरती पर सब हरा ही हरा नहीं है। दूर के ढोल ही सुहावने होते हैं। सब लोग वहाँ जाकर सुखी, प्रसन्न और समृद्ध नहीं हो सकते। अपनी आत्मा को दफन कर वहाँ का जीवन जीने वालों की वेदना को लेखिका ने ढूँढ निकाला है।

लिखती हैं- ''यहाँ वैश्विक स्तर पर व्यक्ति की दुखती रगों को पकड़ने के प्रयास हैं, तो समय की रफ्तार के साथ चलने-भागने के उपक्रम भी।''

❑❑❑

असोसिएट प्रोफ़ेसर, हिन्दी विभाग,
प्रेमचंद मारकंडा एस.डी. कॉलेज, जालंधर, पंजाब।
ई-मेल: mittalneena@ymail.com

# पुस्तक समीक्षा

# खोई हुई परछाँई

**समीक्षक : देवी नागरानी**

**लेखक : शौकत शौरो**

**अनुवादक : डॉ. संध्या चंदर कुंदनानी**

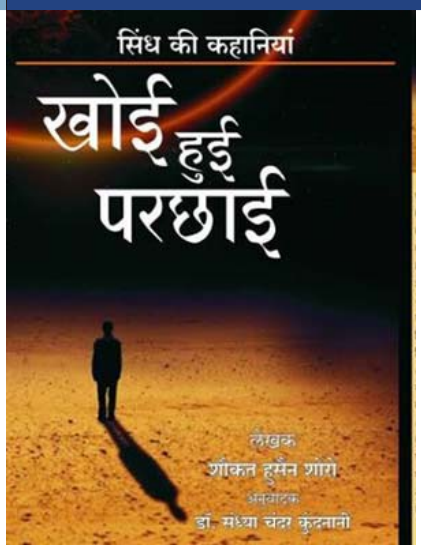

सिंध के अदीब शौकत शौरो की कहानियों के संग्रह खोई हुई परछाँई (रात का रंग-सिंधी में) दिन की रोशनी में देखें, सुनें और ज़ायका लें। संध्या कुन्दनानी ने इस संग्रह का अनुवाद हिंदी में 'खोई हुई परछाँई' के नाम से किया और उसे मंज़रे-ए-आम पर स्थापित किया है। इस संग्रह में 46 कहानियाँ हैं और मैंने उनमें से कुछ कहानियों के विशिष्ट किरदारों में औरत और मर्द किरदार की तन्हाई और धरती के दर्द को अभिव्यक्त करने की कोशिश की है।




संग्रह में लिखी भूमिका में हीरे शेवकानी ने शौकत शौरो की कई कहानियों का विश्लेषण करते हुए उन्हें Low key symphony की लहरों के साथ तुलना की है। शब्दों में भी शब्द संगीत होता है! पर उस संगीतात्मक लय को सुनने के लिए शोर में भी ख़ामोशी की आवाज़, उस आवाज़ की गूँज को सुनने की दरकार है। यह वह आवाज़ है जो हमें खुद से, उस ताक़त से जोड़ती है, जिसके हम अंश हैं। उस Low key symphony का आनंद लेने के लिए बहुत सारे और माध्यम भी हैं, जो हमारे लिए हमारे भीतर हैं, और वही हमारी रहबरी करने के लिए अधीर हैं।

क्या कभी किसी ने बाहर से अंदर का रास्ता पाया है? अपने अंदर उतर कर वह symphony सुनना इंसान के बस में है। शर्त फिर भी वही, सोच में ठहराव ! थिरता की अवस्था। इसी कड़ी में एक कड़ी जोड़ते हुए जगदीश लछानी ने शौकत हुसैन की कहानियाँ में एक प्रकार के अंत: चेतना प्रवाह (literature of stream of consciousness) के प्रभाव की बात की है। मैं भी इस बात से सहमत हूँ, कि बहुत सी कहानियों में पराएपन, तन्हाई और ज़हनी संघर्ष के दौर में बेदिली और बेबसी का इज़हार है। इंतहाई निराशाजनक मायूसी के माहौल से गुज़रते हुए एक थका-हारा इंसान जीवन से हार मानते हुए अपने सभी हथियार फेंक देता है, ऐसे जैसे जीवन में बहुत कुछ खोने के बाद कुछ भी न बचा हो।

मैंने इस विषय के लिए संग्रह से ख़ास कहानियों के किरदारों को समीक्षा में पाठकों के सामने लाने की कोशिश की है। 'काली रात-लहू की बूँदें', 'सुरंग', 'दर्द की लौ', 'गुम हुई परछाई' व 'भूखा सौन्दर्य'। 'काली रात लहू की बूँदें', कहानी पढ़ते मुझे लगा कि कहानी का किरदार अपनी ही सोच के जाल में कैदी होकर अपनी ज़हनी यातना भोगता है। डर, तनहाई, नफ़रत के बावजूद वह एक खौफ़नाक मुस्कान चेहरे पर लिए, अपनी प्रेमिका को दहशत भरे अंदाज़ में डराने का प्रयास करता है। और खुद को तसल्ली देते हुए सोचता है-'वह निश्चित ही समझती होगी कि मैं दिमाग का संतुलन गँवा बैठा हूँ।' यहाँ भी किरदार अपनी ही सोच की कैद में उलझा हुआ है।

भीड़ में इंसान कभी अपने आप को तन्हा समझे, कभी बेबस और कभी लाचार होकर खौफ़ का शिकार बने तो समझना चाहिए कि उसकी हालत ठीक नहीं। या तो वह अपने वश में नहीं, या बहुत ज़्यादा ज़ख्मी है- भले ही वह अपने मन में कितने भी ठहाके क्यों न लगा ले। जब वही ठहाका बाहर निकलता है, तो खोखले झुनझुने की तरह बजने लगता है। किरदारों के और कई जज़्बे इसी तरह लफ़्ज़ों से झाँकते हुए अपने आप को व्यक्त कर रहे हैं।

मायूसी इंसान को अपने भीतर समेट लेती है, और वह अपने आप में ही सिकुड़ जाता है- उसे न किसी का साथ भाता है, न मज़ाक, न मुस्कान। इन हालत में इज़ाफा तब ज़्यादा होता है जब वह बेरोज़गारी की चादर से अपने आप को ढक लेता है। उम्मीद और आसरे सभी बेमतलब के जान पड़ते हैं, बेबसी मुँह उठाकर चिढ़ाने लगती है। रिश्ते सब सौदे बन जाते हैं..... लगता है ज़िंदगी ज़िंदगी नहीं सौत बन गई है!

'सुरंग' कहानी मैं भी शौकत शोरो का पात्र बाहरी आन- बान का मालिक है, भले ही उसकी जेब खाली हो, पर ज़बरदस्ती मुस्कुराने पर उसका बस है। 'दर्द की लौ' कहानी में भी दोनों मर्द और औरत किरदार यकसी हालत में होने के कारण एक जैसा दर्द सहते है, पीड़ा के पुल पार करते हैं। फ़क़त इतना ही नहीं, पाठक भी उन किरदारों के साथ हमसफ़र होकर उनके हर अहसास में शरीक होता है, वही अहसास जीता है, वही पल भोगता है।

'बाकी धरती का दर्द'... दामिनी के दर्द में देखा जा सकता है। नारी की वेदना आज भी किताब के खुले पन्नों की तरह सामने है। आज के हालात हमारे आस-पास ही मँडराते हैं। यह दर्द नारी के हिस्से में आता है। अलग-अलग परिस्थितियों की शिकार औरत, कभी बच्चों के लिए खुद को क़ुर्बान करती है, तो कभी अपने बीमार पति की दवा के लिए दूसरे मर्द की रखैल बनकर रहती है।

'भूखा सौन्दर्य' नामक कहानी में चार बच्चों की माँ 'अनार गुल' अपने छोटे बच्चे को दूध पिलाकर अपने ख़रीददार के कमरे में

आकर पलंग पर लेट जाती है- एक बेजान बुत की तरह, फ़क़त सौ रुपयों की ख़ातिर।

भूख के कितने ही स्वरूप सामने आते हैं। इंसान तो हाड़-माँस का पुतला, स्वार्थ की दहलीज़ पर अपने सुख के ख़ातिर बेबसी के मजबूर क़िले में घुसकर, क्या कुछ नहीं लूटता है, सब जानते हैं।

इस तत्व पर कमलेश्वर जी की कलम खूब इन्साफ़ करती है ''ताज महल से ज़्यादा खूबसूरत परिवार नामक संस्था का निर्माण करने वाली औरत खुद उसी में घुट-घुट कर दफ़न होती है, सबके लिए सुख और शुभ तलाश करती औरत अपने ही आँसुओं के कुँओं में डूबकर आत्महत्या करती है।''

इंसान का जिस्म है, ज़हन है, फिर भी वह बेबस है। उसके अंदर की महरूमियाँ निरंतर बहते हुए पानी की तरह रवाँ होती हैं। भला पानी के प्रभाव को भी कभी तिनका रोक पाया है? ज़िंदगी को बेनकाब करना कितना कठिन है?

शब्दों में शायद अब उतनी ऊर्जा नहीं जो महसूस किए गए जज़्बे को ज़ाहिर कर सके। किसी की आँखों में ख़ुशी की किरणें झिलमिलाती हैं तो किसी की आँखों में ग़म की तासीर देखी जाती है। महसूस किए हुए जज़्बे फिर भी शब्दों में अधूरे ही रह जाते हैं।

एक संवेदनशील दिल, दूसरे दिल के दर्द को समझ पाती है महसूस कर सकती है। उन्वान की तहों में घुसकर किरदारों के साथ हमसफ़र होते हुए मैंने भी जो महसूस किया उसे शब्दों में अभिव्यक्त किया।

आख़िर न कहकर एक नया आगाज़ कहूँ तो बेहतर होगा। हर कहानी अपने भीतर एक नई कहानी का अंकुर लिए हुए होती है, जो एक नया पौधा बन जाता है। कहानी दर कहानी यह सिलसिला चलता रहता है। साहित्य जगत में अनूदित साहित्य में सिंधी भाषा की कहानियों के किरदार भी अपनी भाषा, एवं जज़्बों को ज़ाहिर करने में पीछे नहीं हटते, इस गंगा-जमनी धारा में अपना योगदान देने में पीछे नहीं हटते। आपसे, हमसे, और खुद से संवाद करते रहते हैं।

❐❐❐

संपर्क : 241 Mawbey Street,
Woodbridge, NJ 07095
ई-मेल : dnangrani@gmail.com

# पुस्तक चर्चा

## वक़्त की गवाही

**समीक्षक : डॉ. विनय कुमार पाठक**

**लेखक : बुधराम यादव**

**प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर**

बुधराम यादव छत्तीसगढ़ प्रदेश के चर्चित गीतकार हैं। इन्होंने मंचों के माध्यम से राष्ट्रीय स्तर को भी स्पर्श किया है। कवि सम्मेलन के मंच पर इन्होंने साहित्यिक गीत, नवगीत से पहचान बनाई है। 'वक़्त की गवाही' इनकी प्रतिनिधि कविताओं का संग्रह है। यदि कविता वक़्त की गवाही है, तो गीत ज़िंदगी की आवाजाही की दास्तान।

आज के जीवन में विद्रूपताओं और विसंगतियों का जो वितान विनिर्मित हुआ है, राजनीति का जो भ्रष्टाचरण उजागर हुआ है, आतंकवाद सहित नानाविध समस्याओं का जो ज़हर पसरा है, उसे एक सजग-सचेष्ट व्यक्ति की तरह सूत्र रूप में संस्थित कर देना यादव जी की ही क़लम का कमाल कहा जा सकता है। उनके कवि को विश्वास है कि निराशा का कुहरा छँटेगा और नया विहान आएगा ही- ख़ामोशी को ओढ़े पहने गूँगे-बहरेपन को / ज़ख़्म भरे गहरे भीतर कोसे निर्माण दुश्मन को / चिंता में भी जान से ज़्यादा डूबे स्वपरिजन की / लगा चुके ये बाज़ी मानों, सब अपने जीवन की / आस धरे कोई आएगा लेकर नया विहान / निपट अवांछित घोर त्रासदी झेल रहा इंसान।

उपर्युक्त उद्धरण की प्रथम पंक्ति में विकलांग-विमर्श का स्पंदन सहजाभिव्यक्ति के रूप में संस्थित है। कवि का मंतव्य है कि गूँगे-बहरे की तरह ख़ामोशी की चादर ओढ़े और अंतर्मन के दंश को महसूसते हुए निष्ठुर, निर्मम दुश्मन से सामना कष्टसाध्य है। यदि कवि मर्माहत है, तो उसके परिजन भी प्रपीड़ित हैं। यह सही है कि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता, लेकिन सृजनात्मकता के चलते एक मुट्ठी चना पैदा कर सकता है और विघटन के चलते भड़भूजे की आँख फोड़ सकता है।

जीवन की यात्रा में कवि का साथी उसका एकाकीपन है, यही उसकी पीड़ा है और पहचान भी। जीवन के प्रतिकार्थ, प्रयुक्त लोकोक्ति 'नीम पर चढ़ रहे हैं करेले' के माध्यम से कवि कहावत 'घोड़े बेचकर सोना' से समीकृत कर संवेदना को सिंचित करते हैं- हमने ढेरों मनोरथ सँजोए / व्यर्थ में अपने पौरुष खोए / चाहा जब बेच कर हमने घोड़े / नींद में गहरी जाने क्यों सोए / नीम पर चढ़ रहे हैं करेले / ज़िंदगी के सफ़र में अकेले।

प्रस्तुत संग्रह में कवि जीवन मूल्यों के विघटन पर चिंता ही व्यक्त नहीं करते, उसके संरक्षण-संवर्धन की पक्षधरता को भी प्रस्तुत करते हैं। जीवन-मूल्य 'स्व' से शुरू होकर घर, परिवार और समाज के रास्ते मानवता के मान को रखते हुए 'वसुधैव कुटुंबकम' तक की यात्रा करते हैं। इसमें सत्यता, विनम्रता, परोपकारिता के साथ संतुलन, स्वतंत्रता, समादार और संतुष्टि समुपस्थित है। इसी आधार पर चरित्रवान और संस्कारवान पीढ़ी तैयार होती है। इस चिंतन को केंद्रस्थ करके कवि की गीत-यात्रा विकसित होती है। इसमें विचार संवेदना में ढलकर और परंपरा प्रगतिशीलता में पलकर शोभा पाते हैं। यही कारण है कि अलंकार अनायास आयातित हैं और छंद भी लयात्मक हैं। भाषा विचारों और भावों के साँचे में ढलकर और मुहावरे, कहावतों से मिलकर महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हुई है। आधुनिक भाव-बोधों से आपूरित उल्लेखनीय रचनात्मकता तथा इस संग्रह के आगमन हेतु कवि को बधाई ।

❐❐❐

सी/62, अज्ञेय नगर, बिलासपुर, छत्तीसगढ़ 495001
मोबाइल - 9229879898

# पुस्तक समीक्षा

## स्त्री और समुद्र

**समीक्षक : प्रो. बी. एल. आच्छा**

**लेखक : राकेश शर्मा**

**प्रकाशक : नीरज बुक सेन्टर**

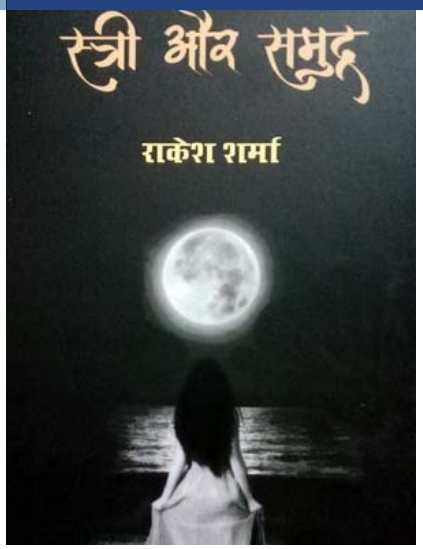


राकेश शर्मा का दूसरा काव्य संग्रह ''स्त्री और समुद्र'' विराट और गहरी संज्ञाओं की चैतन्य सृष्टि है। इन कविताओं में काल की छन्दोधारा बहती है। मिथकीय प्रयोग समकाल तक आकर नई अर्थवत्ता देते हैं या कि समय से सवाल करते हैं। सृजनात्मक भावांकन जितना दर्शन की कक्षा को छूता है, उतना ही भाषा को प्रश्नवाची बनाता है। अहंकार से पर्वतीय ज्वालामुखी अपनी उपत्यकाओं में लौट आने को विवश है। सांस्कारिकता और प्राकृत सृष्टि का अपभ्रंश रूप सृजन को कुरेदता हुआ महाकाव्यों की संध्या भाषा के लिए मचल उठता है। शहरीकरण में विलुप्त होती ग्राम्य प्रकृति सवाल खड़े करती है कि पूँजी का विकृत सोच और आधुनिकता की ललक क्या गाँवों को सिरज पाएगी? पौराणिक संदर्भों से लिपटी इन कविताओं में नए सृजन की कसमसाहट है और सांस्कृतिक स्पन्दन में भी विरोध का कालजई नज़रिया है। यों, कवि तुलसीदास की चौपाइयों के सांगीतिक तुकान्त का चितेरा है, पर मुक्त छन्द की इन कविताओं में शब्द अपनी आंतरिकता के साथ अर्थ-लय को तलाशते हैं।

इसी आत्मिक और वैचारिक स्पर्शशीलता से इन कविताओं का अंदरूनी संसार आकार लेता है। भले इन कविताओं में वैसा स्फोट और आहत से उपजा विमर्श न हो, पर ये जीवन और प्रकृति के अपभ्रंश की पीड़ा को सँजोती हैं। इसीलिए ये कविताएँ प्रकृति की चैतन्य सत्ता के विलास और विकास की तथाकथित अवधारणाओं में ध्वंस होती प्रकृति के रूप से आहत है।

समय से इस साक्षात्कार में वह दक्षिण-वाम, पुरातन-अधुनातन सांस्कारिकता-आधुनिकता के घेरों में उलझता नहीं है और इस अँधेरे में वह आस्था और अस्मिता के साथ कालधारा को ताड़ता है, कालधारा, जो महाभारत भी रचाती रहती है, युग-युगांतर को नए-नए परिदृश्यों में। काल के गर्भ में पड़े इस मौन को वह प्रश्नांकित करता है। इन मिथकीय इतिहास कथाओं के माध्यम से। इसीलिए वह 'जीवन के खुरदरे धरातल और संकीर्णता की ज़मीन' पर उस चिन्मई दृष्टि का चितेरा है जो 'मैं' और 'हम' को विराट बनाती है और प्रकृति के कण-कण तथा कविता के अक्षर-अक्षर में सार्थक हो पाती है।

यह भावसाध्य चिन्मई दृष्टि प्रकृति और कविता के रेशे-रेशे में मौजूद है, वही संध्या भाषा या समाधि भाषा है। पर व्यावहारिक धरातल बहुत पेचीदा हैं, बहुत संघर्षपरक। राग-द्वेषों की अन्तर्कथाओं के महाभारत। पर कवि अपने काम्य के लिए धारा के विपरीत चलने के आत्म-उत्सर्ग की राह को पहचानता है -

''धारा के विपरीत बहना/निर्जन पथ से गुज़रना भी है/यह गुज़रना/केवल गुज़र जाना नहीं/बल्कि बनाना है/एक राजमार्ग/जिस पर चलें/जीवन के थके हारे लोग/और पहुँचे गंतव्य तक।'' इसे युटोपिया कहें या सर्वकल्याणी भाव परकता का कल्पनाशील सपना परन्तु कवि इस संकलन में इसी दर्शन का चितेरा है। वह इसके साथ प्रतिरोधक भाव और विरोध को भी संघनित करता है -

''विरोध एक शाश्वत भाव है जो जन्मता रहा है आदि से/इसके लिए ज़रूरी नहीं कि आप/बने रहें संत/और बचे रहें विरोध में।''

वह उस कालांतर सत्य को भी चीन्हता है, जो मृत्यु के बाद भी विरोध का जनन करता रहता है, बावजूद महान कृत्यों की गाथा के। इसीलिए अस्ति, अस्मिता, चिन्मई भाव की अन्तरचेतना के साथ बाहरी दुनिया में इन प्रतिलोभी ताकतों से टकराते रहने की चरैवेति क्रियात्मकता को भी अपरिहार्य मानता है।

इस संग्रह की शीर्षक कविता के साथ 'स्त्री-विमर्श' के विभिन्न अक्षों को छूने वाली कविताओं का वैचारिक संस्पर्श और भयावह मानसिकता से गुज़रती नारी की विवशताओं के दंश भी मार्मिक है। 'स्त्री और समुद्र' में अक्ष शोषक-शोषित के मानवीकरण में व्यक्त हुआ है। निश्चय ही छायावादी मानवीकरण से यह भिन्न धरातल का है -

''समुद्र/तुम्हें इस तरह/इठलाता देख/सोचता हूँ/हर शोषक इठलाता है/तुम्हारी ही तरह/नदी के अस्तित्व का/शोषण कर/तुम करते हो गर्जना/तुमसे मिलने वाली हर नदी/स्त्रीत्व भाव से आती है तुम्हारी आगोश में/अपना सर्वस्व/अर्पित कर तुम्हें/फिर नहीं लौटी है दुबारा।'' यह भी कि पुरुष शैली के इस समुद्र-प्रतीक के साथ यह विवश स्त्री-राग भी है।

''तुम्हारी ये उत्तुंग तरंगें/आगोश में समाई नदियों की/असफल और अनवरत छटपटाहटें हैं/तुम्हारी भीषण गर्जना के पीछे छिपा है/नदी का अनसुना चीत्कार/ठीक उसी तरह जैसे/सती होने के लिए मजबूर/स्त्री की दाहक पीड़ा को छिपाने के लिए/किया जाता था/भीषण शंखनाद और/वाद्य-यंत्रों का शोर।''

ये नीली व्यथाएँ केवल इतिहास के घावों की ओर नहीं लौटाती, बल्कि बदलते आधुनिक परिदृश्यों में नारी की व्यथा के रूपांतर का भी बयान करती हैं। 'सती युग से चीयर गर्ल्स' के रूपांतर में वह पूँजी की उन आकृतियों को सामने लाता है, जो स्त्री देह को ही विभिन्न रूपों में मथती रही है। बादशाही युग में ''रखैल, तवायफ, पतुरियाँ, नचनियाँ बनकर/मजबूरन नाचती रही और पसरती रही है/स्त्री की देह।'' और वर्तमान के बाज़ार युग में – ''इसकी खाल में आधुनिकता/का भूसा भर/गढ़ा है चीयर्स गर्ल्स सा/एक प्रपंचीय शब्द/स्त्री की देह को/कोठों, दरबारों, बाज़ारों से निकाल/ले आए हैं क्रिकेट के बीच।'' दर्शन और सांस्कृतिक चैतन्य में रमी इन कविताओं के भीतर वह लावा भी है जो सांस्कृतिक इतिहास को चीरकर यथार्थ को अपने समय में उत्तप्त करता है–

''समानता के ये सारे नारे/लाक्षागृह का षड्यंत्र/और धर्मराजों के खेल का/नया अवतार है।'' और सारी आचार संहिताओं के बावजूद 'स्त्री देह' और उसकी भयाक्रांतता के कातर परिदृश्य कलयुग बने हुए हैं, आशंकाओं का वर्तमान ही उसके मन और तन का भयाकुल संसार है।

नारी का मातृरूप भी है, प्रेम का अनुभूतिपरक स्पर्श भी है, मातृ–देवी आस्था का सांस्कारिक दर्शन भी है; पर देह का आदिम राग भी है, जो पशुता और भयावहता को छूता है। पुरुष सत्ता वाले समाज की काव्य सृष्टि से भी कवि सवाल करता है –

''सीता के ठुमकने से बजी पैंजनियाँ/आपको सुनाई क्यों नहीं पड़ीं/किलकत कान्ह घुटुरुवन आवत/मणिमय जड़ित नंद के आँगन/बिम्ब पकड़वे धावत/इसमें भी ठीक है/कृष्ण का बचपन/पर सूरदास तुम ही बतलाओ/क्या नहीं था राधा का बचपन ऐसा/जिसका वर्णन करते आप।'' संस्कृति और दर्शन की भारतीय काव्यधारा से गहरे अनुराग के बावजूद कवि भारतीय समाज के 'पुरुषत्ववादी पेंचों' को खंगालता है, स्त्री को अपना 'स्वत्व' दिलाने के लिए। प्रगतिशील आधुनिकता में भी यह 'जेण्डर बोध' अभिशप्त है, निर्भया व्यथाओं में। 'कविता में माँ' कविता मातृत्व के उदात्त क्षितिज की हमारी संस्कृति बनकर आती है, पर यह विलोभी यथार्थ स्त्री को कितना कचमचाता है। ये सारी कविताएँ जितनी सांस्कृतिक पक्षधरता लिए हुए हैं, उतनी ही सवाली मुद्राओं से पुरज़ोर भी।

इस संग्रह की कुछ कविताओं में प्रकृति के वासंती–राग किलकते हैं, कहीं प्रकृति के विश्रांत भाव में प्रार्थना का मौन स्वर, कहीं नरेश मेहता की कविताओं की अरण्यानी का वानस्पतिक संस्पर्श, तो कहीं संगम तट पर आत्माओं के प्रतिबिम्ब बने दूरदेशी साइबेरियाई पक्षियों का दार्शनिक रूपक, कहीं विचारों की तरह उड़ान भरते परिन्दे, तो कहीं अतीत की आँख से स्मृतियों का संसार। पर समकालीन जीवन के यथार्थ और मानवीय पक्ष का आकुल संवेदन कई कविताओं में काव्य संवेदना का भीतरी राग बन गया है। वाम और बुर्जुआ की भाषा से हटकर कवि 'उपत्यका' में तलहटी की ओर लौटने की बाध्यता को दर्शाता है –

'मनुजता और धरती को ऊँचाइयों से/तुम जब देखते हो हमें/हमारी लघुता ही दिखाई पड़ती है तुम्हें/लघुता पर/बजाय करने के दया/पता नहीं क्यों/तुम ज्वालामुखी बन जाते हो/पर्वत बन जाने पर/चाहिए यह बोध/ऊँचाइयों पर संभव नहीं है दीर्घ जीवन/इसके लिए/आना ही होगा/उपत्यका में/हमारे पास।''

पूँजी का अहंकार और उपत्यका का सहज संसार, एक में लावा है और दूजे में लघुता के बावजूद हृदय का स्पन्दन। इसी तरह 'स्मृति शेष गाँव' में उसका पर्यावरण–बोध भविष्य की चिंताओं के बीच सवाल करता है विकास की अंधी दौड़ से– ''मारकर मुझको/जो रच लिया है/शहर तुमने/क्या शहर को/मारकर भी रच सकोगे/गाँव कोई।''

'सपनों की मण्डी' कविता में 'आत्मा के अंतरंग से दूर चुनावी सपनों के मकड़जाल को बेधता है सपनों के व्यापार पर व्यंग्य करते हुए। 'कुआँ' कविता तो प्रेमचन्द के 'ठाकुर का कुआँ' की याद दिलाते हुए 'जाति के नाम पर हुआ होगा/एक सारहीन संघर्ष' की शताब्दियों को परस देती है। 'कबीर' कविता में ध्यान की परम शांत अवस्था में 'जीवन की विकटताएँ' शोर मचाती आती हैं। कुछ कविताओं में व्यंग्य भी बहुत पैठे हुए हैं। 'संभ्रात लोग' कविता में वह संभ्रांतों के ऊपरी आवरण को निर्भ्रान्त होकर असल में रूपांतरित कर देता है – ''दया द्रवित से दिखने का प्रदर्शन/अवसर अनुकूल/अभिनव कला में/महारथी होते हैं संभ्रांत लोग/सिखाते हैं रोज़–रोज़/निष्कपट दुनिया को/जीने की कला।'' इन विकट पथों और यथार्थ सामाजिकताओं से गुज़रने के बाद भी कवि की जिजीविषा और बोध उसे इस धरातल पर लाकर खड़ा करते हैं – ''यातनाएँ बनाती हैं बुद्ध/जिस क्षण टकराता है आदमी/जीवन की नग्नता से।'' और 'थर्ड जेण्डर' में तो वह 'थर्ड' पर व्यंग्य नहीं करता, बल्कि नपुंसकता से आशीष पाकर आह्लादित होने की पराजई मनोवृत्ति पर व्यंग्य करता है।

इन कविताओं में सांस्कृतिक–पौराणिक मिथक नई व्याख्याओं और वैचारिक स्पन्दनों की आधुनिकता में उजले हुए हैं। इसीलिए हर स्पन्दन वैचारिक प्रश्न भाषा से टकराकर ही कविता की मनोभूमि बनता है। कई सादृश्य नएपन के साथ उभरे हैं, 'स्त्री और समुद्र' में सर्वथा नए सांगरूपक में, 'अनदिखे ज़लज़ले' में – 'बेरहम संबंधों के बबूल वन में', 'स्वप्न के खंडहर' कविता में – 'समय की मकड़ी ने बुन दिए हैं जाले।' कुछ–कुछ कविताओं में कहीं समानान्तरता (Parellelsim) लय के साथ अर्थ की दिशाएँ रचती हैं, विशेषत: 'सपनों की मंडी' कविता में भाषा भी सांस्कृतिक बोध को जितना आत्मसात करती है, उतनी ही यथार्थ बोध से आमफ़हम बन जाती है। सांस्कृतिक सोच वर्तमान पर आकर जब समुद्री लहरों की तरह चट्टानों से टकराता है तो कवि की मनोभाषा भी उछालें मारती है, सुनामी लहरों से टकराती है और प्रश्नवाची होकर समय को ललकारती हैं। 'स्त्री और समुद्र'' दोनों ही रत्नगर्भा हैं, गंभीर सांस्कृतिक धारा के प्रतीक। नई शब्द–सीपियों में मोतियों को किनारे पर फेंकते हुए। कवि इन्हीं में बोध की नई चमक और सीपियों के शिल्प को तलाशता है कविता के रचाव के लिए।

❑❑❑

36, क्लीमेन्स रोड, सरवना स्टोर्स के पीछे
पुरुषवाकम, चेन्नई (तमिलनाडु) 600007
ई–मेल : balulalachha@yahoo.com
मोबाइल : 9425083335

# पुस्तक समीक्षा

## 51 किताबें ग़ज़लों की ...( भाग-2 )

**समीक्षक : पारुल सिंह**

**लेखक : नीरज गोस्वामी**

**प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर**

ग़ज़ल एक इतना नाजुक सा शब्द है और इतनी मक़बूल विधा है कि जब भी हमें इससे जुड़ी हुई कोई किताब और कोई चीज़ देखते हैं, तो हम उसे एक बार उठाकर देखते ज़रूर हैं। उस तरफ हमारी नज़र जाती ज़रूर है जहाँ कोई ग़ज़ल पढ़ी जा रही हो या ग़ज़ल कही जा रही हो या ग़ज़लों से जुड़ी हुई कोई किताब हो।

जिस किताब की मैं आज चर्चा कर रही हूँ उसका नाम है 51 किताबें ग़ज़लों की भाग 2। ये एक सीरीज़ है जो शिवना प्रकाशन से आई है, जिसमें पहले 101 किताबें ग़ज़लों की किताब आई थी; जिसके कई संस्करण आ चुके हैं, उसके बाद 51 किताबें ग़ज़लों की किताब आई। और अब 51 किताबें ग़ज़लों की भाग-2 आई है। जो मेरे हाथ में है।

लेखक और समीक्षक हैं नीरज गोस्वामी। ग़ज़लें कहने-सुनने और ग़ज़लों को पसंद करने वाले सभी नीरज जी के नाम से वाक़िफ़ हैं। पिछले 8-10 साल से अपने ब्लॉग पर भी ग़ज़लों की किताबों के बारे में नीरज जी लिखते रहे हैं और उसके बाद जब से उनकी किताबों की श्रृंखला ''101किताबें ग़ज़लों की'' आई है, तब से शायरी के क़द्रदानों और शायरों में नीरज जी का नाम अदब से लिया जाता है। हिंदुस्तान ही नहीं पाकिस्तान के शायरों की किताबों पर भी उन्होंने लिखा है और इसीलिए वे वहाँ भी जाने जाने लगे हैं। उनकी इस किताब में पाकिस्तान में उनकी मकबूलियत का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि वहाँ की एक बहुत बड़ी शायरा ज़ोहरा निगाह ने अपने बारे में लिखने का ज़िम्मा ख़ुद ले लिया; और जो भी उन्होंने इस किताब में लिखा है, वह नीरज को टाइप कर के भेज दिया; जिसे हिंदी में टाइप नीरज ने किया। ज़ोहरा जी को हिंदी लिपि पढ़नी और लिखनी नहीं आती। वह कहती हैं कि मुझे नीरज जी पर पूरा भरोसा है कि जो मैंने लिखा है, उन्होंने वह वैसा ही टाइप किया होगा; क्योंकि अगर मैं उन्हें लिखने देती तो वह मेरी बहुत ज़्यादा तारीफें करते। और मुझे डर है कि वह कहीं अतिशयोक्ति ना हो जाती।

सलाम है, नमन है, ऐसे शायरों को। सलाम है ऐसे समीक्षकों को जो अपनी तरफ से लिखने का अधिकार लेखक को दे रहे हैं। वरना तो आप समझ सकते हैं कि किसी लेखक के लिए अपनी लेखनी किसी और को देना ऐसा ही है, जैसे कोई राजा अपने सारे अधिकार किसी को दे दे। यह विश्वास की बातें हैं।

मगर यह किताब अपनी सीरीज़ की पहली आई हुई किताबों से बहुत अलग है; क्योंकि इसमें सिर्फ ग़ज़लों की किताबों का, शायरी का और शायर का ही ज़िक्र नहीं किया गया है बल्कि इसमें शायरों की निजी ज़िंदगी से जुड़े हुए क़िस्सों का, उनके संस्मरणों का उनकी निजी ज़िंदगी का, और उनकी शायरी किस तरीक़े से बनी, कैसे वह शायरी में आए और किस-किस दौर से शायरी करते हुए गुज़रे हैं, इन सब की विस्तृत रूप से जानकारी हमें मिलती है इस किताब में।

18वीं 19वीं शताब्दी से लेकर 20वी 21वीं शताब्दी तक के शायरों की किताबों का ज़िक्र है, तो इन सारी सदियों में किस तरीक़े से ग़ज़लों की महफ़िल जमती थी, क्या उनमें बातें होती थीं और क्या अपने प्रतिद्वंद्वी शायरों की तरफ लोगों का नज़रिया होता था। एक प्रतिद्वंद्विता होते हुए भी वह लोग जब मिलते थे, आपस में तो किस प्यार और किस गर्मी से मिलते थे। किस इज़्ज़त से एक दूसरे के सामने पेश आते थे, इस सब का भी हाल हमें पढ़ने को मिलता है, जो कि एक बहुत ही अलग तरीक़े का प्रयोग है, जो इससे पहले कि इसी श्रृंखला की किताबों से अलग हटकर है।

शायर के देशकाल के बारे में, क्या हालात देश के थे उस समय, क्या और कैसे उनकी बातें होती थी। एक दूसरे के बारे में क्या ख़्याल थे, ये सब इसमें विस्तृत रूप से पढ़ने को मिलता है। तो यह सिर्फ शायर की किताब का ज़िक्र नहीं यह हिस्सा भी है शायरों की ज़िंदगी से जुड़ी हुए क़िस्सों का।

कहीं-कहीं लेखक ने अपनी कल्पना का प्रयोग भी किया है यह बताने में, यह दिखाने के लिए कि उस दौर में किस तरीक़े से शायरी को लिया जाता था और किस तरीक़े से महफ़िल जमती थी। किस तरीक़े से शायर एक दूसरे से मिलने जाते थे, किस तरीक़े से वह लोग बैठकर आपस में बातें करते थे। एक दूसरे के शेरों को पसंद करते थे उनकी तारीफें करते थे, हालाँकि उनमें प्रतिद्वंद्विता भी थी। लेकिन एक दूसरे को जो आदर वह देते थे और किस तरीके से वहाँ पर क्या-क्या खाना परोसा जाता था, किस तरह के कपड़े उन लोगों ने पहने होते थे, यह सब बहुत अच्छे से बताया गया है; जिससे कि यह किताब बहुत दिलकश हो गई है।

शायर और समय को इस तरीक़े से जान कर पढ़ना बहुत दिलचस्प हो जाता है। और पढ़ने में बहुत ज़्यादा मज़ा आता है।

हमेशा होता यह है कि जब भी हम शायरों की बात करते हैं कहीं भी ग़ज़लों की महफ़िल होती है, तो धीरे-धीरे बात ग़ज़लों से होते हुए शायरों पर और फिर उस वक़्त पर उस समय पर चली जाती है। और उनके जो मशहूर क़िस्से हैं ग़ज़ल को पसंद करने वाले लोग वह भी आपस में सुनाने लगते हैं।

इस किताब से पूरे ग़ज़ल के इतिहास के बड़े-बड़े शायरों की ज़िंदगी पढ़ने को मिलती है। ग़ज़ल के चाहने वालों के लिए निकाली गई यह सीरीज़ इसी किताब के साथ ख़त्म होती है। और इतनी ख़ूबसूरत किताब के साथ ही सीरीज़ समाप्त ही हो जानी चाहिए। यह किताब पुरानी सारी किताबों को पढ़ने वालों और नए पढ़ने वालों दोनों को पढ़नी चाहिए। किताब में हमें देखने को मिलता है कि वास्तव में शायरी एक दोधारी तलवार है। शायरी करने के लिए सौ-सौ बार किसी खुशी या ग़म को जीना होता है तब जाकर एक शेर होता है।

इस किताब में से अगर शायरों की किताबों के नाम निकाल दिए जाएँ तो हमारे सामने पूरी एक तस्वीर उभर जाएगी शायरी के इतिहास की। 18वीं सदी से लेकर और अब तक के शायरों की ज़िंदगी किस तरीक़े से गुज़र-बसर हो रही थी और किस तरीक़े से उनकी महफ़िल जमती थी।

इस किताब में जिसमें शारिक कैफ़ी, क़तील शिफ़ाई, मोमिन, ज़ौक, अहमद फ़राज़, जिगर मुरादाबादी, फ़िराक़ गोरखपुरी मजाज़, इरफान सत्तार, अमर देहलवी अंजुम रहबर, पंकज सुबीर, फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ जैसे शायरों की किताबों का ज़िक्र हो तो किस दर्जे के शेर इस किताब में कोट किए गए होंगे उसका सहज ही अंदाज़ा आप लगा सकते हैं।

यह किताब ग़ज़ल के चाहने वालों के लिए एक बहुत ज़रूरी किताब है, सारे पसंदीदा शायरों को एक ही किताब में पढ़ने और उनके बारे में जानने को अवसर है यह किताब।

❐❐❐

डब्ल्यू-903, आम्रपाली ज़ोडिएक, सेक्टर 120, नोएडा, उप्र 201301
मोबाइल : 9871761845,
ईमेल : psingh0888@gmail.com

# पुस्तक चर्चा

## इस समय तक

**समीक्षक : दीपक गिरकर**
**लेखक : धर्मपाल महेन्द्र जैन**
**प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर**

कैनेडा के चर्चित वरिष्ठ कवि-साहित्यकार धर्मपाल महेन्द्र जैन का प्रथम कविता संग्रह ''इस समय तक'' पढ़ने में आया। लेखक की रचनाओं की विशेषता है कि बरसों से वे विदेश में रहकर भी अपनी हर साँस में भारत को जीते हैं। धर्मजी की कविताओं का फ़लक व्यापक है। इस कविता संग्रह में एक ओर प्रकृति सौंदर्य और मानवीय संबंधों की मधुरता है, तो दूसरी ओर वे प्रजातंत्र की दुर्दशा और मनुष्यता के क्षय और विध्वंस के प्रति चिंतित दिखते हैं। इस संग्रह की कविताओं में कवि की और साथ में हमारी भी अनुभूतियों की प्रतिध्वनियाँ गूँजती हैं। यह एक ऐसा कविता संग्रह है जो कई मुद्दों और विषयों पर प्रकाश डालता हैं। धर्मपाल महेन्द्र जैन ने अपने कविता संग्रह ''इस समय तक'' में अपने जीवन के कई अनुभवों को समेटने की कोशिश की है। इस संग्रह में परिवार, रिश्ते, प्रकृति, प्रेम, गाँव और ग्रामीण जीवन की स्थितियों को अभिव्यक्त करती कविताएँ हैं। यह समकालीन कविताओं का एक सशक्त दस्तावेज़ है। इस संग्रह की हर रचना पाठकों और साहित्यकारों को प्रभावित करती है। इस संकलन में 78 छोटी-बड़ी कविताएँ संकलित हैं।

इस कविता संग्रह की पहली कविता ''सुबह'' ही इतनी प्रभावशाली है कि पाठक अपनी उत्सुकता रोक नहीं पाता है। ''सुबह'', ''प्रार्थना'', ''माँ मैंने देखा'', ''इस बार'' इत्यादि भावपूर्ण कविताएँ माँ की अहमियत पर प्रकाश डालती हैं। ''बेटी के जन्म पर'', ''दो साल की वह'', ''वह चाहती है'', ''बड़ी होती बेटी'' इत्यादि कविताएँ बेटी के प्रति एक पिता के लगाव को महसूस कराती हैं। प्रेम एवं रिश्तों में जीवंतता को अभिव्यक्त करती ये कविताएँ पाठकों को प्रेम, रिश्ते और मानवीय संवेदनाओं से अभिभूत कर देती हैं। ''साहबान!'' एवं ''परेशान है चिड़िया'' को उनके इस काव्य संग्रह की सबसे सशक्त कविताएँ कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। ''भोपाल: गैस त्रासदी'' कविता में व्यवस्था पर गहरा कटाक्ष है। संग्रह की कुछ कविताओं ''उस समय से'' एवं ''संविधान'' में व्यंग्य भी है क्योंकि कवि एक व्यंग्यकार भी हैं। ''अ - अधिकार का'' और ''रोना यातना नहीं हैं'' इस संग्रह की ऐसी विशिष्ट रचनाएँ हैं जो पाठकों को मानवीय संवेदनाओं के विविध रंगों से रू-ब-रू करवाती हैं। कविताओं में कवि के मन के भीतर चल रही उठा-पटक महसूस की जा सकती है। लेखक की रचनाओं में शोषित, असहाय व्यक्तियों के प्रति उनकी पक्षधरता उन्हें एक प्रगतिशील और जनवादी कवि की पहचान दिलाती है। धर्मपाल जैन की लेखनी का कमाल है कि उनकी रचनाओं में सहजता, आत्मिक संवेदनशीलता, जीवन का स्पंदन, भावों की तीव्रता प्रतिबिंबित होती हैं। इस संग्रह की कविताएँ हमें ठहरकर सोचने को मजबूर करती है। कवि की रचनाओं में आदि से अंत तक आत्मिक संवेदनशीलता व्याप्त है। कवि की रचनाओं में जीवन के तमाम रंग छलकते नज़र आते हैं। 160 पृष्ठ की यह किताब आपको कई विषयों पर सोचने के लिए मजबूर कर देती है। यह सिर्फ़ पठनीय ही नहीं है, संग्रहणीय भी है। यह काव्य संग्रह हिन्दी कविता के परिदृश्य में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करवाने में सफल हुआ है।

❐❐❐

28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड, इंदौर- 452016
मोबाइल : 9425067036 ई-मेल: deepakgirkar2016@gmail.com

# पुस्तक समीक्षा

# जब आदिवासी गाता है

**समीक्षक : राजेन्द्र नागदेव**
**लेखक : जमुना बीनी तादर**
**प्रकाशक : परिंदे प्रकाशन**

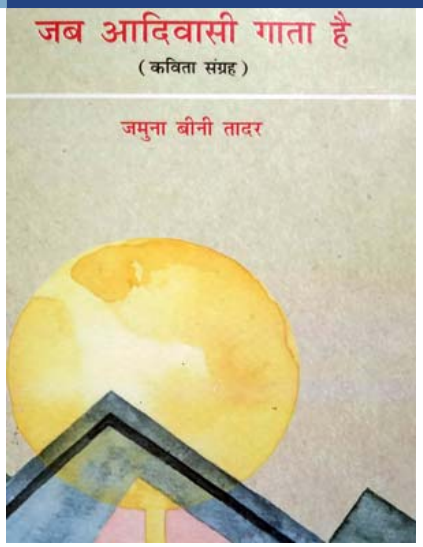


आज जब आदिवासी गाता है वह सामान्य अर्थ में गाता नहीं वस्तुत: रोता है। मेरे सामने जमुना बीनी तादर की यह पुस्तक है और मैं इसमे से उठता एक अरुणाचली आदिवासी का रुदन सुन कर स्तब्ध हूँ। यह रुदन मात्र अरुणाचली नहीं है समस्त आदिवासी जगत् का रुदन है। मुख्य धारा का आदिवासी जगत् पर अतिक्रमण और परिणामत: उसकी संस्कृति का तहस-नहस हो जाना आज का एक दारुण सत्य है।

भूमिका में कवयित्री लिखती है ''प्रकृति के लगभग सारे उपादान- ऊँचे पहाड़, नुकीले चट्टान, चौड़े पेड़, धूसर आसमान, जमता बर्फ, बारिश की बूँदें, बाँस का झुरमुट, गाती चिड़िया, रंगीन तितलियाँ, लहलहाते खेत, गर्वीली नदी, स्याह बादल, बीहड़ जंगल, मौन ठहरती झील, कराहता चाँद, फेनिल झाग, उभरते तारे आदि। पर दृष्टि केवल यहीं सिमट कर नहीं ठहरती है। हाँ इस दृष्टि को और भी बहुत कुछ दिखता है।''

इस काव्य संग्रह में कवयित्री अरुणाचल की नैसर्गिक सुषमा से आगे जाकर वहाँ के मानव जीवन का यथार्थपरक चित्रण करती है। आदिवासी मन को गहराई तक खँगालती है। उनके रीतिरिवाजों, परंपराओं, संस्कृति के विषय में गहन संवेदनशीलता के साथ बात करती है।

आज पूरे देश में बड़े-बड़े उद्योगों के लिए आदिवासी क्षेत्रों को अधिग्रहित किया जा रहा है। परिणामत: आदिवासियों को विस्थापन की समस्या का सामना करना पड़ रहा है तथा उनकी हज़ारों वर्षों से चली आ रही संस्कृति बुरी तरह प्रभावित हो रही है। मुख्यधारा के आदिवासी क्षेत्रों में दिनों-दिन बढ़ते जा रहे दख़ल के कारण वहाँ का सब कुछ ध्वस्त हो रहा है। आदिवासियों के नृत्य और अन्य रीतिरिवाज अब महानगरों के सांस्कृतिक संकुलों में मंच पर प्रदर्शन की वस्तु मात्र होकर रह गए हैं। किसी भी संवेदनशील आदिवासी मन को ये स्थितियाँ स्वाभाविक रूप से कचोटती हैं। निर्मला पुतुल हो या जमुना बीनी तादर अथवा कोई अन्य आदिवासी रचनाकार हो, जब वह आदिवासी के सुर में गाता है, तो उसके गायन में आज के आदिवासी जीवन की पीड़ा के करुण स्वर होते हैं।

इन कविताओं में तेज़ी से खोता जा रहा आदिवासी संसार है। उसकी सांस्कृतिकता, उसके भोले विश्वास, उसकी हज़ारों वर्ष पुरानी परंपराओं के लुप्त होते जाने की पीड़ा है।

आदिवासी दो पाटों के बीच पिस रहा है और उसके समक्ष बहुत बड़ा प्रश्न है कि वह क्या करे? दो शक्तियाँ आदिवासी क्षेत्रों में सक्रिय हैं राजसत्ता और विद्रोही आदिवासियों के संगठन। आदिवासी किसी एक का साथ देता है तो दूसरी का कोपभाजन बनता है। इस स्थिति का अत्यंत मार्मिक मानवीय संवेदनाओं से ओतप्रोत चित्रण ''लौटने के इंतज़ार में'' कविता में हुआ है। बेटा जब घर लौटना चाहता है तो उसकी बूढ़ी माँ कहती है-

'' नहीं नहीं/ उससे पूछो/ जंगल आदमी (उग्रवादी)/ या/ भारतीय आर्मी/ दोनों में से किसकी गोली का/ स्वाद पसंद है?'' (पृ 26)।

एक ओर कुआँ दूसरी ओर खाई, सीधा-सादा सामान्य आदिवासी जाए तो कहाँ जाए? इन पंक्तियों में कितनी गहन वेदना है -

''इधर मुक्ति कहाँ / जंगल आदमी का शिकंजा/ और/ भारतीय आर्मी का चंगुल/ इनके बीच / पिसने को अभिशप्त हमारा युवा'' (पृ 27)।

आदिवासियों का यह दर्द कोई समझना नहीं चाहता। याद आता है कुछ वर्ष पूर्व मणिपुरी आदिवासियों द्वारा किया गया भारतीय आर्मी का विरोध, जिसमे महिलाओं ने निर्वस्त्र होकर प्रदर्शन किया था।

'युवा अरुणाचली' शीर्षक कविता में मुख्यधारा से जुड़ते जा रहे और अपनी जड़ों से कटते जा रहे युवाओं में आए परिवर्तनों पर कवयित्री की गहरी व्यथा व्यक्त होती है।

कवयित्री ने शक्तिशाली नागरी संस्कृति के साथ आई विध्वंस की बाढ़ को समग्रता में इस संग्रह में समेटा है। उन बिंदुओं को भी छुआ है जिनकी ओर सामान्यत: ध्यान नहीं जाता। आदिवासी की भोली मानसिकता में आ रहे परिवर्तन को वह अपनी कविता में व्यक्त करती है। आदिवासी में पैदा हो रहे लोभ को नि:संकोच स्वीकार और व्यक्त करती है। किसान ने एक बार मुआवज़े का स्वाद चखा, तो फिर किसान कभी भी कंपनी के दफ़्तर पहुँच गुंडागर्दी पर उतर जाते। आदिवासी किसान के बदलते हुए इस अपरिचित रूप से कवयित्री हमें परिचित कराती है-

''ये किसान/गाहे बगाहे/ कंपनी के दफ्तर पहुँच जाते/ पैसों की/

माँग करते/ और/ माँगें जब/ पूरी न होतीं/ तो दफ्तर में/ तोड़-फोड़ करते/ कंपनी वालों के साथ/ हाथापाई पर/ उतर आते''। (पृ 20)

''कितनी रोचक/ और मनोरंजक भी/ किसानी से/ गुंडागर्दी की रूपांतरण की यह कथा'' (पृ 21)

कविताओं में सरलता, तरलता है। अरुणाचल के पहाड़ों से फूट कर निकले नैसर्गिक निर्झरों सी हैं ये कविताएँ। कवयित्री इन कविताओं में बह रही है। बस बह रही है। उस बहाव पर उसका कोई नियंत्रण नहीं है। अत्यंत सहज स्फूर्त हैं ये कविताएँ। नागरी सभ्यता के प्रभाव में अरुणाचाली युवाओं का निर्गमन और फिर अपरिचित संस्कृति, वेषभूषा, तौर तरीकों के साथ उनकी वापसी का मार्मिक आख्यान हैं ये कविताएँ।

कवयित्री का अभिव्यक्ति कौशल ध्यान खींचता है। अभिव्यक्ति में चित्रात्मकता है। कविताओं को पढ़ते हुए प्रतीत होता है जैसे कोई चित्रकार किसी स्थिति का चित्र प्रस्तुत कर रहा हो। यह उदाहरण देखिए-

''बाँस के बने / इस घर में/कुल चौदह अँगीठियाँ/ जब वे सारी/ एक साथ जल उठतीं/ तब रोशनियाँ/ घर के छिद्रों से तैर कर बाहर निकलतीं/ और बाहर/ खूब उजाला फैलता'' (पृ 16)

कविताओं में सूक्ष्म अभिव्यक्तियाँ हैं- ''चाँद धीमा/ कराह रहा/ मैं उस कराह को/ रात के/ इस मौन में/ सुन सकती हूँ'' (पृ76)

संग्रह की कविताओं की भाषा में व्याकरण संबंधी त्रुटियाँ हैं विशेष रूप से क्रियाओं से संबंधित। जिन कविताओं में ये त्रुटियाँ हैं संभव है, वे कवयित्री की आरंभिक चरण की कविताएँ हों। कवयित्री ने इस कविता संग्रह की भूमिका में लिखा ही है कि संग्रह की कुछ कविताएँ उसके छात्र जीवन की हैं। समय के साथ ये त्रुटियाँ समाप्त हो जाएँगी यह विश्वास किया जा सकता है। कुल मिला कर यह एक अच्छा पठनीय-संग्रहणीय काव्य-संग्रह है।

❐❐❐

डी के 2 - 166/18, दानिशकुंज, कोलार रोड, भोपाल- 462042 मप्र
मोबाइल : 8989569036
ईमेल : raj_nagdeve@hotmail.com

# पुस्तक चर्चा

## कथा सरित्सागर

**समीक्षक : निधि जैन**
**संपादन : विष्णु प्रभाकर**
**प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल**

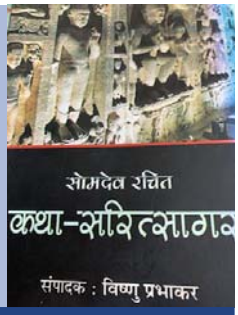


कथा सरित्सागर पुस्तक जो कि ,संस्कृत के महाकवि सोमदेव भट्ट की रचना का हिंदी अनुवाद है। मूलत: इसे पैशाची भाषा में लिखा गया। तत्कालीन समय में देश के पश्चिम भाग में जो प्राकृत भाषा बोली जाती थी उसे ही पेशाची भाषा कहा जाता था। उपदेशात्मक, मनोरंजक, जातक कथाएँ , नीति परक कहानियों की कड़ियों में यह पुस्तक मनोरंजन की श्रेणी में आती है। जैन आख्यान, बौद्ध कथाएँ इसके स्रोत हैं। इसके 18 खंडों को एक बैठक में पूरा करना आसान नहीं है।

ऐसा कहा जाता है कि संसार भर के कथा-साहित्य का आदि स्रोत है यह कथा सरित्सागर। एक कथा के अंदर से लोकजीवन, ऐतिहासिक, पौराणिक कथा की कई छोटी-छोटी सरिताएँ निकलती है और सब मिल कर एक सागर का रूप ले लेती है। साहित्य, प्रेम, विरह, मति, भाग्य सहित जीवन के लगभग समस्त पहलू इन कथा नदियों के साथ बहते हुए पुस्तक को सरस, रोचक और मधुर बनाते हैं। जैसे पानी की धारा निरंतर बहती रहती है, वैसे ही इसमें अंतहीन कथाओं का सिलसिला जारी रहता है। सभी कथाएँ एक दूसरे में गूँथी हुई प्रतीत होती हैं।

इस पुस्तक की आलोचना करना या कमी ढूँढ़ना मुझ जैसी अपरिपक्व रचनाकार को शोभा नहीं देता, फिर भी पढ़ते-पढ़ते मुझे जिस बात की कमी लगी, वह है कथा में जुड़ाव की कमी, एक कथा से दूसरी कथा पर पहुँच कब जाते हैं, पता ही नहीं लगता। यह ठीक वैसा ही है जैसे सागर में हम जितने गहरे डूबते जाते हैं, उतने ही मोती मिलते जाते हैं। लेकिन माला नहीं मिलती, वह हमें स्वयं बनानी होती है ।

पार्वती जी द्वारा शिव जी से प्रसन्न होने पर नई कहानी सुनने की इच्छा से शुरू होती हुई कहानी विद्याधर, उदयन, मृगावती, पाटलिपुत्र, वासवदत्ता, अवंतिका, उर्वशी फिर विदूषक नरवाहन दत्त, मदनमंचुका, कलिंगसेना, रत्नप्रभा, सती नलदमयंती तक धीरे-धीरे बहती है, फिर वेताल पच्चीसी में प्रवेग से बहती हुई विश्व कथा साहित्य में अमूल्य रत्न बन जाती है। कथाकार पुस्तक के अंत में पुन: कथा को जोड़ता है और अंत भला तो सब भला की तर्ज़ पर सुखद अंत करता है।

मेरी अनुभव जनित जानकारी कहती है कि जब तक मानव मन में -फिर क्या हुआ ? उसके बाद क्या ? अच्छा ! फिर ? जैसे प्रश्न उठते रहेंगे तब तक कथा कहानी की रचना होती रहेगी। हर साहित्य प्रेमी को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। इसलिए नहीं कि, इस से हमें जानकारी मिलेगी या मनोरंजन होगा बल्कि यह जानने के लिए भी कि, विलुप्त प्राय: प्राचीन भारतीय साहित्य कितना विपुल है प्राचीन होते हुए भी कितना अर्वाचीन है उसकी नीतियाँ आज भी कितनी प्रासंगिक है।

और अगर आप जानना चाहते है कि शिव जी द्वारा कथित कहानियाँ इस पुस्तक के रूप में गुनाड्य द्वारा कैसे लिखी गई कैसे इतने सालों तक बची रही और कैसे हम तक पहुँची ? तो इसके लिए भी आप को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए ।

❐❐❐

रूपांतरकार -गोपालकृष्ण क़ौल
130 बैकुंठ धाम कालोनी
आनंद बाज़ार के पीछे, इंदौर (म.प्र.)452018
ई-मेल : Nidhivartu@gmail.com

# पुस्तक समीक्षा

## हैशटैग मी-टू

**समीक्षक : पारुल सिंह**

**लेखक : आकाश माथुर**

**प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर**

आकाश माथुर एक युवा लेखक और पत्रकार हैं। 'हैशटैग मी टू' उनकी पहली किताब है। मैंने अंदाज़ा लगाना शुरू किया कि क्या लिखा होगा इस किताब में? किताब पर चर्चा के दौरान सुना कि यह अलग तरह की किताब है। अलग तरह की किताब मतलब ? मैंने सोचा यह ज़रूर मर्दों की तरफ से वाले मी टू की कहानी होंगी। मर्दों के मी टू की बातें होगी। मी टू के अभियान से पहले से ही कुछ वजहों से कुछ कोफ़्त खाई हुई मैं, इस किताब को एक सिरे पर रख गई। मैंने सोचा इस युवा लेखक ने अपनी पहली किताब किसी और लोकप्रिय विषय पर क्यों नहीं लिखी।

मी टू में शामिल कहानियाँ हैं या किसी भिन्न प्रकार का मी टू है, या ये मेरे अनुमान के अनुसार मर्दों वाला मी टू है। यही जानने के लिए ये किताब पढ़नी शुरू की। 'हैशटैग मी टू' की पहली ही कहानी मैंने दम साधे पढ़ कर ख़त्म की और मैं शून्य में थी। हैरान करने की हद तक कसा हुआ कथ्य व कहन।

इस युवा लेखक को पढ़ कर मुझे समझ आ रहा था कि संवेदनशील लेखन और भावुकता का सामंजस्य क्या होता है। वो कौन सी महीन परिधी है जिसके पार संवेदनशीलता अति भावुकता से बचकर चलती है लेखन में। हर कहानी जो कि सच्ची है, वो संस्मरणात्मक शुरू हो पात्र की कहानी में तब्दील हो जाती है। उसमें सिर्फ पात्र रह जाता है। पहली किताब लिखने वाला लेखक किसी मँझे लेखक की ही तरह कहानी बुनता चला जाता है। आकाश माथुर ने अपनी इस नई किताब के साथ साहित्य की एक नई विधा की नींव भी रख दी हो जैसे। सत्य घटना पर आधारित क़िस्से, कहानी संस्मरण, और स्वयं के सामने घटित का मिश्रण। इस सब के मिश्रण की एक नई विधा। सच्ची आँखों देखी को विशुद्ध रूप में कहानी की तरह कहने की एक नई विधा।

आकाश माथुर बहुत संभावना वाले लेखक हैं। मी टू में और कितने तरह के मी टू हैं। जिनकी ज़ुबान नहीं, जो कभी मी टू कहेंगे ही नहीं और ये अनकहा मी टू झेलने और सुनने वालों के लिए कई गुना दु:खदायी है। पत्रकार भी होने के कारण इन घटनाओं पर अपना रिपोटिंग का रवैया भी रखना लेखक के लिए सहज नहीं रहा होगा। इस दर्द से गुज़र कर लेखक ने कैसे उन चरित्रों को शब्दों में ढाला होगा इसका सहज अंदाज़ा लगाया जा सकता है। संवेदनशील तो लेखक होता ही है, पर जब इस तरह की भावुक घटनाएँ लेखक की संवेदनशीलता का दरवाज़ा खटखटाती हैं तो हर कहानी में लेखक कई बार मरता है। इतनी छोटी सी किताब में इतनी सारी संवेदनाएँ छुपी हैं कि यह पाठक के मन और वजूद को झँझोड़ने की ताक़त रखती है। हमारा सर शर्म से झुकाने के लिए काफी है। हम सच में कितनी पाशविक प्रवत्ति के समाज का हिस्सा हैं। जो मी टू नहीं बोल सकते उनकी तरफ से आकाश माथुर ने ये मी टू बोला है। जो हौसले का काम है।

उनकी तरफ से मी टू बोल कर और उसे समाज के सामने लाकर आकाश माथुर ने एक भद्र नागरिक व सहृदय व्यक्ति होने के नाते तर्पण दिया है उन्हें। एक अद्भुत बात और आकाश माथुर की कहानियों में मैंने महसूस की। कहानी के अंत में वो एक बहुत बड़ा सवाल पाठक को थमा देते हैं। जैसे एजेंसी वाले नई कार खरीदने पर एक बड़ी सी चाबी थमा देते हैं उसी तरह। किन्तु एक उम्मीद की किरण, अपना कर्त्तव्य करने का प्रोत्साहन जाने कैसे वो पाठक को दे जाते हैं। ये तो गुणी पाठक ही बता पाएगा कि क्या है आकाश माथुर के लेखन में कि जो उम्मीद भी देता है। यह एक लेखक की बड़ी विजय है। मैं आकाश माथुर को बहुत-बहुत शुभकामनाएँ देती हूँ उनके भविष्य के लिए। वो सृजन यात्रा को अनवरत जारी रखें। उनसे हमें बहुत उम्मीदें बँध गई हैं उनकी पहली ही किताब के बाद।

मेरी संवेदनशीलता एक स्त्री होने के बावजूद भी शायद इतनी नहीं है। मैं अपनी सारी संवेदनशीलता दस बार आकाश माथुर की इस पतली सी किताब के सामने निरस्त करती हूँ। आकाश माथुर ने इस क़िताब में कई जगह एक स्त्री होकर लिखा है। जिसने मुझे रोमांचित कर दिया। जब कोई पुरुष लेखक एक स्त्री होकर लिखता है तो वो एक अव्वल दर्जे का लेखन होता है। एक रूहानी चीज़ उसमें आ जाती है। जिस संवेदनशीलता को भावुकता के साथ आकाश ने क़िताब में सँभाला है, वो मैं यहाँ वर्णन नहीं कर पाई हूँ। बहुत ज़रूरी पढ़ी जाने वाली किताब है यह। जो शिवना प्रकाशन से आई है और ऑन लाइन भी उपलब्ध है।

❐❐❐

डब्ल्यू-903, आम्रपाली ज़ोडिएक, सेक्टर 120, नोएडा, उप्र 201301 मोबाइल : 9871761845,
ईमेल : psingh0888@gmail.com

# पुस्तक समीक्षा

## अभी तुम इश्क़ में हो

**समीक्षक : शिवकुमार अर्चन**

**लेखक : पंकज सुबीर**

**प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर**

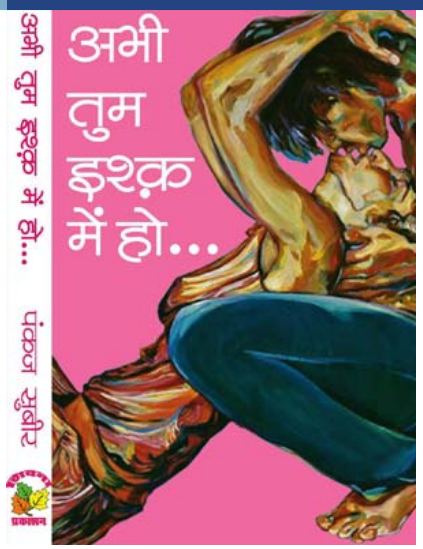


पंकज सुबीर का एक मिश्रित संकलन ''अभी तुम इश्क में हो'' मेरे सामने है। इसमें कुछ गीत हैं, कुछ कविताएँ, कुछ लघु कथाएँ और अधिक मात्रा में ग़ज़लें हैं। यह प्रेम के केनवास पर विधाओं का कोलाज है। अनुभव और अनुभूति के करघे पर प्रेम के धागे से बुनी इन रचनाओं का केन्द्रीय भाव प्रेम है। इस असहज, अराजक समय में जब हम कई तरह के विमर्शों से घिरे हैं, सारे प्रश्न अनुत्तरित हैं, साहित्य और समाज में प्रेम की जगह कम हो रही है ऐसे समय में संकलन की प्रेमपरक रचनाएँ कुनकुने अहसास से भरती हैं। ग़ज़ल की हम जब बात करते हैं तो ग़ज़ल की एक हज़ार वर्ष से भी ज़्यादा लंबी परंपरा याद आती है। ग़मे जानाँ से ग़मे दौराँ का तबील सफ़र, कम शब्दों में बात करने का तरीक़ा, उसका मिजाज़, तेवर, नज़ाकत, नफ़ासत और भाषा की मुहावरे दानी याद आती है, जिसने सदियों से पाठकों और श्रोताओं को अपने असर में रखा है। ग़ज़ल गुफ़्तगू का एक दिलकश अन्दाज़ है यह गुफ़्तगू चाहे मेहबूबा से हो या आवाम से। ग़ज़ल का हर शेर एक दृश्यात्मक आख्यान की रचना करता है। तो आइए पंकज सुबीर की इश्क़िया ग़ज़लों से गुज़रकर देखते हैं जहाँ इश्क की बलंदियाँ हैं, नाकामियाँ है, पशेमानियाँ हैं, गुज़ारिशें हैं, ख़्वाहिशें हैं, हुस्ने की रानाइयाँ हैं, गुनगुनाते जिस्म हैं, सरसराती हवा, धड़कनों की पुकार, जुस्तजू यूँ कहें कि उनकी शाइरी में तमाम कायनात इन्सानी जज़्बात के साथ शामिल है। शेर मुलाहजा फरमाएँ-

जिस्म को यूँ ही गुनगुनाने दो / मुझको खुद में ही पिघल जाने दो
अपनी आँखों की रौशनी में ज़रा / मेरी रातों को जगमगाने दो (पृ.11)

कदीम शाइरी हुस्नो इश्क़, वस्ल फिराक़, जामो मीना, दर्द ओ ग़म से भरी पड़ी है; लेकिन शाइर की शाइरी उसके अलग अन्दाज़े बयाँ से भी जानी पहचानी जाती है। पंकज सुबीर ने भी शाइरी में अपनी अलग राह बनाई है। उनकी शाइरी में तगज़्ज़ुल के बेहतरीन शेड्स मिलते हैं। चाँद के मुत्तालिक उनके कुछ शेर देखें-

चाँद की अपनी कहानी रात का क़िस्सा अलग
दास्ताने इश्क़ में है तजरबा सबका अलग
रौशनी दीपक की सूरज चाँद की अपनी जगह
नूर से रौशन तेरे माथे का ये टीका अलग (पृ.14)

ग़ज़ल निश्चय ही एक कलात्मक विधा है जो बेहद शाइस्ता और महीन है। ग़ज़ल अवाम की मद्दम आवाज़ वाली मौसिक़ी है, उसकी जान उसका आन्तरिक संगीत है। संगीत का मतलब सिर्फ रदीफ-काफिए से न होकर उसके भाव अनुभाव और संवेदन की थरथराती लयात्मकता से है। ये कहा-सुना जाता है कि आज की ग़ज़लों में प्रेमानुभूतियाँ, उसकी अभिव्यक्तियाँ बहुत कम हैं। शायद समकालीन ग़ज़ल के पास व्यस्त करने के लिए और ज़रूरी चिन्ताजनक विषय तथा सवाल मौजूद हैं; लेकिन पंकज सुबीर की ग़ज़लों में प्रेमानुभूतियों की उदात्त छवियों का एक भरा-पूरा संसार मौजूद है। संकलन की ग़ज़लें पढ़कर यह यकीन के साथ कहा जा सकता है कि रवायती शाइरी का उन पर ख़ासा असर है और वो ख़ालिस मुहब्बत के शाइर हैं।

पंकज सुबीर की ये ग़ज़लें इस अर्थ में कामयाब हैं कि इनको पढ़कर हमें यह महसूस होता है कि ये तो हमारी ही अनुभूतियाँ हैं, हमारे ही अहसासात हैं। बकौल फ़ैज़-अच्छी शायरी वो है जो कला के निकष्य पर ही नहीं ज़िंदगी की कसौटी पर भी खरी उतरे। मुझे उम्मीद है पंकज सुबीर के जातीय अनुभवों से वाबस्ता इन ग़ज़लों को पढ़कर ये आपको अपनी सी लगेंगी और यही मेरी मुराद है।

'अभी तुम इश्क में हो' संकलन में तितली, नदी, ज़र्द पत्ते और साँवली शीर्षक से कुल जमा चार गीत हैं, जो पारंपरिकता का निर्वाह भर करते हैं और संग्रह में कुछ अतिरिक्त पृष्ठ जोड़ने का लिहाज नहीं करते हैं। संग्रह की नौ कविताओं में 'घास का फूल' सबसे अच्छी कविता है। यह प्रेम के नए अभ्यांतर खोलती है और पाठकों के अन्तरंग का हिस्सा बनती है। अंत में कुछ लघु कथाएँ है जो अपने आप में बड़ा अर्थ रखती हैं। प्रश्न, जिज्ञासा, रहस्य और अतीत के ताने-बाने से बुनी ये प्रेम कथाएँ आधुनिक प्रेम की कुछ नई परिभाषा गढ़ती हैं। अंत में मेरा मानना है कि 'अभी तुम इश्क में हो' संकलन को महत्त्व मिलेगा या याद किया जायेगा तो केवल और केवल उसकी ग़ज़लों के कारण। यह रचनाकार का भी अभीष्ठ होगा और मेरा भी है। आमीन।

❐❐❐

10 प्रियदर्शिनी ऋषि वैली, ई-8, गुलमोहर एक्सटेंशन,
भोपाल-462039, मप्र
मोबाइल : 9425371874

# पुस्तक समीक्षा

# लेडीज़ सर्कल

**समीक्षक : पारुल सिंह**

**लेखक : गीताश्री**

**प्रकाशक : राजपाल एंड संज़**

गीताश्री के कहानी संग्रह 'लेडीज़ सर्कल' में महिला केंद्रित कहानियाँ है। इस किताब में गीताश्री की जो नायिकाएँ हैं वह शहरी क्षेत्र से भी हैं और ग्रामीण क्षेत्र से भी हैं। मगर एक बात गीताश्री की महिला पात्रों में समान है कि वह बहादुर हैं, उन्हें क्या चाहिए इसमें वह सुस्पष्ट हैं; उसे कैसे हासिल करना है उसका हल भी वे जल्दी निकाल लेती हैं। सबसे खास बात इस हल में वे बेवक़ूफ़ी भरा कोई निर्णय लेकर स्वयं को ही और घिर जाने नहीं देतीं।

उनका स्त्री विमर्श एक अलग प्रकार का है वह ना तो घर छोड़ती हैं और ना घर में बंद होकर रहती हैं। वह पितृ-सत्ता को उसी की भाषा में जवाब देती हैं। उन्हें मालूम भी नहीं पड़ता कि वह उनके नियम, क़ायदे, क़ानून के भीतर खुद को रहता हुआ दिखा कर अपनी दुनिया रच लेती हैं। निर्भीक हैं, आत्मविश्वासी हैं मगर पहले पूरा मौका देती हैं ढल जाने का।

एक औरत सिर्फ प्यार और आदर माँगती है जब विनम्रता की हदों में वह उसे प्राप्त नहीं होता है तो गीताश्री की नायिकाएँ रोना लेकर नहीं बैठती हैं। वह रोती नहीं हैं, अपना रास्ता खुद तय करती हैं; और उस रास्ते में विरोध करते हुए वह ध्यान रखती हैं कि उनका कोई बड़ा नुकसान उस विरोध में ना हो जाए। यह है वास्तव में आज की औरत, आज की लड़की।

इस तरह के चरित्रों को, इस तरह के स्त्री विमर्श को इंटेलिजेंट स्त्री विमर्श कहूँगी।

यह तो बिल्कुल ऐसा है कि जैसे पितृ-सत्ता के क़िले में ही सेंध लगा दी हो और उन्हें मालूम ही नहीं है, उन्हें पता ही नहीं लगने दिया जा रहा है। और उनके खिलाफ़ मज़बूत होकर अपने रास्ते बनाए जा रहे हैं।

पहली कहानी में नायिका राजवती कोशिश करती है अपने माँ-बाप के अनुसार ढलने की भी और अपने ससुराल के अनुसार ढलने की भी।

उसके नाज़ुक और साधरण से सपने हैं, जो किसी भी नवयुवती के होते हैं, मगर वह जितना अपनी शारीरिक और सामाजिक ज़रूरतों का ध्यान रखती है, उतना ही अपनी मानसिक ज़रूरतों का और शरीर की चाह का भी ध्यान रखती है। उनका सम्मान करती है और वह जानती है कि यह उसका हक़ है, यह उसे मिलना ही चाहिए। जब परिवार के बंधन और सामाजिक मान्यताएँ आप के स्वाभिमान को आपके जीवन को प्रभावित करती हैं तो व्यक्ति प्रतिकार कर ही उठता है।

दूसरी कहानी में गाँव में भूतप्रेत ओझाओं और अभी तक भी इस सब पर विश्वास रखने वाले लोगों के ऊपर लिखा गया है।

''आवाज दे कहाँ है'' में पुलिस प्रशासन और उसके साथ चिकित्सकों की मिलीभगत से किस तरीके से अच्छे-ख़ासे इंसान को अपराधी बना कर और एक अपराधी को भी गैर क़ानूनी तरीके से मारना या एनकाउंटर किया जाता है, ये बहुत मर्म भरे तरीके से बताया गया है। उसके बाद आती है मेरी मनपसंद कहानी ''नामर्दी वाया लेडीज़ सर्कल'' यह कहानी लाजवाब है। गीताश्री जी की कहानियों में कहानी का वह तत्व बहुत ज़बरदस्त तरीके से होता है जिसे कहते हैं कि पाठक को पढ़ते हुए लगता है कि अब आगे क्या होगा।

अब आगे क्या होने वाला है, ये सोच कर पाठक जब अगली लाइन पढ़ता है, तो एक के बाद एक पंक्तियों की लड़ी लेखिका तेज़ी से उसे थमाती है। किन्तु इस से कहानी पर से पर्दा समयानुसार ही खुलता है। ना तो भाषा, शिल्प गढ़ने का कोई अन्यथा प्रयास है, ना घटनाक्रम बहुत तेज़ है। एक बार पाठक पढ़ना शुरू करता है, तो उसका क्रम बीच में टूटता ही नहीं है। गीताश्री का लेखन रोलर कॉस्टर की राइड जैसा है। वह पाठक को कहानी से इस तरह बाँधे रखती हैं कि वह कुछ और सोच नहीं पाता है। बहुत सारे शब्दों में बँधे हुए सीधे-सीधे उनके सेंटेंसेस दिल में कहीं गहरे जगह बनाते हैं। भाषा को और शब्दों को घुमा फिरा कर, मोड़ देकर शब्द शिल्प रचने की कतई कोशिश नहीं करती हैं।

मगर जब कोई इतना सधा हुआ और इतना कसा हुआ लिखेगा तो उसमें शब्द शिल्प आ जाएगा यह स्वभाविक है।

एक स्थापित साहित्यकार के लिए ये सब बातें कहने की आवश्यकता नहीं होती। पर क्योंकि मैं कोई आलोचक नही हूँ तथा एक पाठक के तौर पर पहली बार गीताश्री को पढ़ रही हूँ। तो ये सब मेरी पाठकीय प्रतिक्रियाएँ हैं।

चाहे पहली कहानी 'ज़ीरो माईल' की राजवती की बात हो या कहानी 'परी हो बला हो क्या हो तुम' की ज़ैनब की हो, दोनों ही बेबाक हैं। पहल करने में घबराती नहीं है। पुरुष का इंतज़ार नहीं

करती हैं बात शुरू करने में भी क्योंकि उनकी सोच सुलझी हुई है। संशय नही हैं। गीताश्री की कहानियों में नाटकीयता नहीं है। मगर यथार्थ के नाम पर दु:ख में डूबी, समझौतावादी, विकल्पविहिना स्त्री पर आकर भी उनकी कहानियाँ ख़त्म नहीं होती।

जो आज की पीढ़ी की औरत है जो आज की पीढ़ी की लड़की है जिसे आप दबा कर नहीं रख सकते; अपवादों की बात छोड़ दें तो बहुत प्रोग्रेसिव है। हमारी आज की पीढ़ी वह चाहे निम्न वर्ग से हो, मध्यम वर्ग में या उच्च मध्यम वर्ग से।

इन लड़कियों को मालूम है कि उन्हें क्या चाहिए और उसे हासिल कैसे करना है। सबसे बड़ी बात है कि इससे पहले वाली पीढ़ी की लड़कियों को भी मालूम था कि उन्हें क्या चाहिए मगर उन्हें उसका सही रास्ता मालूम नहीं था। कोई बग़ावत करती भी थी, तो उन ढेरों इल्ज़ामों का जवाब ढूँढ़ना मुश्किल हो जाता था जो उसका समाज उसके सामने रख देता था। वो पीढ़ी ज़्यादातर जहाँ लंबा और क्लिष्ट रास्ता पकड़ती थी।

वहीं इस पीढ़ी ने अपना सही और सरल रास्ता निकाल लिया है कि अगर पितृसत्ता के साथ सीधा युद्ध लड़ेंगे तो बहुत वक़्त बीत जाएगा। यहाँ मूर्ख को मूर्ख बनाने वाली पॉलिसी के साथ परिवर्तन की बात करती हैं लड़कियाँ।

अपनी एनर्जी को अपनी क्षमता को छोटी-छोटी बातों का विरोध करने में न गँवा कर। वह अपने लक्ष्य पर फोकस करती हैं और टेढ़ी-मेढ़ी, रीति-रिवाजों और बोलियों और तानों की राहों से खुद को निकालते हुए अपने लक्ष्य पर ध्यान केंद्रित रखती हैं; ना कि अपनी राह में आने वाली हर अड़चन को, अपनी राह में आने वाले हर रोड़े को जवाब देती हैं।

वह जानती है कि मंज़िल पर पहुँचकर इन रोड़ों को स्वयं ही जवाब मिल जाएगा। और वे भी अपनी मंज़िल अपनी स्वतंत्रता पर पहुँच जाएँगी।

इसका मतलब यह नहीं है कि गीताश्री की कहानियों में जो स्त्री है वह घर से भागने वाली है, ज़िम्मेदारियों से भागने वाली है या आज़ादी के नाम पर कुछ अटपटा सा करने वाली है। नहीं, वह परिवार चलाने वाली भी है, वह परिवार को बाँध के रखने वाली भी है, वह परिवार के साथ होते हुए परिवार में रहते हुए ग़लत को ग़लत कहने की हिम्मत करने वाली भी है।

और यहाँ कुछ ऐसे मोड़ हैं जो बहुत तीखे हैं। गीताश्री की कहानियों की नायिका कहती हैं, उसका यह विचार है कि आप अगर हमसे दिखावटी रस्मों-रिवाजों को निभवाना चाहते हैं, तो निभा देंगे। अंदर से तो हम वही करेंगे, जो हमारा मन है। यह एक तरीके से पुरुष सत्ता के क़िले में सेंध लगाने वाली बात है। जो बात सबसे ज़्यादा गीताश्री की कहानियों की स्त्री की प्रभावित करती है, वह यह है कि वह मुखर है चुप नहीं है।

'नामर्दी की दवा वाया लेडीज़ सर्किल' कहानी स्त्रियों के बहनापे के साथ-साथ मुखर होकर एक दूसरे से अपनी सेक्स लाइफ पर खुल कर चर्चा करने की बेबाक़ी को भी प्रदर्शित करती है।

इसमें यथार्थ की एक सच्ची स्थिति को हँसी के रूप में लेने की गाँव की औरतों की हिम्मत भी हमें मालूम पड़ती है। और दूसरी बात यह है कि वह आपस में कितनी खुली हुई हैं। एक दूसरे के साथ और एक दूसरे का दर्द भी समझती हैं। यह वह तबका है जिसे कम पढ़ा-लिखा, गँवार कहकर बहुत ही आसानी से हम नकार देते हैं। हँसी में टाल देते हैं। किन्तु ओपन सेक्स में विश्वास करना ही आधुनिकता नहीं है।

पितृशक्ति ने सदैव स्त्री द्वारा ही स्त्री को बंधन में रखा है। इस बात को समझ इस तबके की स्त्री एकजुट हो गई है। यह एक बड़े परिवर्तन की नींव पड़ चुकी है। यह चुप्पी एक बड़े ज़लज़ले से पहले की शांति है। हमारे देश का गाँव, हमारे देश के परिवार जब तक इन मज़बूत औरतों के हाथ में हैं तब तक सुरक्षित हैं। यह बात पितृसत्ता को समझनी चाहिए। घर और परिवार नाम की इकाई के लिए स्त्री शक्ति सबसे महत्त्वपूर्ण है।

❐❐❐

डब्ल्यू-903, आम्रपाली ज़ोडिएक, सेक्टर 120, नोएडा, उप्र 201301
मोबाइल : 9871761845,
ईमेल : psingh0888@gmail.com

**फार्म IV**
**समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण ( देखें नियम 8 )।**
**पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी**
**1. प्रकाशन का स्थान :** पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
**2. प्रकाशन की अवधि :** त्रैमासिक
**3. मुद्रक का नाम :** जुबैर शेख़।
**पता :** शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।
**4. प्रकाशक का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित।
**पता :** पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001
क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।
**5. संपादक का नाम :** पंकज सुबीर।
**पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
**क्या भारत के नागरिक हैं :** हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।
4. **उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित। **पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001
**क्या भारत के नागरिक हैं :** हाँ।
(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।
**मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।**
**दिनांक 20 मार्च 2019**
**हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित**
**( प्रकाशक के हस्ताक्षर )**

# पुस्तक समीक्षा

# प्रवासी हिन्दी कहानी कोश

**समीक्षक : डॉ. सुनीता शर्मा,**
**लेखक : डॉ. मधु संधु**
**प्रकाशक : नमन प्रकाशन**

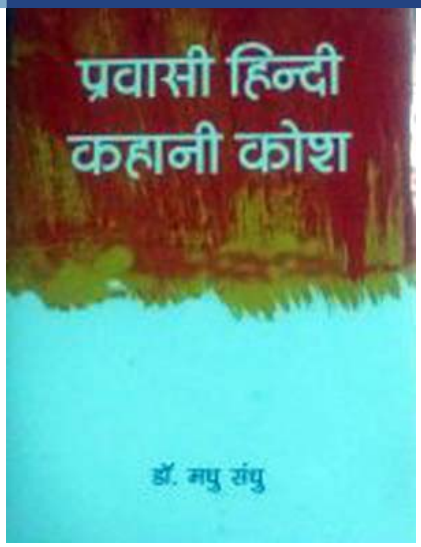


कोशविद्या एवं कोशकला के आधार पर ही कोशकार भाषा एवं साहित्य की सेवा करता है। कोश रचना उसकी कलात्मक एवं वैज्ञानिक बुद्धि का समन्वित रूप है। किसी विषय, भाषा एवं किसी अन्य क्षेत्र विशेष की आवश्यकता की पूर्ति ही इसके निर्माण में प्रेरक कारण बनती है। 'निघंटु' भारतीय कोश परंपरा का प्राचीन रूप है। निघंटु कोश का वह रूप है, जिसमें उन शब्दों का विवेचन किया जाता है, जो तत्काल प्रचलित नहीं होते, जिनका प्रचलन लोक से उठ गया होता था। निघंटुओं से आगे बढ़ती यह परंपरा संस्कृत यथा प्राकृत में पुष्ट होती हुई हिन्दी में प्रविष्ट होती है। हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों में पहला कोश पादरी एम. टी. एडम ने तैयार किया था। यह 1829 में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। भारतीयों में मुंशी राधेलाल ने 1872 में पहला कोश ग्रंथ प्रस्तुत किया और बीसवीं शती के प्रारम्भ में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने 1904 में दस खंडों में हिन्दी शब्द सागर के नाम से बृहत कोश प्रकाशित किया और फिर निरंतर विकास करते हुए हर तरह के कोश अस्तित्व में आए। विधागत कोशों में जैसे उपन्यास कोश, नाटक कोश, कहानी कोश की आवश्यकता अनुभव हुई और इनका जन्म हुआ। विशेष बात यह है कि विधापरक कोशों के जन्मदाता रचनाकार ही बने। कहानी के क्षेत्र में अब तक तीन कहानी कोशों के निर्माण का श्रेय प्रोफेसर मधु संधु को ही जाता है।

हिन्दी कहानी लेखिका प्रोफ़ेसर मधु संधु पिछले लगभग पैंतीस वर्षों से कहानी साहित्य में जी रही हैं। उनकी दृष्टि, उनके चिंतन का हर पक्ष कहानी के साथ ही जुड़ा है। सन् 70 के बाद की कहानी के हर मोड़ पर उनके हस्ताक्षर अंकित हैं। आज कहानी लेखन, कहानी चिंतन, कहानी समीक्षा में उनका नाम पूरे भारत में जाना जाता है। कहानी जगत् को कोशबद्ध करना उनकी विश्लेषणात्मक प्रतिभा की विशिष्ट पहचान बन चुकी है। अपनी कोशकारी कला को साहित्यिक सौंदर्य से सुसज्जित करते हुए उन्होने साहित्य जगत् को चौथा और कहानी जगत् को तीसरा कोश 'प्रवासी हिन्दी कहानी कोश' प्रदान किया है। इससे पूर्व 1992 में पहला हिन्दी 'कहानी कोश' ग्रंथम, दिल्ली से प्रकाशित हुआ एवं 2009 में दूसरा 'हिंदी कहानी कोश' नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली से साहित्य जगत् को मिला और अब 2019 में नमन प्रकाशन दिल्ली द्वारा 'प्रवासी हिन्दी कहानी कोश' का प्रकाशन हुआ है। इससे पूर्व डॉ. मधु संधु 2003 में गुरु नानक देव विश्व विद्यालय से प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी लेखक कोश' में सहलेखिका के रूप में अपना नाम दर्ज करवा चुकी है। 'द सन डे इंडियन' ने उनकी गणना 21वीं शती की 111 हिन्दी लेखिकाओं में की है।

भारतीय और पाश्चात्य महिला कथा लेखन के तुलनात्मक संदर्भों पर कार्य करते हुए उन्होंने विदेश में रहने वाली प्रवासी लेखिकाओं की संवेदना को पहचानना बहुत पहले आरम्भ कर दिया था। उनकी हर कहानी की अपने ढंग की व्यथा कथा ने उन्हें एक स्थान पर मंच साझा देने के लिए प्रेरित किया। फल स्वरूप कोश की रूपरेखा ने आकार लेना शुरू कर दिया, जिसका साकार रूप आज हिन्दी जगत् के सामने है। उनका कथन है, ''कहानियाँ मात्र पढ़ी या समझी ही नहीं जाती, एक एक कहानी मनसा जी भी जाती है।'' इसीलिए इस कोश को पढ़ते समय ऐसा लग रहा था कि कहानी कोश में प्रविष्टि नहीं ले रही हैं, अपितु डॉ. मधु संधु इस की पुनर्रचना कर रही है, तभी तो एक के बाद एक कहानी पढ़ते चले जाते हुए विदेशी तिलस्म जाल में ऐसा खो गई कि अंत तक पहुँचने पर ऐसा लगा कि यह मात्र एक कोश नहीं है, यह तो उन कहानीकारों के जीवन के वह अछूते पक्ष हैं जिन पर कोश लेखिका ने अपने हस्ताक्षर करके उन्हें प्रामाणिक बना दिया है। यह कहानियाँ विदेश में अस्तित्व चेतना की विशेष जद्दोजहद की कहानियाँ हैं।

यह 'प्रवासी हिन्दी कहानी कोश' केवल प्रवासी महिला कहानीकारों की 437 कहानियों का भारतीय एवं प्रवासी संसार है। लगभग सभी लेखिकाएँ भारतीय मूल की हैं और विश्व के भिन्न देशों में प्रवास कर रही हैं। इसीलिए यहाँ लगभग चालीस प्रदेशों की संस्कृति के दर्शन होते हैं। जैसे- स्कॉटलैंड, डेन्मार्क, अमेरिका, संयुक्त अरब अमीरात, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, कुवैत, फ्रांस, इंग्लैंड, मलेशिया, केनेडा, इराक, मेक्सिको, मारिशस, अफ्रीका, यूगांडा, युगोस्लावाकिया, आयरलैंड, सूरीनाम आदि। यह कोश उस महान् कुम्भ के समान है, जिसमें अलग-अलग देशों के लोग डुबकी लगाते हुए प्रतीत होते हैं। कभी तो पाठक का साक्षात्कार किसी मलेशियन से होता है (मेनका शेरदिल- वो मलियान लड़का), कभी अमेरिका की संस्कृति का जीवंत रूप मिलता है (सुषम बेदी- चिड़िया और चील), कभी ब्रिटेन का (उषाराजे सक्सेना- वॉकिंग

पार्टनर), कभी डेनमार्क का (अर्चना पेन्यूली- डेरिक की तीर्थ यात्रा)।

इन कहानियों का चयन कोश लेखिका ने उनके प्रकाशित संग्रहों, संकलनों के साथ-साथ प्रकाशित पत्रिकाओं और अंतर्जालीय पत्रिकाओं से किया है। हर कहानी का कथासार, पात्र परिचय, कथ्य देने के साथ-साथ कहानी का प्राप्ति स्त्रोत, प्रकाशन वर्ष, प्रकाशक और सम्पादकीय संपर्क भी दिए गए हैं- जो इस कोश की महती विशेषता है। सबसे अधिक 40 कहानियाँ दिव्या माथुर की हैं। सुषम बेदी की 39, इलाप्रसाद की 36, उषा राजे सक्सेना की 33, उषा प्रियंम्वदा की 32, अर्चना पेन्यूली की 22, सुधा ओम ढींगरा की 19, अनिल प्रभा कुमार की 16, सोमवीरा की 15, सुदर्शन प्रियदर्शिनी की 14, कादंबरी मेहरा की 13, नीना पॉल और शैल अग्रवाल की 11-11, ज़किया ज़ुबेरी की 9, पूर्णिमा बर्मन, लावण्या शाह, उषा वर्मा, रचना श्रीवास्तव और भावना सक्सेना की 8-8 कहानियों की प्रविष्टियाँ हैं। अचला शर्मा, अनीता कपूर, अमिता तिवारी, उषादेवी कोलहटकर, कमला दत्त, कविता वाचक्नवी, कुंती मुखर्जी, दीपिका जोशी, देवी नागरानी, नीरा त्यागी, नीलम जैन, मनीषा श्री, मेनका शेरदिल, शैलजा सक्सेना, स्नेह ठाकुर, स्वाति भलोटिया, सुनीता जैन, सीमा खुराना, स्वदेश राणा, हंसा दीप आदि लेखिकाओं की कहानियाँ भी इस कोश का अलंकरण बनी हैं।

प्रस्तुत कोश में रचनाकारों ने प्रवासी परिवेश में बसे भारतीयों के जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए अनेक विचित्र समस्याओं से पाठक को परिचित करवाया है। दूसरी ओर यह सभी लेखिकाएँ भारतीय परिवेश में पली-बढ़ी हैं। भारतीय संस्कृति के वैशिष्टय से परिचित हैं, इसी लिए यहाँ एक तुलनात्मक परिवेश का सृजन हुआ है।

'प्रवासी हिन्दी कहानी कोश' की अधिकतर कहानियाँ उन पुरुषों को केंद्र में रख कर लिखी गई हैं, जिन्हें डॉलर की चमक, उन्मुक्त यौनाचार और निरंकुश जीवन इतना प्रभावित करता है कि वहाँ की नागरिकता पाने की, ग्रीन कार्ड लेने की जद्दोजहद में लग जाते हैं (सुनीता जैन- काफी नहीं, सुधा ओम ढींगरा- फ़ंदा क्यों, रचना श्रीवास्तव- भरोसा, नीना पॉल- किश्तों का भुगतान, दिव्या-माथुर- मेड इन इंडिया)। लिव-इन का फ़ैशन तो सिर चढ़ कर बोल रहा है (उषा राजे सक्सेना- वॉकिंग पार्टनर, अचला शर्मा- दिल में एक कस्बा है, सुषम बेदी- रण भूमि, अर्चना पेन्यूली- मैंने सही चुनाव किया न)। 'प्रवासी हिन्दी कहानी कोश' की इन कहानियों में एक ओर अनाथ, बेसहारा बच्चों के संरक्षण के लिए वेलफ़ेयर स्टेट के चिलड्रेन होम, फ़ास्टर होम जैसी संस्थाओं का भी उल्लेख है (इला प्रसाद- आधा पाठ, उषा राजे सक्सेना- बीमा बीसमार्ट, वह रात)। हैफ़ फादर- हैफ़ मदर की अवधारणा भी कम चौंकाने वाली नहीं है। सौतेले बच्चों की प्रताड़ना, हत्या, अत्याचार, यौन शोषण हैफ़ फादर ही नहीं माँ के प्रेमी भी कर रहे हैं। (नीना पॉल- ऐसा क्यों, ज़किया ज़ुबेरी- बाबुल मोरा) जबकि उषा राजे सक्सेना की 'डैडी' जैसी कहानियों में स्नेहिल हैफ़ फादर भी मिलते हैं। दूसरी ओर वृद्धावस्था की त्रासदी भी यहाँ चित्रित है (सुधा ओम ढींगरा- कमरा न. 103, इला प्रसाद- उस स्त्री का नाम)। प्रवास व्यक्ति को अकेला भी कर रहा है और कुंठित भी। समलैंगिकता (सुधा ओम ढींगरा- आग में गर्मी कम क्यों, अनिल प्रभा कुमार- कतार से कटा घर), परामनोविज्ञान (पूर्णिमा वर्मन- उड़ान), नस्लवाद (सुषम बेदी- अजेलिया के फूल), नारी उत्पीड़न (दिव्या माथुर- नीली डायरी) और सशक्तिकरण (उषा राजे सक्सेना - आण्टोप्रन्योर) पर भी अनेकों कहानियाँ हैं।

अत: 'प्रवासी हिन्दी कहानी कोश' भारतीय मूल की प्रवासी लेखिकाओं की कहानियों का गहन पुनर्पाठ है। कोशकार डॉ. मधु संधु ने मानों इन कहानियों के विदेशी तिलस्मी संसार में प्रवेश कर उन्हें हर ओर-छोर से महसूसा और एक विशेष फ्रेम में कोशाभिव्यक्ति दी है। प्रवासी लेखिकाओं को पहचान दिलाने में यह कोश मील का पत्थर सिद्ध होगा।

❑❑❑

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय अमृतसर,पंजाब।
ई-मेल: sunitasharama.gndu@gmail.com

# नई पुस्तक

## कुबेर

**समीक्षक : दीपक गिरकर**
**लेखक: डॉ. हंसा दीप**
**प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर**

उपन्यास 'कुबेर' में डॉ. हंसा दीप ने बालक धन्नू के जीवन-संघर्ष, उसकी सफलताओं, विफलताओं और जीवन के उतार-चढ़ाव को पिरोया है। इस उपन्यास के पात्र जीवंत लगते हैं। एक बार इसे पढ़ना शुरू करने पर बीच में छोड़ कर उठ नहीं सकते। इस उपन्यास के पात्र आपको अपनी दुनिया में खींच लेते हैं। इस उपन्यास में गहराई, रोचकता और पठनीयता सभी कुछ है। भाषा सरल और सहज है। उपन्यास के कथानक में कहीं भी बिखराव नहीं है। इस उपन्यास में एक माँ कहती है- 'कुबेर का ख़ज़ाना नहीं है मेरे पास, जो हर वक़्त पैसे माँगते रहते हो।' माँ की इस डाँट से बालक धन्नू समझ नहीं पाता कि दस-बीस रुपयों में ख़ज़ाना कैसे आ जाता है? वह सोचता है कि यह ख़ज़ाना कहाँ है, जिसमें पैसे ही पैसे हैं, कभी ना ख़त्म होने वाले। इस उपन्यास को पढ़ते हुए इसके पात्रों के अंदर की छटपटाहट, उसके अंतर्मन की अकुलाहट को पाठक स्वयं अपने अंदर महसूस करने लगता है। डॉ. हंसा दीप एक सशक्त और दिलचस्प उपन्यास लिखने के लिए बधाई की पात्र हैं।

❑❑❑

# पुस्तक समीक्षा

# यायावर हैं, आवारा हैं, बंजारे हैं

**समीक्षक : पारुल सिंह**

**लेखक : पंकज सुबीर**

**प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर**

''यायावर हैं, आवारा हैं, बंजारे हैं'', ये किताब हाथ में लेते ही मुझे बहुत भा गई। सुंदर कवर, हल्का वज़न और गोल्डन स्याही से लिखा हुआ लेखक और किताब का नाम। क़िताब के पन्नों और स्याही की लिखावट की ख़ुशबू पाठक पर क्या प्रभाव छोड़ती है, यह हर पुस्तक प्रेमी समझ सकता है। किताब को पढ़ना उस पर लिखे हुए को ही पढ़ना नहीं होता पाठक के लिए। किताब को हाथों में थामना, खोलना उसकी ख़ुशबू में खो जाना एक पूरी प्रक्रिया होती है पढ़ने की। और उस पर किताब इतनी रोचक हो तो कहने ही क्या।

साहित्य और कला जुनून वालों का क्षेत्र है हर कलाकार, हर लेखक, भीतर ही भीतर एक यायावर कुछ आवारा सा घुमंतू बंजारा ही तो है। एक लेखक के मन में ये तीनों फक्कड़पन होने आवश्यक हैं। वह निजी ज़िंदगी में ऐसा कर पाए या नहीं, यह अलग विषय है। ''यायावर हैं, आवारा हैं, बंजारे हैं'', पंकज सुबीर के लेखन व साहित्य से जुड़े तीन विदेश यात्राओं और आयोजनों का संस्मरण है, जो उन्होंने क्रमश: 2013, 2014, 2015 में की हैं। इनमें पहली विदेश यात्रा लंदन की है, जो पंकज सुबीर ने अपनी कृति 'महुआ घटवारिन' के लिए प्रतिष्ठित इंदु शर्मा कथा सम्मान प्राप्त करने के लिए की थी। इस पहली यात्रा तथा उस यात्रा के द्वारा हुए अनुभवों को विदेश की धरती पर पहले क़दम के रूप में बहुत ख़ूबसूरती के साथ शब्द प्रदान किए हैं।

अपनी पहली विदेश यात्रा में लेखक इंदु शर्मा कथा सम्मान लेने लंदन पहुँचते हैं। वहाँ के उनके अनुभव, मन के भाव ऐसे लिखे गए हैं कि पाठक को लगेगा कि वह स्वयं भी पहली बार लंदन आया है और घूम रहा है। एक लेखक व व्यक्ति के तौर पर एक 'काश' आप कहीं-कहीं पा सकते हैं, पर पूरी किताब में कहीं भी लेखक अपने देश की तुलना उन देशों से कर अपने देश के लिए नकारात्मक नहीं होता है। जैसा कि इस तरह के संस्मरण में आम बात है। लेखक प्रगति को देख अपने यहाँ भी इस तरह की प्रगति के लिए लोगों पर दबाव नहीं डाल रहा है सिस्टम पर दबाव नहीं डाल रहा है, बल्कि स्वयं उस बर्ताव को सीख अपनी ज़िंदगी में उतारना चाहता है; और यही देश हित सोचने वाले को करना भी चाहिए, क्योंकि कहते भी हैं -चैरिटी घर से शुरू होती है।

सबसे अच्छी बात पंकज सुबीर ने एक यात्री और समय मिले तो पर्यटक के तौर पर यह किताब लिखी है। अपने लेखक होने को उन्होंने इन संस्मरणों और इसकी भाषा से दूर रखने की कोशिश की है। जिससे पाठक स्वयं देखता है जो वह पढ़ रहा है। कहीं भी भारी-भरकम आँकड़ों का, लम्बे-लम्बे स्थान वर्णन का प्रयोग नहीं किया गया है। उन्होंने सहज घटित हो रहे अपने अनुभव को पाठक बल्कि स्वयं के सामने रख दिया है। हर नए अनुभव से चौंकने, नई तरह की दैनिक जीवन शैली के विषय में जानने पर अपना पक्ष वैसा का वैसा ही सामने रख दिया है, जो उन्हें अनुभव किया। कुछ भी ऐसा नहीं है जो आपको बोर करे, या पन्ने पलटने पर मजबूर करे। क्योंकि ये केवल एक यात्रा संस्मरण नहीं है, इस किताब में विदेशी धरती के साथ-साथ हिंदी के बड़े लेखकों चित्रा मुद्गल, डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी, महेश कटारे, उषा प्रियंवदा आदि के साथ बिताए पलों का भी लेखक ने ब्यौरा दिया है। इसलिए यह पाठकों को बहुत रोचक लगेगा। पाठक आनंदित होंगे, अपने प्रिय लेखकों की निजी ज़िंदगी के विषय में जानकर। क्योंकि ये एक सहज जिज्ञासा होती है।

कोई लेखक अपने निजी जीवन में कितना विनम्र, सहज और सरल होता है, ये जानने और सीखने का मौका मिलेगा। जैसे लेखक ने अपने अग्रजों, और इस यात्रा में मिले हर व्यक्ति से कुछ न कुछ सीख कर झोली में समेट लिया। ऐसे ही कुछ अनुभवों का वर्णन लिखकर लेखक ने पाठकों के लिए छोड़ दिए हैं।

एक यायावर के तौर पर या एक बंजारे के तौर पर, एक घुमंतू के तौर पर अगर पंकज सुबीर इन यात्राओं को करते, तो नि:संदेह ही उनके अनुभव कुछ अलग होते। क्योंकि बड़ों के साथ और सानिंध्य में कुछ सम्मान और अनुशासन तो बना ही रहता है। जिन देशों की यात्रा उन्होंने की है, वहाँ की और हमारी अर्थ व्यवस्था में काफी अंतर है। जिसकी वजह से लेखक अपने प्रिय जनों के लिए उपहार खरीदने में जो गणनाएँ करता है, वह पाठक को उस परिस्थिति में भी हँसा देती हैं।

वहाँ की राजनैतिक या सामाजिक व्यवस्था के बारे में भी हमें जानने का अवसर मिलता है। ब्रिटेन संसद में जाने के अपने अनुभव से लेखक वहाँ और यहाँ के सांसदों का अंतर बताते हैं। वहीं संसद के एक सुरक्षा अधिकारी का हृदयस्पर्शी व्यवहार लेखक को छू जाता है। लेखक लिखता है कि, ''चेकिंग के बाद मैं अपना सामान

उठाकर कोट पहनकर चलने को होता हूँ कि एक बड़ा ऑफ़िसर मुझे पीछे से आवाज़ देकर रोकता है। मैं वहीं रुक जाता हूँ वह मेरे पास आता है, और मेरे कोट की कॉलर पीछे से ठीक करने लगता है, जो मुड़ी रह गई थी। कॉलर ठीक करके वह मुस्कुराहट के साथ मुझे जाने को कहता है। मैं हतप्रभ-सा धन्यवाद देकर आगे बढ़ जाता हूँ।''

इसी प्रकार किसी साहित्यिक आयोजन के अनुभव पर भी लिखा है, ''पहली बार एक सम्मान समारोह देख रहा हूँ जो पूरी तरह से लेखक और उसकी कृति पर केंद्रित है, पुरस्कृत कृति पर, ना की सम्मान और सम्मान करने वाली संस्था पर।''

कुछ चीज़ों में लेखक का भोलापन और सादगी सामने आती है। पूरे संस्मरण में कहीं भी किसी भी एक भी दिन का नाश्ता, दोपहर का खाना, रात का खाना लेखक लिखना नहीं भूला है। कितने शौक से और कितनी तबीयत से उन्होंने चीज़ें खाई हैं और चखी। बाहर जाकर घर का खाना नहीं माँगा। कहा कि मैं यहाँ आया हूँ तो तरह-तरह के खाने क्यूँ न आज़माऊँ। खाने के प्रति यह राग, यह आग्रह हमें कम दिखाई देता है। भोजन कराने का प्रेमी, और भोजन को उसी प्रेम से खाने वाले लोग सरल, मृदुल और विनम्र होते हैं। भोजन आपको लोगों के नज़दीक लेकर आता है। भोजन से प्यार करने का मतलब यह नहीं है कि आप ठूँस-ठूँस कर, पेट भर कर खाएँ। भोजन संस्कार की नींव में प्रेम होता है। हमारी भारतीय संस्कृति में भोजन प्रेम प्रदर्शन का साधन है।

लेखक नरम दिल होते ही हैं। जो भी कोई बौद्धिक व्यक्ति होगा वह प्रकृति के उतना ही नज़दीक होगा। वह प्रकृति को उतना ही सराहेगा और उसे प्रकृति हमेशा अपनी तरफ खींचती रहेगी। हर जगह पर हर देश में हर कहीं पर लेखक जब यह यात्राएँ कर रहा है तो वह वहाँ की प्रकृति से भी सबसे पहले जाकर मिलता है।

सबसे पहले वहाँ की प्राकृतिक छटा का आनंद लेखक लेता है। वनस्पतियों से पूछता है उनके नाम। जो पौधे हैं, जो पेड़ हैं उन सब के साथ सबसे पहले जाकर उस धरती के साथ जुड़ता है। उनके नाम जानने की और याद करने की कोशिश करता है। जैसे बता रहा है उन्हें, ''मैं बहुत दिनों बाद देखो आज तुम्हारे पास आ ही गया हूँ। मैं तुम्हें जानता हूँ, तुम मेरे देश में बस थोड़े से अलग रंग के हो, पर हो।''

हर एक दर्शनीय स्थल, पोस्टकार्ड शहर, पोस्टकार्ड जगहों में बहुत ज़्यादा रुचि नहीं है लेखक की, वह वहाँ के जनमानस को जानना चाहता है, पर उनका वर्णन बहुत सही ढंग से दिया है। और मौसम का वर्णन भी बहुत सहज ढंग से किया है।

शब्दों का अनुवाद बहुत ही रोचक है जैसे एक जगह नायग्रा फॉल्स देखने जब लेखक जाता है तो वह वहाँ लिखता है कि ''ब्राइडल वेल फॉल'', यानी ''दुल्हन का घूँघट'' ये हिंदी अनुवाद है।

इस तरीके से आनंद लेते हुए आदतन लेखक कुछ ऐसी बातें भी कह गए हैं जिनके लिए वह जाने जाते हैं। जीवनोपयोगी सूक्तियाँ। जैसा कि एक जगह वे लिखते हैं, ''विमान रनवे पर दौड़ रहा है, दौड़ रहा है ऊपर उठने के लिए। ऊपर उठने के लिए दौड़ना ही पड़ता है। जब आप अपनी सबसे तेज़ गति से दौड़ते हैं तभी ऊपर उठ पाते हैं।'' कितना सुंदर जीवन दर्शन एक साधारण से विमान को माध्यम बना कर लेखक ने दे दिया है।

एक सामान्य से सामाजिक शिष्टाचार की घटना पर लेखक इस प्रकार लिखते हैं, ''एक घर में कोई कुत्ता बहुत ज़ोर से भोंक रहा है, उसका मालिक शर्मिंदा होते हुए हर आने-जाने वाले को सॉरी कह रहा है। यह सिविक सेंस भारत ले जाने की बहुत इच्छा हो रही है।'' कोई शहर आपने कितनी बार भी देख रखा हो, उसका भी यात्रा संस्मरण अगर आप पढ़ेंगे, तो भी आपको कई नई चीज़ उसमें मिल जाएगी।

कुछ किताबें एक ही बैठक में अपने आप को पढ़वा लेती हैं, मेरे लिए यह वही किताब है। यह एक बहुत सुंदर से मुखपृष्ठ पर सुनहरी स्याही से लिखे हुए शीर्षक और लेखक के नाम वाली ख़ुशबूदार किताब है। इसमें रोचकता की ख़ुशबू तो है ही पर इस के पन्ने सच में महक रहे हैं।

❐❐❐

डब्ल्यू-903, आम्रपाली ज़ोडिएक, सेक्टर 120, नोएडा, उप्र 201301
मोबाइल : 9871761845,
ईमेल : psingh0888@gmail.com

# नई पुस्तक

## कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न, कारण और निवारण

**समीक्षक : आकाश माथुर**
**लेखक: शहरयार अमजद ख़ान**
**प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर**

'कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न, कारण और निवारण' शहरयार अमजद ख़ान की पहली ही पुस्तक है। यह पुस्तक एक बहुत महत्त्वपूर्ण विषय पर बहुत विस्तार से जानकारी प्रदान करते हुए लिखी गई है। इस पुस्तक में उन सारे क़ानूनों की जानकारियाँ हैं, जो समय-समय पर कामकाजी महिलाओं की सुरक्षा के लिए बनाए गए, बल्कि उनका उपयोग कैसे किया जाए, इसकी भी जानकारी उदाहरणों के साथ प्रदान की गई है। चूँकि लेखक स्वयं एक वकील हैं, इसलिए इस पुस्तक की विश्वसनीयता और अधिक बढ़ जाती है। हिन्दी में इस प्रकार की पुस्तकों का अभाव रहा है, जिनमें इस प्रकार की जानकारियाँ हों। इस पुस्तक को पढ़ते हुए महसूस होता है कि इस पुस्तक को हर उस निजी या सरकारी कार्यालय में होना चाहिए जहाँ पर महिलाएँ कार्य करती हैं। लेखक ने बहुत शोध के साथ समय-समय पर क़ानून में आए परिवर्तन की बात की है। आँकड़े प्रस्तुत किए हैं। और यह जानकारी तो विस्तार से है कि पीड़ित महिला को क़ानून की मदद किस प्रकार लेना चाहिए।

❐❐❐

# पुस्तक समीक्षा

## सच कुछ और था

**समीक्षक : डॉ. अशोक प्रियदर्शी**

**लेखक : सुधा ओम ढींगरा**

**प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर**

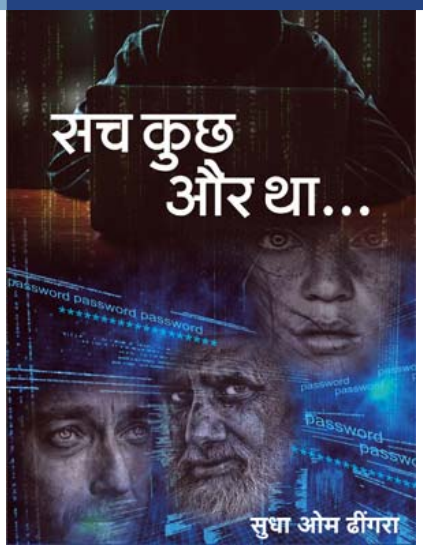


सुधा ओम ढींगरा की ग्यारह कहानियाँ वाले संकलन 'सच कुछ और था' पढ़ा। सुधा जी का एक कहानी-संकलन इसके पहले भी पढ़ा था, दूर परदेस में बसे होकर भी, सारी सुख-सुविधाओं में संपन्न होने के बावजूद अपने देश, अपने गाँव, अपने पूर्व परिवेश की भली-बुरी यादों को सहेजती कहानियाँ- जैसी कि उनकी अनुगूँज मेरे कानों में बनी बची रह गई है। और अब यह संकलन। अमेरिकी जीवन कौलिडोस्पीक, ज़ाहिर इन चित्रों को पुन: उकेरते हुए जब-तब पृष्ठभूमि के रूप में अपना घर-गाँव भी आ जाता है।

सुधा जी प्राय: कहानियाँ सिरजते समय अतिरिक्त विन्यास का सहारा नहीं लेतीं मानव-मन को पकड़ती हैं। इन्हें 'स्पेड' को 'स्पेड' कहना आता है, इसीलिए अपने मूल देश के बर-अक्स नए देश-परदेस में जो श्ताघ्य है उसे सराहती हैं ये और जो विसंगतियाँ हैं उनको बिना लाग-लपेट के ग़लत कहने का साहस रखती हैं। महिला हैं, तो नारी मनोविज्ञान की बेहतर समझ होनी ही ठहरी, उचित ही है कि वे औरत के दर्द को बारग स्वर देती हैं, गो किसी ऐक्टिविस्ट की तरह वे महिला-मुक्ति के बैनर-पोस्टर नहीं उठातीं। चुप-चुप, हौले-हौले वह सब कह जाती हैं जो प्राय: पाठकों के मन को मथता है और आँखों को नम करता है। यह भी ये फ़क़त प्रश्न ही नहीं उठातीं, अपने ढंग से उनके समाधान के संकेत भी देती हैं। ये कहानियाँ 'प्रॉक्सि' से पढ़े जाने के लिए नहीं हैं, सो कहानियाँ मैं फिर से सुनाऊँगा नहीं, सिर्फ़ यह देखने-दिखाने की कोशिश करूँगा कि आख़िर ये कहानियाँ कह क्या रही हैं। ओ.के.?

अरे हाँ, ऐसा शीर्षक लगा दिया है तो उसका औचित्य तो प्रतिपादित कर दूँ। मेरी विनम्र दृष्टि में, लेखक, मुख्यत: कथाकार जब सृजनरत होता है तो वह अपनी काया से निकलकर पर-काया में प्रवेश कर जाता है। स्व उसको तब भूल जाता है, स्मृति उस पर सी ही रह जाती है जिसकी छवि वह खड़ा कर रहा है। तन से परे, रचनाकार का मन वनवासी-सा हो जाता है। वनवासी राम को वनवासी ऋषि-मुनियों की रक्षा की चिन्ता सताती रहती है, अयोध्या उस क्षण विस्मृत होता है। -तो अब सीधे-सीधे संकलन की कहानियों की बात।

पहली ही कहानी 'अनुगूँज' हमारे ज़ेहन में गूँजती रहती है। पुरुष प्रेमांध हो जाए, यहाँ तक भी समझ में आता है, किन्तु वह इतना क्रूर और हिंसक कैसे हो जाता है? किन्तु एक महिला तो है जो अपनी जेठानी की मौत नहीं मरेगी। पम्मी के झूठ को ठेंगा दिखा कर जिस की हो लेती है। प्रेम की दो तसवीरें एक साथ! मनप्रीत का चित्र गढ़ने में सुधा जी का कौशल मन को छूता है।

'उसकी खुशबू' पर कमल किशोर गोयनका जी की प्रतिक्रिया के साथ हूँ मैं। जूली हिंसक क्यों हो गई है? इस बारीक अपराध-मनोविज्ञान को सुधा जी ने पकड़ा है। जूली के शरीर से निकलती तीखी खुशबू का तीखापन लाक्षणिक है। कहीं पढ़ा था, शायद प्रेमचंद को, स्त्री देवी है किन्तु.....।

प्रयोग का आकर्षण अपनी जगह, यह कहानी झूठे आकर्षण, आरस प्रदर्शन के खोखलेपन, जो है और जो आपको चाहिए उससे बेख़बरी और व्यर्थ के अहं का टकाराव और अंतत: लिंडा का घुटकर आत्मघात कर लेना। आश्चर्य होता है, मन के किन-किन अतल कोनों की टोह ले लेने की सामर्थ्य रखती हैं सुधा जी! यह भी कि दु:ख बाँटने से हल्का होता है, काश! लिंडा ने अपना दर्द शेयर किया होता। अमेरिकी पृष्ठभूमि में रचित नकारात्मक-सकारात्मक प्रेम के ये रंग स्तब्ध कर देते हैं, चौंकाते तो हैं ही।

'पासवर्ड' फिर से अमेरिकी परिवेश में बनी-बुनी कहानी है। कहानी को समझने के लिए सुधा जी की यह पंक्ति पढ़े- 'साकेत ने तो अपनी ज़िन्दगी का पासवर्ड तन्वी को दे दिया था पर तन्वी के जीवन का पासवर्ड कहीं हो गया था।' हिन्दी में एक कहावत चलती है- तुम डाल-डाल, हम पात-पात! तन्वी अपने प्रेमी मनु के साथ डाल-डाल फुदक रही है और साकेत पात-पात पकड़ता हुआ उसकी शातिराना चाल को नाकाम कर देता है। वीज़ा, ग्रीन कार्ड, पासवर्ड की अहमियत अमेरिका जाकर ही समझी जा सकती हैं। कहानी किस क़दर थ्रिलर का आनंद देती है।

'तलाश जारी है' शीर्षक कहानी अत्यंत सकारात्मक सोच वाली है। अपनी कमियों को देखने के लिए आंतरिक साहस की दरकार होती है। अमेरिकी में इन दिनों भारतीय प्रवासियों को लेकर जो अनमनेपन का भाव है उसके अन्य कारण जो हों, एक कारण संभवत: यह भी है कि वहाँ के नियम, कानून-क़ायदे को ठेंगा दिखलाने की होशियारी दिखलाते हैं। यों भी कहते हैं कि जब आप रोम में हैं, तो रोमनों की तरह बरतिए। यह महत्त्वपूर्ण है कि सकारात्मक विचारों से हमें सावधान करती इस कहानी का

कहानीपन बचा रहता है और रोचकता भी बनी रहती है।

हमारे यहाँ शास्त्रों में नियोग-पद्धति की चर्चा है। 'विकल्प' में वैसे ही विकल्प की बात है? कहते हैं, अपने गर्भ से संतान को जन्म देकर औरत पूरी होती है। ठीक है कि 'आर्टिफिशियल इन्सेपिनेशन' जैसी तरकीबें भी चिकित्सा विज्ञान ने खोज निकाली हैं, किन्तु 'डोनर' के स्पर्म में वह ताक़त तो हो! फिर? नियोग जैसी तटस्थता के साथ देवर के साथ सहवास करे कोई औरत तो? तो संशय तो स्वाभाविक है कि औरत अपने तन की भूख मिटा रही है कि माँ बन पाने की विकल्पता में 'निगेटिविटि' के साथ यह विकल्प चुना है? और देवर की अमेरिकी मँगेतर को आपत्ति न हो, तो किसी और को आपत्ति क्यों हो? सुधा जी ने इस साहसिक कहानी के साथ एक प्रश्न भी उछाल दिया है जैसे। इस साहसिक, विरल कथा-प्रसंग वाली कहानी के लिए लेखिका को बधाई तो दी ही जानी चाहिए।

और अब 'विष-बीज'। मंटो की कहानी 'ठंडा गोश्त' अभी भी ज़ेहन में है। जिस नारी-शरीर को भोगने की विकलता हो और सरसा लगे कि यह शरीर तो निष्प्राण है, मुर्दा, तो सारी उत्तेजना क्षण में काफूर हो जानी ठहरी। और यदि वह समझ पड़ जाए कि सामने माँ पड़ी है, माँ जिसे आक्रांता चीन्हता नहीं, किन्तु संशय हो जाने के बाद? कुछ कड़वे उपचार भी इस कहानी में संकेलित हैं। ग़नीमत है, 'क्रेज़ी मैन' स्वयं अंग-भंग-दंड माँग रहा है। इस विरस प्रक्षंग वाली मनोवैज्ञानिक कहानी के लिए फिर से सुधा जी को बधाई।

'काश! ऐसा होता' बुढ़ापे में अकेलेपन से बचने की कोशिश की कथा। इस वयस में शरीर का ताप नहीं होता, एकाकीपन का संताप होता है। विधवा मिसेज़ हाइडी आंटी विधुर जॉज को जीवन-साथ बना लेती है वार्द्धक्य के अकेलेपन से मुक्ति, भारत में ऐसा क्यों नहीं होता, तब और भी जब विधवा वृद्धा हो! पुरुष को तो खैर छूट है! शैली में कही गई कहानी बाँधती है, मन को भिगोती है।

और संकलन की 10वीं कहानी- 'और आँसू टपकते रहे...'। ''अगले जनम बिटिया न किए जाने की प्रार्थना प्रभु से क्यों करती है महिला, वह भी प्रबुद्ध महिला? औरत को कमज़ोर बनाने में पुरुष का ही हाथ है। गो मिसेज़ सोनी भी औरत ही हैं, लेकिन देखे तो उनके असंगत चरित्र के पीछे भी पुरुष ही है। औरत की जिस्मानी ज़रूरतें भी होती हैं, किन्तु सरेआम बिछ जाना उसकी मूल प्रकृति में नहीं होता। और कहते है कि औरत की दुश्मन औरत ही होती है। औरतें मुग़ल-काल में अपनी आबरू बचाने को जौहर का सहारा लेती थी। कहानी की लड़की ने मिनर्वा होटल की तीसरी मंज़िल से नीचे छलांग लगा दी। कोमल का अनिर्णय भी लड़की की आत्महत्या का कारण हो सकता है। यह कहानी आँखें गीली करती है और औरत की दो तलवीरें आजू-बाजू रखकर हमें झिंझोड़ती है।'

अंत में 'बेघर सच'। लड़की का घर उसका मायका नहीं होता! ससुराल में भी उसे हाथ-पाँव फैलाने की जगह न मिले तो? तो? यदि औरत अपने पैरों पर खड़ी है, तो क्यों नहीं वह साहसिक निर्णय ले, अपना अलग घोंसला बनाए और अपने सपनों का संसार बसाए। यह एक संकल्प है तो, किन्तु कठिन विकल्प है। उचित तो यह है लड़की को मायके और ससुराल, दोनों जगह स्पेस मिले। उसका अधिकार दोनों जगहों में है, नहीं है तो होना चाहिए।

दुहराऊँ, सुधी जी जिस विषय को कहानी में उठाती हैं उसे पूरी संजीदगी से बरतती है। पंजाबी छौंक वाली इनकी हिन्दी प्यारी लगती है, किन्तु खालिस पंजाबी शब्दों का अर्थ अनुमान से ही हिन्दी भाषी लगा पाएँगे। मसलन 'टकोर करना' का अर्थ मुझको नहीं पता।

पर सुधा जी को पढ़ना सुख देता है हाँ, 'कहानियों पर कुछ प्रतिक्रियाएँ' अनुक्रम में 12वें नंबर पर है, तो भ्रम होता है, यह भी किसी कहानी का शीर्षक है। इसे 'परिशिष्ट' में ..... जा सकता था। इतना और कि जिनकी कहानियों पर सूर्यबाला जी और डॉ. कमल किशोर गोयनका की प्रीत हो उन्हें किसी और प्रमाण पत्र की ज़रूरत ही क्या है।

❐❐❐

एम. आई. जी. 82, सहजानंद चौक
हरमू हाउसिंग कॉलोनी, राँची 834002
मोबाइल- 9430145930

# नई पुस्तक

## भट्ठी में पौधा

**लेखक: कमल चोपड़ा**

**समीक्षक : सुरेश चन्द्र शर्मा**

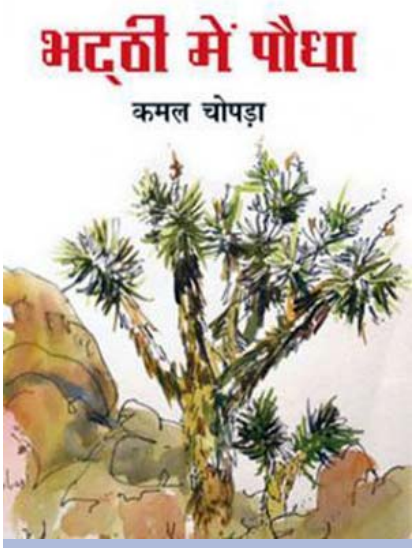


'भट्ठी में पौधा' कथाकार कमल चोपड़ा का सद्य: प्रकाशित कहानी संग्रह है। कमल चोपड़ा भारत के उन गरीब, दु:खी, भूखे, नंगे, शोषित, दलित, असहाय लोगों के जीवन को चित्रित करने वाले कथाकार हैं। यदि उन्हें प्रेम चंद, रेणु, शिवमूर्ति की श्रेणी में रखा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इनकी कहानियों में अत्यन्त निम्न स्तर के लोगों के जीवन की समस्याएँ, अभाव, छटपटाहट, बेबसी और लाचारी का यर्थाथ चित्रण है। इस चित्रण में उनकी गहन सामाजिक सरोकारों एवं संवेदनाओं की भरपूर व्याप्ति है। इस कथन की पुष्टि के लिये उनका यह कहानी संग्रह ''भट्ठी में पौधा'' पर्याप्त है।

समीक्ष्य कहानी संग्रह 'भट्टी में पौधा' में कुल सोलह कहानियाँ संकलित हैं। इस संग्रह की कुछ कहानियों की नायिकाएँ अपनी बेबसी, लाचारी, शोषण, लांछना की अन्तहीन पीड़ा झेलती हुई आज के पुरुष-समाज को चुनौती देती हैं। कुछ अन्य कहानियों में क्रूर पुरुष-समाज द्वारा उत्पन्न की गई अत्यन्त बोझिल एवं कष्टमयी स्थितियों में घुट-घुटकर मरने के अतिरिक्त उनके पास कोई विकल्प नहीं रहता है।

❐❐❐

# पुस्तक समीक्षा

## तंत्र कथा

**समीक्षक : अरुण अर्णव खरे**

**लेखक : कुमार सुरेश**

**प्रकाशक : लोकोदय प्रकाशन**

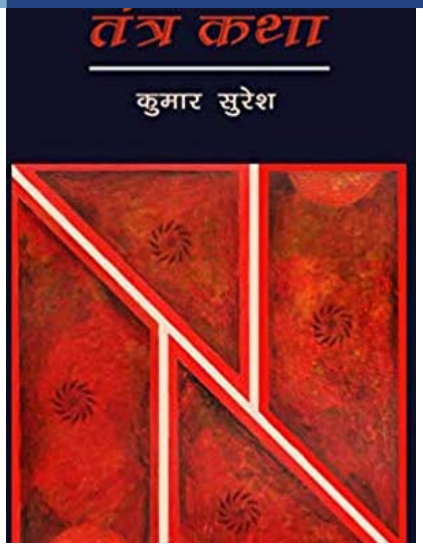




साहित्य जगत् में कुमार सुरेश का नाम एक कवि के रूप में किसी परिचय का मोहताज नहीं है लेकिन जब उनका पहला व्यंग्य उपन्यास प्रकाशित हुआ तो बहुतों को आश्चर्य हुआ। कारण... एक तो व्यंग्य उपन्यास बहुत कम लिखे गए हैं और दूसरा इनको लिखना तथा लगातार व्यंग्य को साधते चलना आसान काम नहीं है। यही कारण है कि बहुत से स्थापित व्यंग्यकारों ने भी व्यंग्य उपन्यास नहीं लिखे हैं। जब किसी कवि का व्यंग्य उपन्यास सामने आए, तो आश्चर्य होना स्वाभाविक है और उसके सामने कठिन-कसौटी पर कसे जाने की प्रक्रिया से गुज़र कर खरा होकर निकलने की चुनौती भी है।

'तन्त्र कथा' की कथावस्तु एक सरकारी कार्यालय के काम करने के तौर-तरीकों पर केंद्रित है; जिसमें भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, बेइमानी, कामचोरी, चापलूसी, शोषण, पद-लोलुपता और मंत्री-विधायकों के अनैतिक हस्तक्षेप सरीखी तमाम विसंगतियों की व्यापक खोज-ख़बर ली गई है। 'तन्त्र कथा' में एक शासकीय विभाग की कार्य पद्धति की परत दर परत पड़ताल करने के साथ ही ज़िले के कलेक्टर और एसडीएम कार्यालयों के कार्य निष्पादन के तरीकों में आ गई सड़न पर प्रकाश डाला गया है। सरकारी तंत्र पर लिखे गए दूसरे उपन्यासों से 'तंत्र कथा' इस मामले में अलग है कि इसमें एक कार्यालय, ज़िला प्रशासन तथा विभाग के मुख्यालय को विषय वस्तु बनाते हुए अधिकारियों तथा कर्मचारियों के आचार, विचार, व्यवहार तथा कार्य की परिस्थितियों पर गहरी व्यंग्यात्मक नज़र डाली गई है।

164 पृष्ठ के इस उपन्यास की कहानी के केन्द्र में उपायुक्त कोमल जोशी हैं। मुख्यालय तक गहरी पैठ है उनकी, ज़िले के कलेक्टर के साथ उठना-बैठना है और प्रताप सिंह भूतपूर्व एमएलए के मुख्य सलाहकार हैं। एक रखैल भी है उनकी। वह ऑफिस के नीरस कामों की जगह राजनीतिक जमावट पर अधिक ध्यान लगाते हैं, इसीलिए एक कमाऊ जगह पर तीन सालों से जमे हुए हैं। अधिक से अधिक धन कमाना उनका उद्देश्य है, इसके पीछे उनका बचपन तंगहाली में गुज़रना मुख्य वजह है। उनके पिता शिक्षक थे। शिक्षक पिता की लाचारी पर तंज़ कसते हुए सुरेश जी लिखते हैं - ''उनको इतनी तनख़्वाह ज़रूर मिलती थी कि जोशी जी और उनके तीन भाई बहिन ठीक से जी तो नहीं पाए लेकिन मरे भी नहीं।''

उपन्यास की कहानी में प्रवाह के साथ-साथ पठनीयता और रोचकता अंत तक बनी रहती है। अनेक घटनाओं के माध्यम से सुरेश जी ने कथानक को सजीव बनाए रखा है। मुख्यालय में पदस्थ अपर उपायुक्त मनमोहन भसीन जब दौरे पर आते हैं और पूछते हैं - ''सारी तैयारी है न'' तो प्रतिउत्तर में जोशी जी कहते हैं - ''सारे रजिस्टर तैयार हैं। निर्देश अनुसार टीप भी टाइप करा कर रखी है। आप उस पर एक नज़र डाल लीजिए बस।'' दोनों के बीच की इस बातचीत से सरकारी दौरों की निरर्थकता ज़ाहिर होती है - सब कुछ पूर्व नियोजित है। हद तो तब हो जाती है जब भसीन जी देखने लायक स्थानों के बारे में पूछते हैं और जोशी जी कहते हैं - ''यहाँ से बीस किलोमीटर दूर देवी जी का प्रसिद्ध मन्दिर है। सबसे पहले वहाँ चलते हैं। रास्ते में गुप्ता का रेमण्ड का शोरूम है.... कल तक सूट सिल भी जाएगा।'' भसीन जोशी के मैनेजमेन्ट की तारीफ करते हैं। वैसे भसीन जी को भूलने की भी बीमारी है। जब वह दौरों पर जाते हैं तो विशेष रूप से इनरवियर, टॉवेल और टूथब्रश भूल ही जाते हैं। चश्मा भूल जाते हैं... कोट भूल जाते हैं... घर का बिजली बिल भरना भूल जाते हैं। ये कहने की ज़रूरत नहीं कि उनकी यह भूल मातहत अधिकारियों की जेब हल्की करती रहती है।

कहानी में एक पात्र सहायक आयुक्त मित्रा जी हैं। ऑफ़िसों की शास्वत परम्परानुसार उपायुक्त के साथ उनके संबंध सदा तनावग्रस्त लेकिन नियंत्रण में रहते थे। एक अन्य महत्त्वपूर्ण पात्र अत्रे बाबू हैं जो ऑफ़िस टाइम में कुछ काम नहीं करते थे लेकिन देर रात तक रुक कर काम निपटाते थे, जिससे उनकी छवि बहुत काम करनेवाले की बनी हुई थी। वे उपायुक्त जोशी और उन लोगों के बीच की कड़ी भी थे जो काम निकलवाने के लिए कुछ धन समर्पित करना चाहते थे।

कहानी कुछ और पात्रों मसलन एसडीएम तोमर, मिस रागिनी, दीपक आहूजा, विनय प्रकाश, माथुर, कामता प्रसाद आदि और घटनाओं के सहारे आगे बढ़ती है। अन्त आते-आते जोशी के लिए स्थितियाँ कठिन होती जाती हैं, इतनी कठिन कि उनके विरोधियों ने जोशी हटाओ समिति बना ली और उनको निलम्बित करवा कर ही दम लिया। निलम्बन अवधि में जोशी जी को मुख्यालय में अटैच कर दिया गया। इसके बाद उनकी मुसीबतें बढ़ती ही चली गईं।

उनके सरपरस्त प्रताप सिंह चुनाव हार गए। सरकार बदल गई। कार्यालय में जोशी जी का रुतबा जाता रहा। फिर एक दिन निलम्बित रहते हुए जोशी जी रिटायर हो गए। किसी भी पुराने साथी कर्मचारी ने उन्हें विदा करने बाहर तक आने की ज़रूरत नहीं समझी। चूँकि जोशी जी निलम्बित रहते हुए रिटायर हुए थे, अतएव उनकी ग्रेच्यूटी सहित अन्य लाभ भी रुक गए; केवल आंशिक पेंशन से ही उन्हें अब जीवन यापन करना था। जोशी जी अपने केस के सिलसिले में कोर्ट और ऑफिस के चक्कर लगाते रहते हैं लेकिन कोई उनकी मदद के लिए आगे नहीं आता। उल्टा उन्हें ये सुनना पड़ता है कि ''रिटायर होने के बाद अफ़सर और चपरासी एक समान हो जाते हैं। फ्यूज़ बल्ब सभी एक से, चाहे सौ वाट का रहा हो या ज़ीरो का।'' धीरे-धीरे जोशी जी को बीमारियाँ घेरने लगती हैं।

पुस्तक का अन्त लेखक ने अत्यन्त मार्मिकता के साथ किया है जब वह लिखते हैं कि- ''रिटायरमेंट के बाद जोशी जी वापस समाज में समायोजित होने में असफल रहे। अकेलेपन और उपेक्षा ने उन्हें ऐसा तोड़ा कि धीरे-धीरे उनका मानसिक संतुलन कमज़ोर पड़ गया। आख़िरी समाचार मिलने तक उनके विरुद्ध चल रहे आपराधिक प्रकरण ख़त्म नहीं हो पाए थे। एक दिन किसी ने विभाग के मुख्यालय में संक्षिप्त में यह ख़बर बताई- ''आज सुबह जोशी जी नहीं रहे हैं। सबके पास अपने ज़रूरी काम थे। किसी ने जोशी जी को अन्तिम विदाई देने के लिए जाने की इच्छा प्रकट नहीं की। मुख्यालय में न कुछ देर के लिए काम रोका गया, न दो मिनट का मौन ही धारण किया गया।''

समग्र रूप में लेखक ने सरकारी नौकरी की विडम्बनाओं का जीवन्त खाका खींचा है। कुछ सहायक पात्रों के चरित्र चित्रण को उभारने की ज़रूरत थी लेकिन इससे उपन्यास की पठनीयता में कमी नहीं आती। भाषा सरस और सम्वाद प्रभावी हैं। प्रसंगवक्रता में लेखकीय कौशल का कमाल देखने को मिलता है।

❐❐❐

डी-1/35 दानिश नगर, होशंगबाद रोड,
भोपाल (म0प्र0) 462026

# पुस्तक चर्चा

## उम्र जितना लम्बा प्यार

**समीक्षक : सुषमा मुनीन्द्र**
**लेखक: सपना सिंह**
**प्रकाशक: अनन्य प्रकाशन**

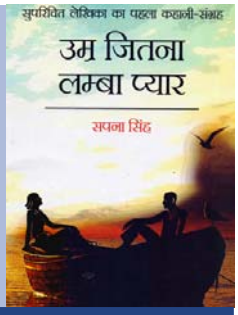


'उम्र जितना लम्बा प्यार' सपना सिंह का पहला कहानी संग्रह है। संग्रह पहला है पर कहानियाँ परिपक्व हैं। अधिकांश कहानियाँ भिन्न आयु वर्ग के दाम्पत्य पर रची-बुनी गई हैं। आदि काल से उत्तर आधुनिक काल तक पहुँचते हुए दाम्पत्य ने जो सकारात्मक अथवा नकारात्मक बदलाव देखे हैं, बदलावों ने पति-पत्नी की स्थिति-परिस्थिति-मन:स्थिति पर जो असर डाला है, उसकी प्रचुर जानकारी देते हुए सपना सिंह ने सम्यक चित्रण किया है। स्त्री सम्पन्न-विपन्न किसी भी पृष्ठभूमि से हो उसे स्त्री जनित समस्याओं का सामना तो करना ही पड़ता है, इधर वे समस्याएँ समक्ष आती जा रही हैं जो ख़्यालों में नहीं थीं। लिव इन रिलेशनशिप, अनवेड मदर, सिंगल पेरेन्सी, प्री मैरीटल अफेयर, एक्स्ट्रा मैरीटल अफेयर जैसी वर्जित स्थितियों के कारण दाम्पत्य जटिल होता जा रहा है। एक छत के नीचे पति-पत्नी अपने दो पृथक संसार बसाते जा रहे हैं। उनकी, उनकी संतति की जीवन पद्धति, कार्य प्रणाली अस्वाभाविक बल्कि कृत्रिम होती जा रही है। वो उसका चेहरा, बू, जाएगी कहाँ, उम्र जितना लम्बा प्यार, प्राप्ति, कम्फ़र्ट ज़ोन के बाहर, समराग, साँच कि झूठ, एक दिन, कमिटमेंट, आदि कहानियाँ इसी बनते-बिगड़ते दाम्पत्य का मानचित्र बनाती हैं। 'शादी दोनों पक्षों से सेक्रीफाइज़' माँगती है। बहुत कुछ आपको ऐसा करना होता है, जो आपके व्यक्तित्व का जस्ट उल्टा होता है। आप अपने मन के विरुद्ध बहुत कुछ करने को बाध्य होते हैं क्योंकि आप किसी की परवाह करें, न करें, बच्चों की करनी पड़ती है। अगर आप यह नहीं कर सकते तो शादी करने का आपको हक नहीं है।' (कहानी - उम्र जितना लम्बा प्यार)। जैसी पंक्तियों को अब ये पंक्तियाँ रिप्लेस करने लगी हैं- 'मैंने उसे तीसरी या चौथी मुलाकात में जता दिया था मैं उससे (मित्र पत्नी) प्यार करता हूँ और उसने (मित्र पत्नी) बिना कोई आचर्य व्यक्त किए बड़ी सहजता से इसे स्वीकार कर लिया था।' (कहानी - वो उसका चेहरा)। इसे असाधारण व्यवहार मानें पर स्त्री और पुरुष के स्वभाव में एक किस्म की निर्भीकता आती जा रही है। तभी तो 'बू' का दुश्चरित्र पति, पत्नी की अनुपस्थिति का लाभ ले घरेलू नौकरानी से संबंध बनाता है। डर, परी, गणित आदि कहानियाँ दाम्पत्य से हट कर हैं। 'डर' महत्त्वपूर्ण कहानी है। बलात्कार ऐसा भय है जो जीवन भर स्त्रियों के साथ चलता है। वे खुद को पूरी तरह सुरक्षित कहीं नहीं पातीं। आत्मरक्षा के लिए लड़कियाँ बस्ते में मिर्च पाउडर, फल काटने वाले चाकू जैसे साधन रखने लगी हैं। 'परी' कहानी बचपन बचाओ अभियान की पोल खोलती है। भव्य वैवाहिक समारोह में सौ रुपया पारिश्रमिक पर अभावग्रस्त बच्ची 'परी' वाली धजा बनाए ऊँचे स्टूल पर चढ़ कर आगन्तुकों पर पुष्प वर्षा कर रही है। माहौल में विलासिता की प्रचुरता है पर भूखी बच्ची की ओर किसी का ध्यान नहीं है। कुल मिलाकर ज़रूर कहूँगी संग्रह की कहानियों में ऐसी सहजता, अनवरत विकास है कि लक्ष्य तक पहुँचते हुए कहानियाँ गति नहीं खोतीं। भारी-भरकम पैंतरेबाज़ी नहीं है लेकिन सपना ने साधारणतम स्थितियों को भी अलग अंदाज़ में प्रस्तुत किया है। पात्रों के अनुरूप सहज, सरल, आत्मीय भाषा अच्छी लगती है।

❐❐❐

द्वारा श्री एम. के. मिश्र, जीवन विहार अपार्टमेन्ट्स, द्वितीय तल, फ्लैट नं0 7, महेवरी स्वीट के पीछे, रीवा रोड, सतना (म0प्र0)-485001
मोबाइल : 07898245549

# पुस्तक समीक्षा

## कछु अकथ कहानी

**समीक्षक : दीपक गिरकर**

**लेखक : कविता वर्मा**

**प्रकाशक : कलमकार मंच**

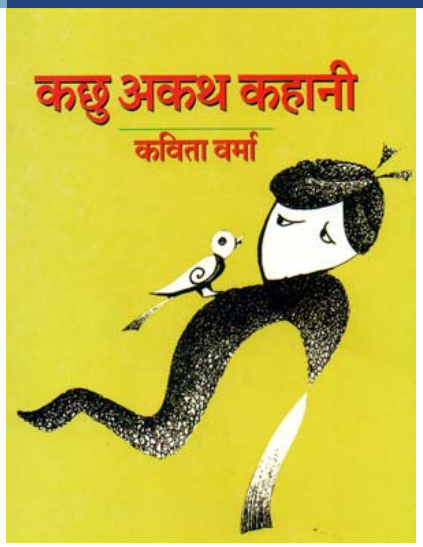




'कछु अकथ कहानी' कविता वर्मा का दूसरा कहानी संग्रह है। कविता वर्मा का उपन्यास 'छूटी गलियाँ' भी काफी चर्चित रहा था। इनके पहले कहानी संग्रह 'परछाँइयों के उजाले' को सरोजिनी कुलश्रेष्ठ कहानी संग्रह का प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था। कविता वर्मा के लेखन का सफ़र बहुत लंबा है। इनकी रचनाएँ निरंतर देश की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। कविता वर्मा ने इस संग्रह की कहानियों में स्त्री, बूढ़ी बेसहारा औरतें, बेबस बुज़ुर्ग, लाचार और बेबस मजदूर, आम आदमी इत्यादि के मन की अनकही बातों को, उनके जीवन के संघर्ष को और उनके सवालों को रेखांकित किया हैं। इस संग्रह की कहानियाँ जिंदगी की हक़ीक़त से रू-ब-रू करवाती हैं। मन की अनकही उथल-पुथल को शब्दों के धागों में सुंदरता से पिरोने में लेखिका सफल रही है।

कविता जी का कथा परिवेश जीवन की मुख्यधारा से उपजता है और उनके पात्र समाज के हर वर्ग से उठ कर सामने आते हैं। इस संग्रह की कहानियाँ और कहानियों के चरित्र धीमे और संजीदा अंदाज़ में पाठक के भीतर उतरते चले जाते हैं। इनकी कहानियाँ पाठकों के भीतर नए चिंतन, नई दृष्टि की चमक पैदा करती हैं। इस कहानी संग्रह की भूमिका बहुत ही सारगर्भित रूप से कथाकार मनीष वैद्य ने लिखी है।

लेखिका अपने आसपास के परिवेश से चरित्र खोजती है। कहानियों के प्रत्येक पात्र की अपनी चारित्रिक विशेषता है, अपना परिवेश है जिसे लेखिका ने सफलतापूर्वक निरूपित किया है। कविता वर्मा एक ऐसी कथाकार हैं, जो मानवीय स्थितियों और सम्बन्धों को यथार्थ की कलम से उकेरती हैं और वे भावनाओं को गढ़ना जानती हैं। लेखिका के पास गहरी मनोवैज्ञानिक पकड़ है। इनकी कहानियों की कथा-वस्तु कल्पित नहीं है, संग्रह की कहानियाँ सचेत और जीवंत कथाकार की बानगी है और साथ ही मानवीय संवेदना से लबरेज हैं। इस संग्रह में संकलित कहानियाँ महिलाओं तथा समाज के ऐसे लोग जो हमारे साथ रहकर भी हाशिये पर खड़े हैं, में जागरूकता, अपने अधिकारों के प्रति सजगता आदि को रेखांकित कराती हैं और उन्हें सशक्त बनाती हैं। इनकी कथाओं के महिला पात्र पुरुष के मन की गति को आसानी से समझ जाती है।

कविता वर्मा के नारी पात्र कमज़ोर नहीं हैं, वे समस्याओं का डटकर मुकाबला करती हैं। कहानियों के तेवर अपने समय और समाज को लगातार कठघरे में खड़ा करते हैं। इस कहानी संग्रह में छोटी-बड़ी 15 कहानियाँ हैं। ये जीवन के 15 रंग हैं। कविता वर्मा की कहानियाँ आधुनिक कहानियाँ हैं। इस कहानी संग्रह की कहानियों में महिलाओं का स्वतंत्र अस्तित्व, अपने दुखों को भूलकर खुद को उबार लेने वाली नारी, अपनी दुनिया को पोटली में समेटती औरत, शोर शराबे में शांति तलाशते बुज़ुर्ग, आम आदमी का आत्मसंघर्ष, पिछड़े हुए आदिवासी, अनपढ़ लोगों का खरापन, पति-पत्नी के बीच आपसी विश्वास, अपमान, बदला जैसे शब्दों की गंध को महसूस करते छोटे बच्चे, ज़माने से अकेले जूझती स्त्री, विस्थापित होने का दर्द झेलती एक अकेली नारी, सीमा पर दुश्मन सैनिकों से और अपनों से ही लड़ता एक सैनिक, एक गरीब मज़दूर के मन की उथल-पुथल आदि का चित्रण मिलता है। संग्रह की पहली कहानी 'दरख़्तों के साये में धूप' एक ऐसी स्त्री की कथा है, जो परिवार की ख़ुशी के लिए अपनी छोटी-छोटी ख़्वाहिशें और अपने सपनों को स्थगित करती रहती है, लेकिन एक दिन वह अपना हौसला जुटाकर अपनी हताशा को दूर करके महिलाओं की स्वच्छंद सोच पर परिवार द्वारा लगाई गई लगाम पर सवाल उठाती है। इस कहानी को पढ़ते हुए एक मध्यवर्गीय महिला की मनोदशा का बखूबी अहसास होता है। 'बहुरि अकेला' कहानी को लेखिका ने काफी संवेदनात्मक सघनता के साथ प्रस्तुत किया है। इस कथा में अनुभूतियों की मधुरता है, बिछोह की कसक है, अकेलेपन से उबरने की तीव्र उत्कंठा है और पुनः जीवन जीने की उत्कट अभिलाषा है। 'मोको कहाँ ढूँढ़े' पर्यावरण और कोलाहल के प्रति बुज़ुर्गों की मानसिकता की कथा है। 'दाग़-दाग़ उजाला' पारिवारिक अलगाव को दर्शाती रोचक प्रेम कहानी है, जो पाठकों को काफी प्रभावित करती है। 'कुछ नहीं, कुछ भी तो नहीं' स्त्रियों की विवशता को दर्शाती कहानी है। 'अपारदर्शी सच' कहानी में लेखिका ने स्त्री के अंदर की फैंटेसी और उसके विचलन को सहजता और साहस के साथ बखूबी चित्रित किया है। मनुष्य की सच्चाई, ईमानदारी और उसके खरेपन को दर्शाती है इस संग्रह की शीर्षक कहानी 'कछु अकथ कहानी'। 'यूँ ही मैं बावरी कथा' में अपनों से विस्थापित होने का दर्द है। 'दिवस गंध' कहानी में पुलिस

का अमानवीय चेहरा सामने आता है। मासूम बच्चों को पुलिस द्वारा बदले की भावना से बर्बरता पूर्वक लाठियों से पीटने का जो दर्द है उस दर्द को इस कहानी का नायक सुरजीत अपनी ज़िंदगी में भूल नहीं पाता है। इस संग्रह की अन्य कहानियाँ 'विदा', 'अभिमन्यु लड़ रहा है', 'आसान राह की मुश्किल', 'आदत', 'विलुप्त', 'सामराज' भी मन को छूकर उसके मर्म से पहचान करा जाती है।

लेखिका ने इन कहानियों में स्त्री संवेगों और मानवीय संवेदनाओं का अत्यंत बारीकी से और बहुत सुंदर चित्रण किया है। कविता वर्मा का दृष्टि फलक विस्तृत है। इनकी कहानियों में व्याप्त स्वाभाविकता, सजीवता और मार्मिकता पाठकों के मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ने में सक्षम है। इस संकलन की कहानियों में लेखिका की परिपक्वता, उनका सामाजिक सरोकार स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। कविता वर्मा ने कहानियों में घटनाक्रम से अधिक वहाँ पात्रों के मनोभावों और उनके अंदर चल रहे अंतर्द्वंद्वों को अभिव्यक्त किया है। लेखिका के कहानियों के पात्र अपने ही करीबी रिश्तों को परत दर परत बेपर्दा करते हैं। लेखिका जीवन की विसंगतियों और जीवन के कच्चे चिट्ठों को उद्घाटित करने में सफल हुई है। कविता वर्मा की कहानियों में कथा पात्रों के मन की गाँठे बहुत ही सहज और स्वाभाविक रूप से खुलती हैं। संग्रह की सभी कहानियाँ शिल्प और कथानक में बेजोड़ हैं और पाठकों को सोचने को मजबूर करती हैं।

कविता वर्मा की कहानियाँ एक व्यापक बहस को आमंत्रित करती है। कविता वर्मा की कहानियाँ जीवन और यथार्थ के हर पक्ष को उद्घाटित करने का प्रयास करती हैं। संग्रह की सभी कहानियाँ एक से बढ़कर एक हैं। कहानियों का यह संग्रह सिर्फ पठनीय ही नहीं है, संग्रहणीय भी है। आशा है कि कविता वर्मा के इस कहानी संग्रह का हिन्दी साहित्य जगत् में स्वागत होगा।

❐❐❐

28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल : 9425067036
ई-मेल: deepakgirkar2016@gmail.com

# पुस्तक चर्चा

## निर्भया

**समीक्षक : कान्ता राय**
**लेखक: सुरेश सौरभ**
**प्रकाशक: नमन प्रकाशन, लखनऊ**

'निर्भया' पुस्तक का नाम है या नाम है आक्रोश का? सामने टेबल पर रखी इस पुस्तक को पिछले कई हफ्तों से देख रही हूँ। कई बार पढ़ने को हाथ में लिया, दो मासूम, निश्छल आँखें सामने उग आई। आँखों में सपने छलक रहे थे। तभी अचानक उन आँखों में निराशा, फिर आक्रोश और फिर खून उतरने लगता है। मैं घबरा कर उसे फिर से टेबल पर रख देती हूँ। जब-जब इस पुस्तक को हाथ में लिया है, ऐसा बार-बार हुआ है। फिर अंतत: मैंने पढ़ डाली पूरी किताब।

पैंतालिस कविताओं अच्छादित पन्नों से युक्त इस पुस्तक के लेखक सुरेश सौरभ हैं। पत्रिकाओं में अक्सर पढ़ती रहती हूँ आपको। छिटपुट में किसी को पढ़ना और समग्र रूप से किसी लेखक की कृति को पढ़ने में बहुत फ़र्क है। इस कृति 'निर्भया' के ज़रिए लेखक वर्तमान हालातों पर अपने चिंतन मनन के विविध आयाम स्थापित करता है। वह लिखता है 'जाने क्यों?' और कहता है सिमरन के मन की बात। वह लिखता है लड़की के सपने को, जो उसे नींद में डराती है। आगे जब बढ़ती हूँ तो 'मेरा गाँव' मन को तरबतर कर देता है। कच्चे आम की चटनी के ईर्द-गिर्द गाँव की मिट्टी की खुशबू को लयबद्ध करते हुए सौंधी रचना है। यह साधारण लेखक की कलम नहीं है। जिज्ञासावश मैंने तुरंत पुस्तक को पलटते हुए पीछे का कवर देखा। परिचय पढ़ा। आपने करीब बारह किताबों पर काम किया है। यह पुस्तक उनकी साधना का प्रतिफल है। यह अपने आप में बहुत बड़ी उपलब्धि है। 'कुछ एहसास' से गुज़री और 'धरातल' पर पहुँची तो पाया कि संवेदनाओं को ढोने वाला आदमी ही कविता का सुख महसूस कर सकता है।

मैं पढ़ रही हूँ 'मियाद' और परख रही हूँ खुद को। पनीली आँखों की टीस-खीज से निकल कर आने वाले विचारों को, उसके अंज़ाम से प्रभावित हूँ।

'कच्चा माल', 'दुकानें', 'भूख', 'तलाश' सबकी अपनी अलग भाव व्यवस्था है। सरल मन की सरस कविताएँ मन के अनुकूल है इसलिए सब मोहक हैं।

मैं शब्दों में, उसमें निहित कथ्य में अपने बुद्धि के सहारे तलाश कर, पोषित कर रही हूँ अपनी सोचने की क्षमता को।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि -

''काव्य की उक्ति चाहे कितनी ही अतिरंजित, दूरारूढ़ और उड़ानवाली हो, उसका वाच्यार्थ चाहे कितना प्रकरणच्युत व्याहत और असम्भव हो, उसकी तह में छुपा हुआ कुछ न कुछ योग्य और बुद्धिग्राह्य अर्थ होना चाहिए। योग्य और बुद्धिग्राह्य अर्थ प्राप्त करने के लिए चाहे कितनी ही मिट्टी, मिट्टी मैं तार्किकों की बुद्धि से कह गया, रसज्ञों और सहृदयों की दृष्टि से सोना या रत्न कहना चाहिए, खोदकर हटानी पड़े, उसे प्राप्त करना चाहिए।''

मैं पन्ने पर दर्ज विचारों को सोना और रत्न जानकर सुरक्षित रख रही हूँ ताकि विवेक जगा रहे और 'निर्भया' काव्य संग्रह की सार्थकता मेरे लिए परिपूर्ण रहें। यह निश्चित ही एक अच्छी पुस्तक है।

❐❐❐

मकान नं -21, सेक्टर-सी, सुभाष कॉलोनी
गोविन्दपुरा, नियर हाई टेंशन लाइन, भोपाल 462023,
मोबाइल : 9575465147

# पुस्तक समीक्षा

# चुनी हुई 51 व्यंग्य रचनाएँ

**समीक्षक : सूर्यकांत नागर**

**लेखक : अश्विनी कुमार दुबे**

**प्रकाशक : डायमंड पॉकेट बुक्स**

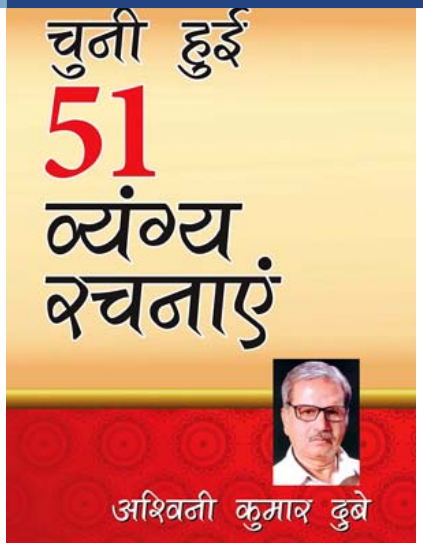


अच्छा व्यंग्य लिखना नैसर्गिक देन है। ईश्वरीय वैभव। हर किसी के बस में नहीं है, व्यंग्य का सार्थक रचाव। इसके लिए लेखक को संवेदनशील और कल्पनाशील होने के अतिरिक्त चीज़ों को उलटकर देखने, विरोधाभासों को पकड़ने और उसे सलीक़े से व्यक्त करने का कौशल उसमें होना चाहिए। वैसी प्रतिभा भी। ऐसा न होने पर व्यंग्य गूँगे का गुड़ बन कर रह जाएगा।

अश्विनी लम्बे समय से व्यंग्य लिख रहे हैं। वे व्यंग्य-कर्म से जुड़े इन तमाम तत्वों से बाख़बर हैं। इसीलिए उनके व्यंग्य मारक और प्रभावी हैं। उनकी ''चुनी हुई 51 व्यंग्य रचनाएँ'' संग्रह इसका प्रमाण हैं। संग्रह की अधिकांश रचनाएँ व्यवस्था-विरोधी हैं। चाहे बात शासन-प्रशासन में मौजूद विसंगतियों और विद्रूपताओं की हो, स्वार्थी अफ़सरों-नेताओं की हो, रिश्वतखोरी की हो, चापलूसी की हो, प्रशासनिक अक्षमता की हो, साहित्यिक अखाड़ों की हो, मूल्यहीनता की हो या मिथ्याचार की हो !

अश्विनी दुबे स्वयं प्रशासनिक व्यवस्था के अंग रहे हैं, उन्हें दफ़्तरी कार्यप्रणाली की राई-रत्ती जानकारी है। यह कृति अनुभूति की प्रमाणिकता का श्रेष्ठ उदाहरण है। भोगा यथार्थ रचना को अधिक पुष्ट और प्रामाणिक बनाता है, बशर्ते वह बहुसंख्य के यथार्थ से मेल खाता हो। चूँकि अश्विनी दुबे के पास सर्जक की पारखी आँख है और हाथ में क़लम है, इसीलिए वे असंगतताओं को इतनी प्रमाणिकता से व्यक्त कर सके। उनका परिवेश व्यापक और संवेदना गहरी है। इसीलिए अभिव्यक्ति तिलमिला देने वाली है।

अश्विनी दुबे के लिए व्यंग्य-लेखन एक किस्म की सामाजिक प्रतिबद्धता है। लेखक में जन-हित और लोक मंगल की चेतना जितनी तीव्र होगी, उसमें सत्य को पकड़ने की सामर्थ्य भी उतनी ही अधिक होगी। इसीलिए तमाम दौड़-धूप के बीच दुबेजी की रचनात्मकता के केन्द्र में मनुष्य है। कार्ल मार्क्स ने लिखा है - 'मनुष्य से संबंधित कोई भी चीज़ मेरे लिए पराई नहीं है।' व्यंग्यकार का काम सामाजिक बुराइयों की आलोचना कर एक बेहतर मनुष्य और प्रकारांतर एक बेहतर समाज की रचना करना है। अन्याय के ख़िलाफ जो वक्रीय आक्रोश मन में उपजता है, उसे व्यक्त करने की बैचेनी ही उसके रचना-कर्म का बायस है। लेकिन आक्रोश के नाम पर अश्विनी व्यंग्य को अराजक नहीं होने देते। उनके व्यंग्य सात्विक और ईमानदार हैं। वे व्यक्ति पर नहीं, वृत्ति पर प्रहार करते हैं। उनमें बौद्धिक गहराई है। अश्विनी के मन में दुर्व्यवस्था के प्रति असंतोष कितना प्रबल है, इसका सबूत तो कुछ दिनों पूर्व आए उनके अन्य व्यंग्य-संग्रह 'बिना पूँजी का धंधा' की रचनाओं में भी मिलता है।

प्रस्तुत संग्रह की प्रथम रचना 'जूरासिक पार्क' जहाँ रचनाकार की कल्पनाशीलता और प्रतिबद्धता की प्रतीक है, वहीं इस बात की भी कि फ़िल्म-निर्माता एक गंभीर कर्म को कितना हलके से लेते हैं।

उनका ध्येय धन कामना है, लोकहित नहीं। कैसी विडम्बना कि फ़िल्म की शूटिंग के दौरान ही संवाद लिखे जाते हैं और अधूरी लिखी पटकथा को आगे बढ़ाया जाता है। क्या ऐसे में वहाँ गहराई हो सकती है ? 'राजधानी : तीन संदर्भ' उन छुट भय्या नेताओं का कच्चा-चिट्ठा है जो सम्पर्कों का लाभ उठाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। रोचक और तथ्यपरक व्यंग्य 'चुनावी ड्यूटी और घुट्टन बाबू' में चुनावी-प्रक्रिया की असंगतताओं पर तीखी टिप्पणी के साथ-साथ यह दर्शाया गया है कि कर्मचारी चुनावी ड्यूटी निरस्त करवाने के लिए कैसे-कैसे पापड़ बेलता है। कठोर प्रतिबंधों के बीच जो कर्मचारी ड्यूटी निरस्त करवाने में सफल हो जाता है, वह खम ठोककर बताता है कि उसने अत्यंत दुर्गम गढ़ को जीत लिया है। दूरस्थ ग्रामीण स्थानों पर चुनावी ड्यूटी के लिए तैनात कर्मचारियों को होने वाली परेशानियों का सटीक ब्यौरा भी रचना में है। ग्रामीण पंचायतों की कार्यशैली पर भी कड़ा कटाक्ष है जहाँ अशिक्षित महिला सरपंच का पति ही छद्म सरपंच होता है और मनमानी कर अपनी जेब भरता है। साहब का दौरा संबंधित इलाके के अधिकारियों-कर्मचारियों के लिए किस कदर प्राणलेवा होता है, इसका प्रामाणिक ब्यौरा 'बड़े साहब का दौरा' नामक निबंध में है। यदि दौरे पर आए साहब की भरपूर सेवा कर दी जाए और विदाई के समय 'थैली' भेंट कर दी जाए तो दौरा निर्विघ्न निपट जाता हैं, वरना 'एडवर्स रिमार्क' को भगवान भी नहीं टाल सकता। दरअसल जब तक साहब दौरे पर होते हैं, स्थानीय अधिकारी की जान साँसत में रहती है। पता नहीं साहब कब कोई माँग चतुराई से पेश कर दें और अधिकारी को उसे पूरा करना पड़े। दौरा तो एक बहाना है। दरअसल साहब को इस क्षेत्र में अपने रिश्तेदार के यहाँ विवाह-समारोह में शरीक होना था। सरकारी खर्च

पर आना-जाना तो हो ही जाता है, रिश्तेदार पर एहसान भी कि व्यस्तताओं के बीच भी इतने बड़े साहब रिश्तेदारी निभाना नहीं भूले! अफसर होकर भी इंसानियत उन्हें याद रही।

संग्रह की कुछ रचनाओं में करुणा की अंतरधारा प्रवाहमान है। स्मरणीय है कि व्यंग्य केवल वार ही नहीं करता, करुणा से भी जोड़ता है। लेखक जितना संवेदनशील होगा, मानवीय करुणा का भाव उसमें उतना ही तीव्र होगा। अश्विनी दुबे करुणाविहीन स्थितियों पर प्रहार करते हैं। चेखव के अनुसार व्यंग्य के मूल में करुणा और सहानुभूति का भाव होता है। एक अच्छा व्यंग्यकार अपने को सूली पर टाँगता है और फिर अपनी कमज़ोरियों पर कीलें ठोकता है। संग्रह की व्यंग्य रचनाओं में हास्य को थोपने या रोपने का सायास प्रयास नहीं है। जहाँ भी है, यदि वह है तो, सहज-स्वाभाविक है। वजह, व्यंग्यकार को हास्य ओर व्यंग्य के बुनियादी फर्क की समझ है। वह जानता है कि हास्य की हँसी मनोरंजन की है, जब कि व्यंग्य की हँसी उपहास की हँसी है। वह विकृति का मज़ाक उड़ाती है।

अश्विनी कुमार के पास एक प्रवाहमयी, समावेशी, व्यंजक भाषा है। वे जानते हैं कि भाषा व्यंग्य की मारक शक्ति में इज़ाफा करती है। श्रीलाल शुक्ल ने कहा था, सही शब्द-प्रयोग के समानान्तर वाक्य-विन्यास व्यंग्य की संवाहक शक्ति का बायस है। संग्रह की कुछ रचनाएँ अधिक विस्तार पा गई हैं। विवरणात्मकता के साथ-साथ उनमें कथात्मकता है। कथात्मक होना दोष नहीं है। कथा से रचना का अभ्यांतरिक अर्थ स्पष्ट होता है। दुबेजी का विश्वास रचना को अतिबौद्धिक और अतिकलावादी बनाने में उतना नहीं है, जितना उसे वस्तुनिष्ठ, वस्तुपरक बनाने में है। विवरण वहाँ हैं, पर उपदेशात्मक नहीं हैं क्योंकि रचनाकार को पता है कि उपदेश से रचना की विचार-यात्रा विपरीत रूप से प्रभावित हो सकती है। एक उत्तम, सोद्देश्य, पठनीय कृति का स्वागत होना चाहिए।

❐❐❐

ज्ञानोदय, 81 बैराठी कालोनी, नंबर - 2
इन्दौर, मप्र 452014
मोबाइल : 9893810050

# पुस्तक चर्चा
# पेड़ लगाओ

**समीक्षक : शशि पुरवार**
**लेखक: राज कुमार जैन राजन**
**प्रकाशक: अयन प्रकाशन**

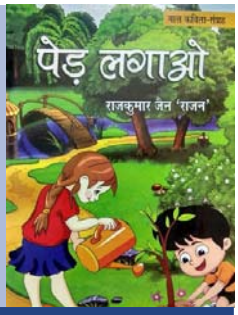


बाल साहित्य के माध्यम से बच्चों की मनोदशा को व्यक्त करना आसान नहीं होता है। इस संग्रह के माध्यम से राजकुमार राजन ने बच्चों की मनोदशा को व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है। इसके लिये बच्चों की मनोदशा को समझना ज़रूरी है, जिसमें कवि राजकुमार जैन राजन सफल हुए हैं। 'रोबोट दिला दो राम', 'मत छीनो बचपन' ...आदि कविताओं के माध्यम से आज के संदर्भ में बस्ते के बोझ तले दबे हुए नन्हें विधार्थी की पीड़ा साफ नज़र आती है। वर्तमान में बस्ते के बोझ तले मासूम बचपन मुरझाने लगा है। आज बच्चों की वह खिलखिलाती हँसी नज़र नहीं आती अपितु पीठ व कंधे का दर्द उनके चेहरे से छलकता है।

'नहीं देखती जात पात जल बरसाती सब पर एक साथ', 'रुको नहीं मंज़िल से पहले, हमको सिखलाती रेल', 'प्यारी और दुलारी लगती हरे पेड़ की छाँव', 'मौसम अच्छा नहीं अभी.....पानी में यदि रहे भीगते..चढ़ जाएगा बुखार' आदि कविताओं के माध्यम से बच्चों को खेल- खेल में संस्कार व ज्ञान प्रदान किया गया है। पढ़ने के साथ बच्चों के खाने व दूसरों के टिफिन को देखकर ललचाने की नैसर्गिक आदत के साथ मचलने व माँ से अपनी बात मनवाने का सुंदर प्रयास है - 'मम्मी अब तो दया करो रूप लंच का नया करो...' इस कविता के माध्यम से समय के साथ लंच का बदलता स्वरूप बच्चों की कोमल मन के भाव को मासूमियत से व्यक्त करता है।

'फलों के राजा आम' हो या 'अच्छी बात नहीं' जैसी कविताएँ बच्चों को सीख देती हुई सफल बाल कविताएँ है। 'जंगल दिवस मनाया' कविता के द्वारा कवि ने जंगल का महत्त्व बच्चों को बहुत अच्छे से समझाया है। वहीं 'नन्हीं चींटी' के माध्यम से बच्चों को श्रम व इमानदारी का पाठ पढाया है। 'फिर आओ बापू' कविता के द्वारा कवि ने जहाँ आज की समसामायिक स्थिति पर खुला प्रहार किया है, वहीं इससे बच्चों को आज के समाज में हो रहे प्रसंगों से भी जोड़ा हैं। पढ़ने-लिखने व पुस्तक का महत्त्व समझाती कविता के साथ कवि ने 'महावीर', 'ऐसा काम न करना' .. आदि कविताओं के माध्यम से बच्चों को धर्म , संस्कार व संस्कृति का ज्ञान देकर उन्हें शिक्षा का पाठ पढ़ाया है। 'नदी' के माध्यम से बच्चों की जिज्ञासा व कल्पना को बखूबी साकार किया है। 'प्यारे गाँव' नामक कविता से बच्चों को गाँव की सौंधी खुशबू व पहचान से रू-ब-रू कराकर उन्हें वहाँ की माटी से जोड़ा है। गाँव का सीधापन शहरों में नहीं मिलता है। 'नीम के गुण', 'मीठी नींद', 'पेड़ बचाओ', 'पानी को सहेजें', आदि रचनाएँ पर्यावरण से जोड़ती, बच्चों को ज्ञान के साथ उन्हे सहेजने के लिए सजग करती हैं।

समय के साथ आधुनिक तकनीकों से जोड़ती बाल कविताओं के माध्यम से बच्चों को कंप्यूटर, इंटरनेट आदि की जानकारी देकर उन्हे खेल- खेल में सरलता से जिज्ञासा द्वारा जोड़ने का सफल प्रयास करती है ।'सर्दी', 'नानी का घर' आदि कविताएँ बच्चों के मनोविज्ञान को व्यक्त करती सुंदर रचनाएँ हैं। इस संग्रह में मुझे 'अक्षर की कहानी' कविता बेहद पंसद आई। इस कविता के माध्यम से खेल-खेल में बच्चों को अक्षर ज्ञान के साथ साथ पढ़ाना व नन्हें मस्तिष्क में ज्ञान का संचार करना बेहद आसान बना दिया है।

कुल मिलाकर बालकों की रुचि, पसंद के अनुसार इस संग्रह की कविताओं में बालकों मानसिक स्थिति को बखूबी उजागर किया गया है।

❐❐❐

# पुस्तक समीक्षा

## द ट्रूथ बिहाइंड ऑन एयर

**समीक्षक : श्रद्धा श्रीवास्तव**

**लेखक : पुष्पेन्द्र वैद्य**

**प्रकाशक : कलमकार मंच**

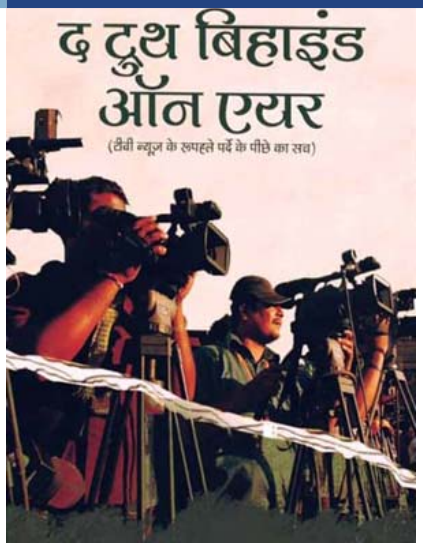




दार्शनिक ब्रूनो ने कभी कहा था कि आकाश सिर्फ़ उतना नहीं है, जितना हमें दिखाई देता है। यह बात प्रसिद्ध पत्रकार पुष्पेन्द्र वैद्य की ताज़ा किताब 'द ट्रूथ बिहाइंड ऑन एयर' पढ़ते हुए शिद्दत से साफ होती है। आज टीवी न्यूज़ जनसंचार का सबसे लोकप्रिय और ताक़तवर माध्यम बन गया है। इसने हमारे सामाजिक व राष्ट्रीय जीवन को गतिशील बनाया दिया है। शब्द और ध्वनियों के साथ दृश्य मिल जाते हैं, तो सूचना की विश्वसनीयता बढ़ जाती है। मशहूर संचार शास्त्री विल्बेर श्रेम के मुताबिक संचार अनुभवों की साझेदारी है। घटना के बजाए एक प्रक्रिया है। यह एक इंटरएक्टिव प्रक्रिया है जहाँ दर्शक और सूचना देने वाले दोनों की सक्रिय भागीदारी ज़रूरी है। सबसे पहले किताब का शीर्षक सहसा एक कौतूहल जगाता है 'द ट्रूथ बिहाइंड आंन एयर' (टीवी न्यूज़ के रुपहले पर्दे के पीछे का सच), यानी उस पार का सच।

संचार क्रांति के इस दौर में हम ख़बरें देखते भी हैं, उन्हें कोसते भी हैं और सवाल भी उठाते हैं। किताब बताती है कि टीवी ख़बरों में झूठ को सच बना देने का खेल बहुत लोकप्रिय हो चला है। कैसे 'स्पिन' अब बड़ी आसानी से ख़बरों में शामिल है। सरकार और कॉर्पोरेट्स को लोकप्रिय दिखाना होता है। पर यह कैसा रियलिटी चेक ... मीडिया का काम निगरानी रखने का है पर ऑन एयर इन्हें महज सरकार की सफलता की कहानी कहनी होती है। फ़ील्ड में आम लोग योजनाओं के फायदों की जगह इनसे जुड़ी गड़बड़ियों, घपलों, घोटालों की कहानी बयाँ करते हैं पर सत्ताधारी दल के कार्यकर्ता, जनसंपर्क विभाग मिलकर ऑनएयर सरकार की तारीफों के पुल बाँधते हैं, जो पुष्पेन्द्र को फाँस की तरह चुभती हैं। कथनी और करनी का फर्क कदम-कदम पर है। यहाँ तक कि उनका शिष्य ही उनसे सवाल करता है, सर! आप ने तो कहा था-'मीडिया हमेशा विपक्ष की भूमिका में रहता है।' शायद इसीलिए वह एक जगह कहते हैं टीवी पत्रकारिता अब पत्रकारिता नहीं बल्कि नौकरी से ज़्यादा कुछ नहीं। आदिवासी लड़कियों की तस्करी का मामला कितना संजीदा है पर नहीं, यहाँ भी स्टिंग ऑपरेशन के बावजूद एक संगठित गिरोह का कुछ बिगाड़ नहीं पाते और दफ़्तर द्वारा इसे 'लो प्रोफाइल' ख़बर बता कर दबा दिया जाता है। जबकि यह ख़बर 'लाडली-लक्ष्मी' और 'बेटी पढ़ाओ, बेटी बचाओ' जैसी सरकारी योजनाओं की चिन्दियाँ उधेड़ती है।

एक दर्शक अब यह बात भलीभाँति समझ रहा है कि न्यूज़ चैनल में उन मुद्दों को उठाया नहीं जाता जिनका सम्बन्ध व्यापक जनसमुदाय से है, जिनका सरोकार जीवन से जुड़ा है, मूलभूत आवश्यकताओं से जुड़ा है। शिक्षा, स्वास्थ्य, जल, ज़मीन, जंगल जैसे हमारे हक़ के सवाल। सवाल पूछने की प्रक्रिया दरअसल समाप्त की जा रही है हर जगह। दूसरी बड़ी बात इस किताब की, जो भीतर झाँकने के बाद दिलो-दिमाग़ पर छाप छोड़ती जाती है, कहना न होगा, भाषा की तमीज़ को पुष्पेन्द्र ने बख़ूबी बरता है। इसे बरतने की जो सजगता, मेहनत चाहिए, वह आते-आते ही आती है और वह यहाँ साफ़ दिखती है, यही कारण है एक से लेकर तीस अध्याय आप गति के साथ पढ़ जाते हैं। किताब का प्रवाह आपके अंदर की बेचैनी को कुरेदता है। एक बार को हम अपने से कहते हैं हमें ख़बरों से क्या लेना, हमें पोलिटिक्स से क्या लेना-देना लेकिन ऐसा नहीं है यही पोलिटिक्स हर चीज़ की कीमत तय करती है। ब्रेख़्त कहते हैं, "जो राजनीति की बात नहीं करता, उसके बारे में सोचता नहीं, कहता नहीं। वह सबसे बड़ा गँवार है।" दरअसल राजनीति से जुड़ी ख़बरें आज हमारे जीवन का अभिन्न हिस्सा बन गई हैं।

बीते कुछ सालों में अंधविश्वास एक बड़ा कारोबार बन कर उभरा है। भूत-प्रेत व आत्मा की मौजूदगी वाली ख़बरों का रेलम-पेल लोगों को लुभाता है। साथ ही हम पाते हैं, राजनीतिक स्वार्थ के चलते तर्कशक्ति को कुंठित करने के कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। किताब में उल्लेख है-"स्पष्ट मेल था-डियर आल, अपने स्टेट से धर्म, आस्था के स्टोरी आइडिया भेजिए।" एक नेशनल न्यूज़ चैनल में स्पेशल प्राइम शो की डिमांड पर पुष्पेन्द्र लिखते हैं कि किस प्रकार कुम्भ के धार्मिक, ऐतिहासिक, पौराणिक महत्त्व से कोई सरोकार नहीं बल्कि हाईप्रोफाइल बाबाओं का करिश्मा दिखाना मक़सद होता है, कई बार भूत-प्रेत के झूठे क़िस्सों को दिखाना होता है। एक बार अमावास और चौदस की काली रात में मंत्री के तंत्र-साधना के खुलासे को दिखाना था पर स्वार्थ के आगे ख़बर ऑन एअर नहीं हो पाती।

भूत बंगले वाली ख़बरों के पीछे ज़मीन के माफ़िया का गिरोह होता है। खुलासे को छू-मंतर कर दिया जाता है। आसाराम से जुड़े

अघोरी बाबा के स्टिंग ऑपरेशन की भूमिका और जोखिमभरी ख़बरों के बाद क़ानूनी दाँव-पेंच में फँसने और निकलने का विवरण एक अलग तरह की दुनिया का पर्दाफ़ाश करता है।

नक्सल समस्या पर भी दो घटनाओं का ज़िक्र है, पुष्पेन्द्र ने समय की नब्ज़ को बखूबी पकड़ा है। मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और झारखण्ड नक्सल समस्याग्रस्त प्रांत ही नहीं बल्कि वहाँ आदिवासियों के हक़ छीने जाने और उनके विस्थापन की चिंता भी गौरतलब है। पहली स्टोरी जिसने पुष्पेन्द्र को टी.वी. पत्रकार के रूप में न केवल स्थापित किया बल्कि ख़बर चलने के बाद अंतर्राष्ट्रीय मानवधिकार आयोग एमेनेस्टी इंटरनेशनल हरकत में आया। ''हमने आदिवासियों का दर्द कैमरे में कैद किया। आदिवासियों ने रोते हुए कहा कि पुलिस ने हमारे निहत्थे आदिवासियों को गोली से भून डाला। सरकार जंगल कटवाती है, माफ़िया काटते हैं और सरकार हमें नक्सली बताकर निशाना बनाती है। हमारा सामान लूट ले गए। हमारी औरतों से दुर्व्यवहार किया जा रहा है। पुलिस और सरकार यहाँ आतंक फैला रही है।'' पुष्पेन्द्र की यह टीप वास्तव में नक्सलवाद के मूल में जाने की एक समझभरी दृष्टि देती है।

कई उन ख़बरों का खुलासा है जहाँ अनाथ बच्चों को उनका हक़ दिलवाया गया तो कहीं दम तोड़ती संवेदनाएँ हैं, तो कहीं प्रशासनिक लापरवाही की वजह से बाँध का पानी बिना सूचना रात में छोड़े जाने की वजह से धाराजी गाँव के मेले में जत्थे के जत्थे लापता पाए गए।

किताब की ख़ूबसूरती यह है कि इसमें शोषण, अंधविश्वास और अवैज्ञानिक सोच के खिलाफ़ नमक को अंडरटोन में चुपके-चुपके इंजेक्ट किया गया है। किताब में कर्म और विचारों के संघर्ष की निरंतरता है जो इसे ख़ास किताब बनाती है और निराशा के गहरे अँधेरे में भी नन्हें दीए का-सा उजास फैलाती है।

❐❐❐

F / 4, प्रियदर्शनी हाईट्स
गुलमोहर कॉलोनी भोपाल
मोबाइल : 94254 24802
ई-मेल : shraddha.kvs@gmail. com

# पुस्तक चर्चा

## साझा मन

**समीक्षक : दीपक गिरकर**
**लेखक: वसुधा गाड़गिल**
**प्रकाशक: रूझान पब्लिकेशंस**

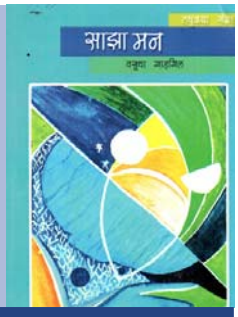


सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक, भाषा तथा पर्यावरण से जुड़े विषयों पर कविता, लघुकथा, कहानी इत्यादि विधाओं में देश के प्रमुख समाचार पत्र-पत्रिकाओं में वसुधा गाड़गिल की रचनाओं का निरंतर प्रकाशन हो रहा है। साझा मन वसुधा गाड़गिल का पहला लघुकथा संग्रह है। इसके पूर्व वसुधा ने मीडिया की भाषा पुस्तक का संपादन किया था। वसुधा ने अपने आसपास के परिवेश, वर्तमान समय में व्यवस्था में फैली अव्यवस्थाओं, विसंगतियों, विकृतियों, विद्रूपताओं के प्रति उनकी जो अनुभूतियाँ, संवेदनाएँ हैं, उनको लघुकथाओं के माध्यम से साझा करने का प्रयास किया है और वे अपने इस प्रयास में सफल हुई हैं। यह समकालीन लघुकथाओं का एक दस्तावेज़ है। वसुधा ज़मीन से जुड़ी हुई एक चिंतनशील और विचारक लेखिका हैं, जो अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज को बदलने का स्वप्न देखती हैं। इस संग्रह के लघुकथाओं को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे छोटी-छोटी घटनाएँ लेखिका को विचलित करती हैं। इस संग्रह की हर लघुकथा पाठकों और साहित्यकारों को प्रभावित करती है। इस संकलन में 98 लघुकथाएँ संकलित हैं। इस लघुकथा संग्रह की भूमिका बहुत ही सारगर्भित रूप से वरिष्ठ साहित्यकार एवं लघुकथाकार सतीश राठी ने लिखी है।

आक्सीजन, रेत के दाने, मेहमान, भास्कर, गुरुदक्षिणा सहित और भी लघुकथाएँ मानवीय संवेदनाओं को झंकृत कर के रख देती हैं। लघुकथा जंग में ज़िंदगी की जंग जीत जाने पर किस प्रकार खुशियों का सावन आँखों से बरसकर जीवन बचाने वाले का आभार प्रकट करता है, इसे बहुत ही सुंदर शब्दों में व्यक्त किया गया है। सौगात, तमाचा, विपन्नता जैसी लघुकथाएँ समाज में व्याप्त विसंगतियों को उजागर करती हैं। कीटनाशक, योद्धा जैसी लघुकथाएँ स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार, अनाचार कर रहे मुखौटों को सब के सामने लाने की कोशिश करती हैं। समाज में फैल रही विकृति की विषबेल किशोरावस्था को अपने शिकंजे में किस प्रकार से ले रही है, इसे व्यक्त करती है विषबेल लघुकथा। दोहरे चरित्र, सांप्रदायिक बैर, राजनीतिक परिदृश्य, शिक्षा जगत् में व्याप्त भाषा विवाद, जातिवाद, मातृत्व भाव, रिश्तों में चेतना, नैतिक और आदर्श जीवन मूल्यों की स्थापना, बाज़ारवादी दृष्टिकोण, नारी शोषण इन सब विषयों पर लेखिका ने अपनी कलम चलाई हैं। वसुधा जी की लेखनी का कमाल है कि उनकी लघुकथाओं के चित्र जीवंत है और सभी रचनाएँ वर्तमान समय व समाज की वास्तविकता हैं। लेखिका ने अपनी लघुकथाओं के माध्यम से समय के सच को अभिव्यक्त किया है। लगभग सभी लघुकथाएँ भाषा, कथ्य एवं विषयवस्तु की दृष्टि से पाठकों के हृदय में गहरे चिह्न छोड़ जाती हैं। इस संग्रह की लघुकथाएँ समाज में नकारात्मकता को ललकारते हुए सकारात्मकता लाने का प्रयास करती हैं। वसुधा जी ने समाज के मार्मिक और हृदयस्पर्शी चित्रों को संवेदना के साथ उकेरा है। संग्रह की सभी लघुकथाएँ संवेदनाओं को झकझोरती पाठकों को गहरे विमर्श के लिए विवश करती हैं। 131 पृष्ठ का यह लघुकथा संग्रह आपको कई विषयों पर सोचने के लिए मजबूर कर देता हैं। यह लघुकथा संग्रह पठनीय है।

❐❐❐

28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड, इंदौर- 452016
मोबाइल : 9425067036
ई-मेल: deepakgirkar2016@gmail.com

# पुस्तक समीक्षा

# कौन देस को वासी... वेणु की डायरी

**समीक्षक : डॉ. प्रमोद त्रिवेदी**

**लेखक : सूर्यबाला**

**प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन**

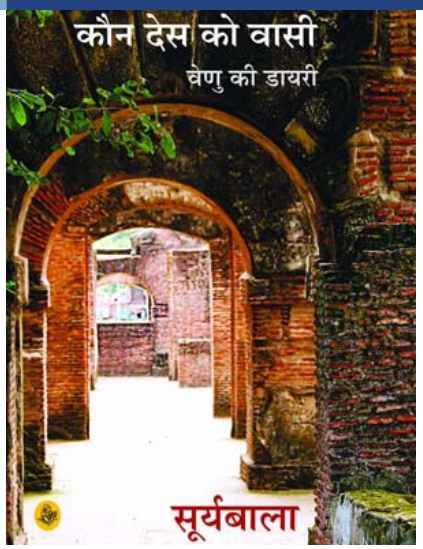


'कौन देस को वासी...' नौ खंडों और तेईस उपखंडों में विभाजित सूर्यबाला का सद्य: प्रकाशित वृहत उपन्यास है। नौ खंडों का होना इसकी ऊँचाई है। इसकी अंतरिक संरचना तो और भी अभेद्य और जटिल है! ऐसी संरचना वही कर सकता है जिसमें खुद को मिटाने का जुनून हो। (और ऐसा जुनूनी फैसला स्त्री ही कर सकती है।)

सूर्यबाला जी ने यह उपन्यास लिखकर अपनी छवि को तोड़ा है तो विस्तार भी दिया है। (जो घर फूँके आपना चले हमारे साथ) इस संरचना में खिड़की, दरवाज़ों की भूल भुलैया और गलियारे, तहखाने तो हैं ही, हवा और उजास भी भरपूर हैं। कहीं कहीं तो इसका तिलिस्म बाबू देवकी नन्दन खत्री के तिलिस्म को चुनौती देता सा लगता है। कुछ चेहरे क्रूर और लोभी। कितने ही हठ योगी जो साँचे में फिट नहीं हो पा रहे, लहूलुहान हो रहे! कुल मिलाकर- 'जीना यहाँ, मरना यहाँ, इसके सिवा जाना कहाँ।' यही इस कृति का फलितार्थ! जो सूर्यबाला जी की सर्जनात्मक छवि से परिचित हैं उन्हें अचरज ही होगा! चकित हूँ, सूर्यबाला जी ने इतनी शानदार पर उतनी ही खौफ़ज़दा इमारत बनाई और बेचारे वेणु को इसके हर कील-काँटे का हिसाब रखने में लगा दिया। प्लॉट भी इतना बड़ा- भारत से लेकर अमेरिका तक फैला! भिन्न सोच और सभ्यताओं में टकराहटें। भाषा का वैभव और वैविध्य अलग अपनी सीमाएँ तोड़ता। हिंदी, अंग्रेज़ी तो उपन्यास की माँग है ही पर गुजराती, मराठी, जहाँ तहाँ पंजाबी, दक्षिण की भाषा के रंग और बांग्ला भाषा के छींटे भी यथा स्थान!

वैसे देखा जाए तो सूर्यबाला अपने दायरे में रहकर ही काम करती हैं। वह दायरा यहाँ भी नज़र आता है। यथा- 'जागिए रघुनाथ कुंवर', 'उठहु राम भंजहु भव चापा...', 'पुरतें निकसी रघुवीर वधु', 'माया महाठगिनी हम जानी...', 'जैसे उड़ि जहाज को पंखी...', से लेकर 'ये दुनिया अगर मिल भी जाए तो क्या है...' 'इन आँखों का हर एक आँसू मुझे मेरे सनम दे दो...', 'बोल राधा बोल संगम होगा के नहीं...' से लेकर 'शस्य श्यामलाम् मातरम् वंदे...' यह उनकी कालगत रेंज नहीं एक लंबी वैचारिक यात्रा और बदलावों का भी प्रमाण है। इसी रेंज में 'प्रगति' (?) के नए अर्थ उद्घाटित होते हैं। उन्होंने 'अर्थ' के नए अर्थ को समझा और आदमी की नीयत को भी...।

आज योग्यता और सफलता के मानदंड बदल गए, संभावनाएँ सात समंदर पार नज़र आने लगीं, स्वप्न जैसे-जैसे बड़े होते गए, स्वप्न भंग के आघात भी उतने ही गहरे होते चले गए! तनाव ज़्यादा सघन। वस्तुत: वेणु की समस्या आज के शिक्षित तरुणों की समस्या हो गई है। हर तीसरे-चौथे घर की समस्या। 'साँई इतना दीजिए' की कामना अब 'साँईं सब कुछ चाहिए...' में तब्दील हो गई है। वेणु की कथा में और कई-कई कथाएँ जुड़ती चली जाती हैं- लोम हर्षक। और यह कथा, महाकथा हो जाती है। हमारे समय की यह कथा जितनी क्रूर उतनी ही दारुण हो जाती है। इन प्रवासी भारतीयों की एक समस्या यह भी है कि वे न तो इस देश के रहे, न ही उस देश के पूरी तरह हो सके। यह तनाव भी कम नहीं है। वस्तुत: हम जिसे जन्नत मान बैठे हैं उसकी हक़ीक़त बिलकुल विपरीत है।

वस्तुत: यह नई सदी का महाभारत है। इसमें किसी शकुनी की दरकार नहीं है, क्योंकि जीत कोई नहीं रहा! विजय है भी तो कैसी कि कोई भी संतुष्ट या खुश नहीं। चक्रव्यूह और जटिल रचे जा रहे हैं। हत्या किसी की नहीं होगी, पर इसमें से निकलने भी नहीं देंगे।

जिस फ़िल्म को हम टॉकीज में जा कर देखते हैं वह सुविधानुसार अलग-अलग असंबद्ध टुकड़ों में दृश्यांकित होती है। दिखाई जा रही प्रिंट का निर्माण तो एडिटिंग टेबल पर होता है, अत: अच्छी फ़िल्म के पीछे कोई अनुभवी संपादक होता है। वेणु की डायरी सफलता का श्रेय भी सारे बिखरे-बिखरेपन को एक सूत्र में पिरोकर पठकीय बना देने के पीछे की रचयिता- संपादक सूर्यबाला की कुशलता और परिश्रम है। इतना पाठकों लिए है तो वह क्या होगा जो लिखा तो गया होगा, पर मन से बेमन से छोड़ा गया होगा।

जिसने सूर्यबाला जी का 'अलविदा अन्ना' पढ़ा हो उन्हें शायद 'कौन देस को वासी...; के रचना बीज ज़रूर मिल जाएँगे। अपनी यात्राओं से उन्होंने विदेशों को बहुत करीब से देखा और जाना भी है, पर देखने और जान लेने भर से कोई रचना विशेष रूप से - 'कौन देस को वासी...' जैसी रचना लिखी ही नहीं जा सकती है। जिस तरह संगीत में हर राग की सुनिश्चित बंदिश होती है, दृढ़ अनुशासन होता है, उसी हद में गायक-वादक अपने सारे खेल से श्रोताओं को चकित-अचंभित कर देता है। उस राग को औरों ने भी

गया, पर वही राग कुछ गायन में अलग और बेजोड़ हो उठता है। यही उस गायक या वादक की सिद्धि हो जाती है। यह उस राग की पराकाष्ठा होती है। 'मटियाला तीतर', 'यामिनी कथा', 'गौरा-गुणवंती', 'बहनों का जलसा', 'होगी जय-होगी जय हे पुरुषोत्तम नवीन', 'बाऊ जी और बंदर', या 'दादी और रिमोट' जैसी कोमल प्रकृति के रागों को गाने में इनकी महारत रही है पर 'कौन देस को वासी... वेणु की डायरी' के स्वर तो नितांत भिन्न हैं और चुनौतीपूर्ण भी। (हालाँकि इन दिनों यही राग ज़्यादा प्रचलित है।) सूर्यबाला जी ने अपनी ज़मीन को न छोड़ते हुए इस राग को भी खूब निभाया है। यह इनकी गायकी का नया आयाम है जो तृप्ति नहीं, विकलता में ले जाता है। यही इस उपन्यास की सफलता है।

वेणु की सफलता-विफलता, प्राप्तियाँ, हताशाएँ और निरंतर दौड़, क्या हासिल किया वेणु ने इस दौड़ में सम्मिलित होकर? क्या कभी उसे सच्ची खुशी मिली? दौड़ में बने रहना ही उसकी नियति हो गई। वह कभी विजेता होने का भाव अपने मन में जगा सका? वेणु तो बेचारा रेस का घोड़ा होकर रह गया। घोड़ा अपने लिए नहीं दौड़ रहा। जिन-जिन ने उस पर दाँव लगा रखा है, उनके लिए ही दौड़ रहा है। गली नंबर 3 के 17 नंबर वाले क्वॉटर के वाशिन्दों के लिए। उसकी वेणु की सारी उड़ान उन सब के लिए है, जिनकी आशा और सारे सपने वेणु से बँधे हैं। वह रुका तो उनके ख़्वाब गर्क! वह दौड़ रहा है इसलिए भी कि घोड़े को पता है, वह बैठ गया तो उठ नहीं पाएगा।

इसीलिए यह उपन्यास जितना वेणु को समेटता है, उतना ही- गली नंबर 3 के 17 नंबर के क्वॉटर और उसके विस्तार को समेटता है। वस्तुत: 'कौन देस को वासी' उपन्यास का बाह्य कलेवर है और 'वेणु की डायरी' इसकी आत्मा है। इसी रूप में यह पूर्ण है। यह दोनों को एकाकार करता हुआ गुज़रता है।

❐❐❐

मन्वन्तर, 205, सेठी नगर, उज्जैन (म.प्र.) 456010
मोबाइल : 9755160197

# पुस्तक चर्चा
# पराई ज़मीन पर उगे पेड़

**समीक्षक : संजीव वर्मा 'सलिल'**
**लेखक: विनीता राहुरीकर**
**प्रकाशक: अरुणोदय प्रकाशन**

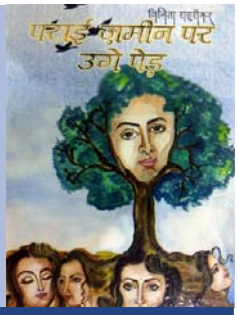


कहानीकार विनीता राहुरीकर के कहानी संग्रह 'पराई ज़मीन पर उगे पेड़' को पढ़ना ज़िंदगी की रेल में विविध यात्रियों से मिलते-बिछुड़ते हुए उनके साथ घटित प्रसंगों का साक्षी बनने जैसा है। पाठक के साथ न घटने पर भी कहानी के पात्रों के साथ घटी घटनाएँ पाठक के अंतर्मन को प्रभावित करती हैं। वह तटस्थ रहने का प्रयास करे तो भी उसकी संवेदना किसी पात्र के पक्ष और किसी अन्य पात्र के विरुद्ध हो जाती है। कभी सुख-संतोष, कभी दु:ख-आक्रोश, कभी विवशता, कभी विद्रोह की लहरों में तैरता-डूबता पाठक-मन विनीता के कहानीकार की सामर्थ्य का लोहा मानता है।

विनीता की इन कहानियों में न तो लिजलिजी भावुकता है, न छद्म स्त्री विमर्श। ये कहानियाँ तथाकथित नारी अधिकारों की पैरोकारी करते नारों की तरह नहीं हैं। इनमें ग़लत से जूझकर सुधारने की भावना तो है किन्तु असहमति को कुचलकर अट्टहास करने की पाशविक प्रवृत्ति सिरे से नहीं है। इन कहानियों के पात्र सामान्य हैं। असामान्य परिस्थितियों में भी सामान्य रह पाने का पौरुष जीते पात्र ज़मीन से जुड़े हैं। पात्रों की अनुभूतियों और प्रतिक्रियाओं के आधार पर पाठक उन्हें अपने जीवन में देख-पहचान सकता है

विनीता का यह प्रथम कहानी संकलन है। उनके लेखन में ताज़गी है। कहानियों के नए कथानक, पात्रों की सहज भाव-भंगिमा, भाषा पर पकड़, शब्दों का सटीक उपयोग कहानियों को पठनीय बनाता है। प्राय: सभी कहानियाँ सामाजिक समस्याओं से जुड़ी हुई हैं। समाज में अपने चतुर्दिक जो घटा है, उसे देख-परखकर उसके सकारात्मक-नकारात्मक पक्षों को उभारते हुए अपनी बात कहने की कला विनीता में है। विवेच्य संग्रह में 16 कहानियाँ हैं। कृति की शीर्षक कहानी 'पराई ज़मीन पर उगे पेड़' में पति-पत्नी के जीवन में प्रवेश करते अन्य स्त्री-पुरुषों के कारण पनपती दूरी, असुरक्षा फिर वापिस अपने सम्बन्ध-सूत्र में बँधने और उसे बचाने के मनोभाव बिम्बित हुए हैं।

विनीता की कहानियाँ वर्तमान समाज में हो रहे परिवर्तनों, टकरावों, सामंजस्यों और समाधानों को लेकर लिखी गई हैं। कहानियों का शिल्प सहज ग्राह्य है। नाटकीयता या अतिरेक इन कहानियों में नहीं है। भाषा शैली और शब्द चयन पात्रों और घटनाओं के अनुकूल है। चरित्र चित्रण स्वाभाविक और कथानुकूल है। अधिकांश कहानियों में स्त्री-विमर्श का स्वर मुखर होने के बावजूद एकांगी नहीं है। वे स्त्री विमर्श के नाम पर अशालीन होने की महिला कहानीकारों की दुष्प्रवृत्ति से पूरी तरह दूर रहकर शालीनता से समस्या को सामने लाती हैं। पारिवारिक इकाई, पुरुष या बुजुर्गों को समस्या का कारण न कहकर वे व्यक्ति-व्यक्ति में तालमेल की कमी को कारण मानकर परिवार के भीतर ही समाधान खोजते पात्र सामने लाती हैं। यह दृष्टिकोण स्वस्थ्य सामाजिक जीवन के विकास में सहायक है। उनके पाठक इन कहानियों में अपने जीवन में उत्पन्न समस्याओं के समाधान पा सकते हैं। एक कहानीकार के नाते यह विनीता की सफलता है कि वे समस्याओं का समाधान संघर्ष और जय-पराजय में नहीं सद्भाव और साहचर्य में पाती हैं।

❐❐❐

विश्व वाणी हिंदी संस्थान, 204 विजय अपार्टमेंट, नेपियर टाउन, जबलपुर 482001,
मोबाइल : 9425183244
ईमेल: salil.sanjiv@gmail.com

# पुस्तक समीक्षा

# मिल्कियत की बागडोर

**समीक्षक : डॉ. नीलोत्पल रमेश**

**लेखक : जयनंदन**

**प्रकाशक : अमन प्रकाशन**

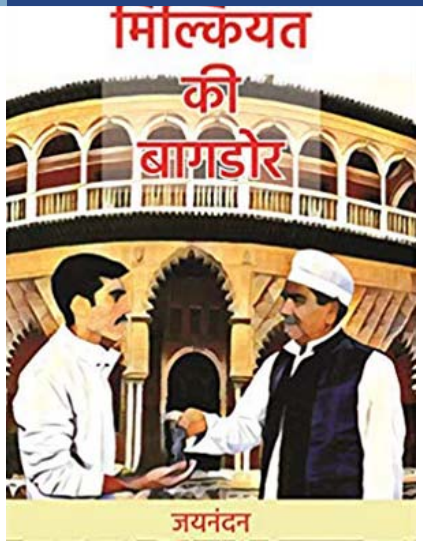


''मिल्कियत की बागडोर'' जयनंदन का हाल ही में प्रकाशित उपन्यास है। इस उपन्यास में जयनंदन ने आज़ादी के बाद के गाँव की राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक पृष्ठभूमि को चित्रित किया है। गाँव के बदलाव को जिन चरित्रों के माध्यम से जयनंदन ने व्यक्त किया है, वे भारत के किसी भी गाँव के हो सकते हैं। प्राय: गाँव जाति, वर्ग और धर्म के आधार पर विभाजित हो गए हैं और उनके बीच चलने वाली राजनीति बहुत ही विषाक्त व घुटनदायक बन गई है। इस उपन्यास में जयनंदन ने पूर्व जमींदार के आख़िरी वारिस अब्दुल फहीम साहब के उदार चरित्र को केन्द्र में रखकर गाँव की तमाम जद्दो-जहद की पड़ताल करने की कोशिश की है।

जमींदारी ख़त्म हो गई है, फिर भी अब्दुल फहीम महद्दीपुर एस्टेट के मालिक के तौर पर अपने और आसपास के कई गाँवों में एक प्रतिष्ठित दर्जा बनाए रखते हैं। इनकी सूझ-बूझ, न्यायप्रियता और रहमदिली के प्राय: गाँव वाले कायल बने रहते हैं। ईमानदारी और बराबरी के भाव से किए जा रहे इनके बर्ताव को सभी सराहते हैं। गाँव में इनका एक प्रतिद्वंद्वी है दीनदयाल। वह उन्हें नकारता है और उनकी गरीबों के प्रति हमदर्दी से बुरी तरह चिढ़ा रहता है। वह उनको बदनाम करने और नीचा दिखाने की हर मुमकिन चेष्टा करता रहता है। फहीम साहब की अपनी कोई संतान नहीं रहती है। अत: वे आरंभ से ही अपना उत्तराधिकार सौंपने की चिंता में घिरे रहते हैं। उनके अपने सगे-संबंधियों में कोई ऐसा सुपात्र नहीं दिखता जिसे वे अपनी पूरी जायदाद सौंप कर निश्चिंत हो जाएँ। उन्हें अपने कॉलेज की एक सहपाठिन सोगरा परवीन से मोहब्बत हो गई थी और उसी से उन्होंने शादी कर ली। लेखक ने लिखा है कि ''फहीम साहब खालिस गोरे-चिट्टे छह फुट का सजीले और पहली ही नज़र में किसी को भी सम्मोहित कर देने वाले विरल किस्म के मर्द थे, ठीक इसी तरह सोगरा किसी कवि की कल्पना से भी हसीन और ख़ूबसूरत थी। उसका मखमली और मलाई जैसा गोरा जिस्म फूल की पंखुड़ियों को भी शर्मसार कर देता था। उसे देखने से ऐसा लगता था जैसे वह किसी शोकेस में सिर्फ सजने के लिए बनी हो, जो छुईमुई पौधे की तरह छूते ही मुरझा जाएगी।''

सोगरा परवीन शुरू से ही माँ बनने से बचती रही थी। जब माँ बनने का फ़ैसला किया तो यही फ़ैसला उसकी जान का दुश्मन बन गया। प्रसव के दौरान जच्चा-बच्चा दोनों ही ख़ुदा के प्यारे हो गए। फहीम साहब को इसका गहरा सदमा पहुँचा और उन्होंने सोगरा की यादों को अपने दामन में सहेज लिया और ताउम्र फिर दूसरा निकाह नहीं किया। फहीम साहब के बड़े भाई अपने चार मंदबुद्धि बेटों को छोड़कर कम ही उम्र में गुज़र गए। फहीम साहब ने इन चारों का पूरा ख़्याल रखा और चतुर-चालाक लड़कियों को चुन-चुनकर इनके निकाह करा दिए। फहीम ने अब राँची में भी अपनी एक शानदार कोठी और फॉर्महाउस बना लिया था और साल के कुछ महीने यहाँ भी गुज़ारने लगे थे। गाँव आते तो पढ़ने-लिखने वाले होनहार युवाओं से संवाद करते और गाँव को बदलने की दिशा में प्रयत्न करने के लिए उन्हें प्रेरित करते। इन्हीं युवाओं के माध्यम से वे किसानों के बिखरे हुए खेतों को एक जगह करने के लिए चकबंदी का अभियान चलवाते हैं, ताकि आधुनिक तरीके से उनकी जुताई-बुवाई हो सके। गाँव में वे बिजली उपलब्ध करवाते हैं और एक कोल्ड स्टोरेज बनवाते हैं ताकि किसानों की उपज इनमें संरक्षित किए जा सकें और उन्हें सड़ जाने के डर से औने-पौने दाम में न बेचना पड़े। गाँव के युवाओं की जिस टीम द्वारा ये सारे कार्य संपन्न होते हैं, उनमें सबसे सक्रिय और प्रतिभावान जो चेहरा उभर कर सामने आता है, वह दलित जाति का विनायक मंडल नाम का लड़का रहता है।

फहीम साहब को इस लड़के में अपने उत्तराधिकारी की छवि नज़र आने लगती है। वे उसे और उसके साथ कॉलेज में पढ़ने वाली एक तेजस्वी लड़की नूरानी अंसारी को अपने ख़र्चे से इंजीनियरिंग और मैनेजमेंट की तालीम दिलवा देते हैं। फिर विनायक को अपनी जागीर का वारिस बना देते है और नूरानी को उसका सहयोगी नियुक्त कर देते हैं। दीनदयाल उनके भाई के सबसे छोटे बेटे की बेगम को बहकाना शुरू कर देता है कि ''आपलोगों के रहते एक ऐसे लड़के को वारिस बनाया जा रहा है जिसकी माँ मुसहरनी है और बाप पनेरी। फहीम मियाँ पर नाहक दलित-उत्थान और गरीब खेतिहरों की कायापलट करने का भूत सवार हो गया है।''

छोटी बहू उससे सहमत होकर इस फ़ैसले की मुख़ालफत करने पर उतारू हो जाती है और कई सारे तिकड़मों की सूत्रधार बन जाती है। विनायक को मरवाने और कोल्ड स्टोरेज को बम के धमाके से नेस्तनाबूद करने की साज़िशें रची जाती हैं। लेकिन युवाओं की

चौकसी किसी भी षड्यंत्र को कामयाब होने नहीं देती। फहीम साहब जाति और धर्म की संकीर्णता को हर समय ख़ारिज करते पाए जाते हैं। वे नूरानी के पिता, जो उनका बावर्ची रहा होता है, के विरोध के बावजूद सिफारिश करते हैं कि नूरानी की शादी विनायक से ही होनी चाहिए। चूँकि दोनों एक-दूसरे से बेइंतहा मोहब्बत करते हैं। लेकिन वह उनकी बात न मानकर अपनी बिरादरी के एक बीड़ी मज़दूर से उसका निकाह कर देता है। हारकर विनायक को अपनी एक दूसरी सहपाठिन मुंदरी प्रजापति से शादी करनी पड़ जाती है। मुंदरी भी उसे नूरानी की तरह ही एक अर्से से प्यार कर रही होती है। फहीम साहब की मरहूम बेगम सोगरा परवीन का लंदन में रहने वाला एक चचेरा भाई नबीउल्लाह खान महद्दीपुर आता है गाँव और फहीम साहब को समझने के लिए। वह वहाँ एयरोनॉटिकल इंजीनियर के पद पर कार्यरत रहता है। वह जीवन के आहार पैदा करने वाले किसानों के संघर्ष और जीवटता पर एक किताब तैयार करता है। इस किताब को देखकर फहीम साहब बहुत खुश होते हैं और कहते हैं कि जिसने कभी गाँव नहीं देखा, उसे गाँव की यात्रा करा देगी यह किताब। नबीउल्लाह के बीवी-बच्चे ब्रिटेन से ही भारत के गाँव की झलक पा लेंगे। फहीम साहब का फ़ैसला गाँव और क्षेत्र के विकास के लिए कारगर सिद्ध होता है। किसानों की आमदनी बढ़ जाती है। कोल्ड स्टोरेज खुल जाता है तथा खेती न करने लायक अनुर्वर और बंजर ज़मीन भी उपजाऊ बन जाती है।

जयनंदन ने इस उपन्यास में फहीम साहब के चरित्र को एक दक्ष करघाकर्मी की तरह बहुत कशीदाकारी करके करीने से बुना है। इस उपन्यास की कथा-भूमि वैसे क्षेत्र को बनाया गया है, जहाँ प्रगति के नाम पर अब तक कुछ भी नहीं हो सका है। इसकी भाषा और विषय-वस्तु रोचक और बेहद पठनीय बन गई है। एक बार पढ़ना शुरू करने के बाद पाठक की जिज्ञासा बढ़ती चली जाती है।

❐❐❐

पुराना शिव मंदिर, बुध बाज़ार, गिद्दी- ए
जिला - हज़ारीबाग, झारखण्ड -829108.
मोबाइल : 9931117537, 8709791120

# पुस्तक चर्चा

## साँझ का सूरज

**समीक्षक : डॉ. अशोक प्रियदर्शी**

**लेखक : पद्मा मिश्रा**

**प्रकाशक : सहयोग प्रकाशन**

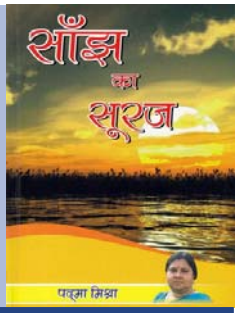


हिन्दी की कहानी इन दिनों बहुत से परिवर्तन देख रही है। कहीं-कहीं यह परिवर्तन शिल्प को लेकर हो रहे हैं, तो कहीं यह भाषा तथा कथानक के स्तर पर हो रहे हैं। कहानी इन दिनों परिवर्तन की प्रक्रिया से गुज़र रही है। इस संक्रांति काल में जो लेखक लिख रहे हैं, उनके सामने यह ऊहापोह तो है ही, कि जो बदल रहा है, उसका सिरा पकड़ा जाए, या फिर जो बदलाव आ रहा है उसके साथ-साथ चला जाए। इसी कारण यह हो रहा है कि कहानियों में एक प्रकार का संकर गुण पाया जा रहा है। कहानियाँ बदलते हुए समय के साथ चलते हुए छूट रही परंपरा का सिरा भी पकड़े रखने की कोशिश में लगी हुई हैं।

पद्मा मिश्रा की कहानियों को पढ़ने का ही नहीं सुनने का भी सुख उठा चुका हूँ। पर उनकी कहानियों को एक साथ पढ़ पाने का आनंद पहली बार उठाया। साँझ का सूरज जैसे अपनी सौम्य किरणें फैलाए हुए होता है, वैसे ही सौम्य किन्तु हृदयस्पर्शी हैं इस संकलन की कहानियाँ। एक प्रसिद्ध पुरानी उक्ति याद आ रही है, -''स्टोरी इज अ स्लाइस ऑफ़ लाइफ''। 'कहानी ज़िन्दगी की कतरन है'। कहानी हृदय को छुए इसके लिए आवश्यक है कि कहानीकार को ज़िंदगी की पहचान हो, और वैसे अवसरों या क्षणों, व्यक्ति के मनोभावों, त्रासों, खुशियों से कहानी का ताना-बना बुने, जो हमारी आँखें गीली कर दे या अधरों पर स्मिति रेख ला दे। पद्मा मिश्रा की दृष्टि ऐसी भेदिनी है, जीवन जगत् की ऐसी संवेदनशील समझ है उन्हें, कि उनकी कहानियाँ दिल को छूती हैं।

हाथ कंगन को आरसी क्या, संकलन को ज़रूर पढ़ें, इसे किसी ताईद की ज़रूरत नहीं। संकलन की ही एक कहानी 'दावत' को लें, शादी की गहमागहमी में सिर पर पैट्रोमेक्स ढोने वाले बच्चे की यातना पर कितने लोगों की नज़र जाती है? 'प्रेमचंद' की 'ईदगाह' का हामिद तो ख़ैर हामिद है, परन्तु 'दावत' के बालक रुन्छु को पढ़ते हुए बरबस हामिद याद आ जाता है। वहाँ दादी का दर्द कम करने की जुगत लगाता है, हामिद बूढ़ा बन कर, वहीं रुन्छु को माँ के हाथ के भात में वो स्वाद मिलता है कि वह शादी के घर की सारी पूरियाँ भूल जाता है। और माँ की गोद में उसे जो आश्वस्ति मिलती है वह वात्सल्य और बाल मन का अत्यंत मोहक प्रसंग सामने लाता है। बातों-बातों में यह कहानी छोटों के प्रति बड़ों के उपेक्षा भाव को भी रेखांकित करती है।

इसी संकलन की एक और कहानी 'अपराजिता' याद आ रही है, लेखिका का कौशल इसमें है कि सारी विपरीत परिस्थितियों के बावजूद कथा नायिका 'अनन्या' को न हताश होने देती है, न निराश, न ही उसका विश्वास टूटने देती है। यह सकारात्मक सोच उनकी कहानियों को नई सौम्य ऊष्मा देती है -साँझ के सूरज की किरणों सी। मेरी चिन्तक दृष्टि में रचना में रचनाकार का व्यक्तित्व भी झाँक जाता है। पद्मा मिश्रा के व्यक्तित्व में जो मोहक, स्नेहिल आत्मीयता है वही उनकी कहानियों को भी ज़िंदगी देती है। छोटे-छोटे प्रसंगों को कहानी बना देना बड़ा कौशल है। आज वैसे भी कहानियों में घटनाएँ न के बराबर होती हैं। उनकी जगह मानव मन को समझने की कोशिश होनी चाहिए। सो पद्मा मिश्रा के प्रथम कहानी संकलन का साहित्य जगत् में स्वागत है, इस शुभ कामना के साथ कि उनकी यह यात्रा जारी रहेगी।

❐❐❐

एमआईजी 82, सहजानंद चौक, हर्मू हाउसिंग कॉलोनी, राँची 834002, झारखंड
मोबाइल : 9430145930

# पुस्तक समीक्षा

## तुरपाई

**समीक्षक : सवाई सिंह शेखावत**

**लेखक : ओम नागर**

**प्रकाशक : कलमकार मंच**

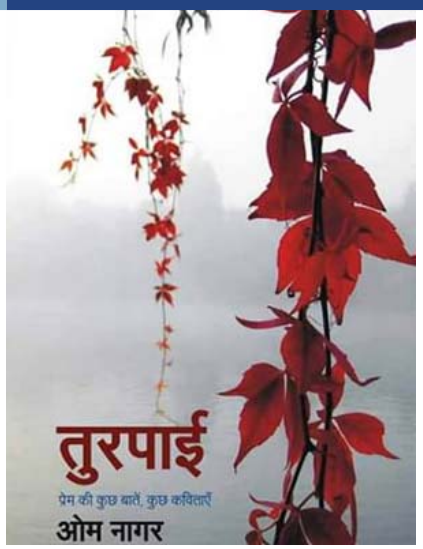


प्रकाशन की दुनिया में अपनी सार्थक सहभागिता के ज़रिए तेज़ी से जगह बनाते कलमकार मंच- जयपुर के बैनर तले कोटा, राजस्थान से युवा कवि ओम नागर का तीसरा कविता-संग्रह आया है-'तुरपाई-प्रेम की कुछ बातें, कुछ कविताएँ' शीर्षक से। शीर्षक पढ़ा तो चौंका कि प्रेम विषयक किसी संकलन का तुरपाई से क्या लेना-देना? लेकिन जब संग्रह उल्टा-पलटा तो अचानक मस्तिष्क में लोक की वह पुरानी उक्ति कौंधी कि-जीवन में कैंची-सा मत बनिए, जो काट-पीट का बायस बनती है। बन सके तो सुई-धागा बनिए जो कपड़ों को फिर से जोड़कर जीवन के लिए ज़रूरी पौशाक सीते हैं। लेकिन इस उद्यम में भी जोड़ने के लिए सिलाई फिर फ़िनिशिंग टच देने के लिए तुरपाई का काम किया जाता है। इसीलिए सिलाई से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण होती है तुरपाई।

सवाल यह है कि कवि ओम नागर ने यहाँ प्रेम की प्रक्रिया के लिए तुरपाई शब्द का ही चयन क्यों किया? थोड़ा गहराई में जा कर सोचा तो कवि अभिव्यंजना को लेकर कायल हुआ। सिलाई बेशक़ वस्त्रों को जोड़ने का महत्त्वपूर्ण काम करती है, लेकिन तुरपाई उस जुड़ाव का सुघर साक्ष्य है। प्रेम में भी किसी से जुड़े होने का सबूत किंचित दृष्टिगोचर होना अपेक्षित है। ग़ालिब-'रगों में दौड़ते रहने के ही नहीं, बल्कि जो आँख से टपके, उस लहू के कायल थे'। वस्त्र-विन्यास में भी तुरपाई उसी स्नेह-सूत्र का एक सलोना साक्ष्य है।

इस संग्रह की दूसरी अनूठी विशेषता प्रेम विषयक कविताओं के साथ प्रेम बाबत कुछ आत्मीय जीवन प्रसंगों का गद्यमय समावेश भी है। डायरी और संस्मरण विधा के मिले-जुले स्वरूप वाले ये प्रसंग संग्रह की पठनीयता और आत्मीयता का विस्तार करते हैं। पहले ही अंश 'एक बात जो कहनी थी तुम्हें' में हम कवि ओम नागर के गद्य-निकष का नमूना देख सकते हैं। जिसमें प्रकृति का सजीव चित्रण, भावों का अनूठा दीप्त-राग, यूकेलिप्टस जैसे पर्यावरण के नाम पर बदनाम दरख़्त में भी प्रिया के नयनों का तीखापन देख सकने, आषाढ़ी जामुन से रची जीभ का दुर्लभ ज़ायका महसूस करने व बारिश की बूँदों के बाद धरती से उठती सौंधी गंध इस संस्पर्श को ज़िंदा बनाते हैं।

पहली कविता 'यहाँ सारी संख्या सम हैं, तुम्हारा रूठना विषम' में 'तुम जो साथ चलो' का विनम्र अनुरोध है। ऐसे संग-साथ में रात को भी सूरज उगा लेने का आश्वासन है। प्रेम में चार शब्द सुनने का आत्मीय आग्रह, होठों के दो से चार होने की निर्दोष ख़्वाहिश और ऐसा करते हुए दुनियाई गणित का हल होते-होते फिर से मीठा उलझाव कवि की प्रेम विषयक धारणाओं के तरल संस्पर्शी भावानुकूलन को दर्शाता है। ओम नागर की इन कविताओं को पढ़ते हुए मुझे टॉलस्टॉय द्वारा गोर्की को दी गई वह सीख भी याद आई जिसमें उन्होंने रचना और सिद्धांतों की चर्चा करते हुए बहुत स्पष्ट शब्दों में यह कहा था कि-

'जीवन जैसा है वैसा रचो कोई सिद्धान्तबाज़ी उसमें मत घुसेड़ो! रचना से सिद्धान्त निकले वह स्वस्थ स्थिति है, किसी सिद्धांत की वेदी पर रचना को शहीद मत करो!'

ओम नागर प्रेम के नैसर्गिक कवि हैं, इसलिए वे उसके भावावेग को कहीं सेंसर नहीं करते। यहाँ तक कि रेल के खचाखच भरे तीसरे दर्जे के डिब्बे में भी 'नैनन ही नैनन में हुई रज़ामंदी' को भी ढूँढ़ लेते हैं।

'यहाँ रोज़ छूट ही जाता है कुछ न कुछ' के ग़म हैं तो 'तुम तो आत्मा में हो/आत्मा तो अजर-अमर है प्रिये' का आश्वासन भी। 'सूख गई जूड़े में टाँगी गेहूँ की बालियाँ' जैसे देशज बिम्ब हैं तो परवीन शाकिर का 'खुश न था मुझसे बिछड़ कर वो भी/उसके चेहरे पे लिखा था लोगों' का कयास भी। कोरा कागज़ और नेल पॉलिश लगी उँगलियों की नूरानी महक के साथ ही 'तुमने कुछ न कहा और मैं हो गया तुम्हारा' वाली मनुहार भरी कवायद भी इन कविताओं में है।

जहाँ कवि हवा-बादल, धरती-आकाश, नदी-समंदर, देह-साँस, आँख-रोशनी, छाँव-पेड़, प्यास-जल, स्वाद-नमक, नींद-सपना, रेखाएँ-हथेली, कीचड़-कमल, ईश्वर-अर्चन, फल-दुआ, उँगलियाँ-मुट्ठी, कान-प्रेमगीत, डोर-पतंग, काजल-पलक, नाक-खुशबू, कली-भँवरा, अँधेरा-दीपक, लोहा-पारस..जैसे छत्तीस युगल रूपकों में जाता हुआ नए सिरे से मानों प्रेम का अनुबंध रचता है।

कवि ओम नागर की इस सुघर तुरपाई में फिर-फिर वे ही प्रेम के ढाई आखर हैं, जिनकी चर्चा कबीर ने भी की। 'फूल के सही खिलने का अंदाज़ न तितली को पता होता है न भँवरे को' जैसी प्रेम

की सूक्ष्म व्यंजनाएँ हैं।

–'एक लंबी साँस जो अभी-अभी भीतर गई/उसी का छोटा-सा उच्छवास है प्रेम'– जैसे सूक्त-वचन हैं। 'तुम्हारा साथ यूँ ही बना रहे सदा/तो पल में गुज़र जाएँ बरसों' जैसे सिद्ध फार्मूले हैं।

और कवि का उत्स यहीं से/जो नदी को दिखाता है समंदर की राह,काले तिल वाली लड़की प्रेम बचा रहे दरम्याँ/बची रहेगी पृथ्वी/आकाश भी बचा रहेगा धरती के मोह में, धरती के कान में कुछ कहने के बहाने बारिश की प्रेम पाती भिजवाता आकाश और समंदर से बाँह भर मिलने को पहाड़ से मैदान की ओर दौड़ पड़ती नदी जैसे उदाहरण भी जिनके ज़रिए कवि ने प्रेम की तरल-सांद्र निगूढ़ व्यंजना को निरूपित किया है।

धुंध छँटने के बाद धूप बुनती अधेड़ महिला, जो आज भी स्वेटर बुनने के धैर्य को बचाए हुए है, उजाले से अँधेरे को देखते हुए, सुबह जिस भी स्टेशन पहुँचेगी रेल वहाँ उजाला होगा जैसी उम्मीद, दुनिया के विष को कमतर करने की कोशिश में आज भी जुटे नीलकंठ से कवि-लेखक, धूप की फेरी से छँटता अँधेरा और घट-बढ़ रहा उजास, नए साल की रोटी में पुराने साल के नमक का स्वाद, फिर नमक की अधिक दिनों तक न टिकती स्मृति में बावजूद उसे चखने में लगने वाले बरसों के विरल काव्य अनुभवों को आप इस संग्रह गद्य की गली में टहलते पाएँगे। धर्म की बिना पर बंद होते शहर, ऐसे विडंबनाओं भरे समय में भी होली के सुरंगे दिनों में सतरंगी इंद्रधनुष खिलाने की ज़िंदा ख़्वाहिश, अपनी ही किसी कविता की तारीफ में आए वरिष्ठ कवि लीलाधर जगूड़ी के फ़ोन की आत्मीय स्मृति तक से कविताएँ गूँथने का हुनर जानते हैं कवि ओम नागर।

कवि आज भी –प्यार पर जब-जब भी पहरा हुआ है/प्यार उतना ही गहरा हुआ है, जैसे यकीन पर यकीन करता है। उसके यहाँ 'तुमने जैसे ही बात भर से छूना चाही मेरी देह/मेरी भुजाओं में उतर आईं हज़ारों-हज़ार मछलियाँ' का जज़्बा बचा है। उधड़े हुए दिल को वह आह भरी नज़रों से रफ़ू करने के कौशल में विश्वास करता है। प्यार में बंजारा बने रहने की कवि ज़िद उसे फिर बसने, उजड़ने, फिर-फिर बसने के उसी पुराने सिलसिले की ओर ले जाती है। तेरी याद में कोई ख़त न लिखा जाएगा मुझसे अब, गुड्डे गुड़िया का खेल खेलते पड़ोस वाला लड़का और छोटी संदूक वाली लड़की का हँसना-रोना, बाईसा के बीरे से तारों की चूँदड़ी लाने का प्रचलित लोक अनुरोध और धूप की तुरपाई में निगोड़े इश्क वाले नमक की डिबिया को सनम की गली में फिर ले आने का निहुरा, पाँच पतासियाँ खाकर प्यार में दो दूनी पाँच होने का विरल अनुभव प्रेम में गणित न होने के बावजूद सारे का सारा गणित उसी से सीखने का सलीका जैसा कितना कुछ है प्रेम के इस अनूठे कवि के यहाँ...

कवि ओम नागर के पिछले कविता-संग्रह 'विज्ञप्ति भर बारिश' की भूमिका में वरिष्ठ कवि राजेश जोशी ने लिखा था कि- गाँव की ज़मीनों पर भूमाफिया के कब्ज़े, बाज़ार से गाँव हाट तक पसरते पाँव, उधर किसानों की आत्महत्याएँ, सूखते जलाशय जैसे हमारे समय में ये ऐसी आत्मीय कविता है, जिसे अपनी देशज बोली-बानी से अटूट सम्बन्धों के बिना नहीं पाया जा सकता। लेकिन एक कवि का अनूठापन किसी दे दिए गए समकालीन अथवा पुराने ट्रेक के विरुद्ध जीवन के विविध अनुभवों की गली में गश्त करना और जहाँ पहुँच कर वह अपनी तरह से चीज़ों की फिर से शिनाख़्त करता है।

प्रेम की बारिश में बूँदों का कोरस गाते हुए कवि ओम नागर इस संग्रह में इश्क के समकालीन सेल्फ़ीनामा तक भी गए हैं। जहाँ 'हम न दरिया में डूबेंगे सनम' का अहद है तो 'कभी तेरी जन्नत का अँधेरा हो' कर प्यार का पूरे का पूरा इंद्रधनुष पाने की तलब भी।

कवि की भाषा का अनूठापन यहाँ यूपीयन हिंदी से इतर हाड़ौती के आत्मीय संस्पर्श से कविताएँ रचने में भी है। प्रेम जैसे आदिम आवेग को कवि ओम नागर ने यहाँ जिस ललित ललाम आत्मीय ढंग से रचा-सिरजा है-यक़ीनन वह रश्क करने जैसा ही है।

❐❐❐

मोबाइल : 09460677638
ई-मेल: omnagaretv@gmail.com

# नई पुस्तक

## बारह चर्चित कहानियाँ

**समीक्षक : शहरयार अमजद ख़ान**
**संपादक : सुधा ओम ढींगरा**
**पंकज सुबीर**
**प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर**

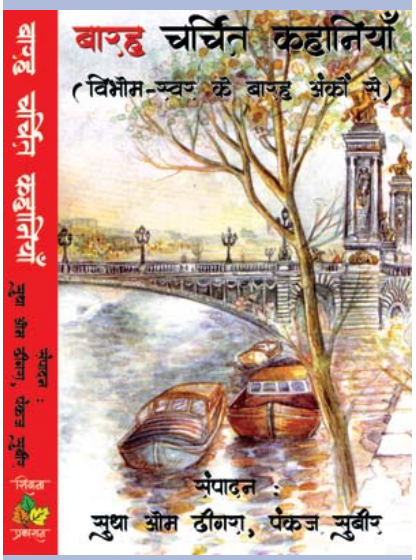


इस पुस्तक में 'शिवना साहित्यिकी' की सहोदर पत्रिका 'विभोम-स्वर' के बारह अंकों की बारह चर्चित कहानियाँ हैं। प्रत्येक अंक से एक कहानी। पत्रिका के तीन वर्ष पूर्ण होने पर इस किताब का प्रकाशन किया गया है। संपादन और चयन सुधा ओम ढींगरा और पंकज सुबीर ने किया है। यह केवल एक संयोग ही है कि चयनित सारे लेखक महिलाएँ हैं। अलग-अलग रंगों, अलग-अलग विषयों पर आधारित कहानियाँ एक ही किताब में पढ़ना पाठक के लिए बहुत सुखद अहसास है। इस किताब में शामिल कहानियाँ हैं- 'कैंपस लव'- आकांक्षा पारे, 'ख़ाली हथेली'- सुदर्शन प्रियदर्शिनी, 'क्या आज मैं यहाँ होती'- नीरा त्यागी, 'छोटा सा शीश महल'- अरुणा सब्बरवाल, 'एक कायर दास्ताँ'- हर्ष बाला शर्मा, 'मेरे बाद'- पुष्पा सक्सेना, 'उसका मरना'- अनिल प्रभा कुमार, 'ढोर'- अचला नागर, 'वह सुबह कुछ और थी'-डॉ. हंसा दीप, 'तवे पर रखी रोटी'- डॉ. विभा खरे, 'नाच-गान'- उर्मिला शिरीष, 'ऑरेंज कलर का भूत'- पारुल सिंह।

❐❐❐

# पुस्तक समीक्षा

## यात्राओं का इन्द्रधनुष

**समीक्षक : प्रो. शोभा जैन**

**लेखक : ज्योति जैन**

**प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर**

'यात्राएँ थकाती नहीं बल्कि नई उर्जा से भर देती है।' ज्योति जैन के सद्य: प्रकाशित यात्रा वृतान्त 'यात्राओं का इन्द्रधनुष' में उल्लेखित यह पंक्ति उनके यायावरी मन को को असीम संतुष्टि से सराबोर करती प्रकृति की सौन्दर्यमयी जिज्ञासा से विमुग्ध होकर प्रकृति में भी सचेत उर्जस्व सत्ता का अनुभव करती दिखाई पड़ती है। यायावरी की पहली शर्त ही यही है कि विचरते रहें यह विचरण नवानुभूति बनकर मन को राहत प्रदान करता है।

प्रकृति और मनुष्य के अंतर्संबंधों की सुखद सुंदर अनुभूति को व्यक्त करते समीक्ष्य संग्रह में लेखिका ने अवकाश लेते हुए कैलाश मानसरोवर, लेह-लद्धाख, सिक्किम, केरल, तारकली, थाईलैंड और झाबुआ की अपनी यात्राओं के सुंदर चित्रण को शब्दबद्ध किया है। अपने शीर्षक को सार्थकता देती कृति में केवल यात्राओं की सुखद अनुभूति को नहीं उकेरा है अपितु कुदरत के कारनामों को भी कलमबद्ध किया है बकौल पर्यावरणविद भालू मोढ़े -''सीमेंट-कांक्रीट के जंगलों में आबाद होते शहर और उससे प्रभावित होती हमारी आबोहवा के संकट किसी से छुपे हुए नहीं है। पहाड़ों, झरनों, झीलों, जंगलों से किस तरह के करिश्मे प्रवाहित होते हैं यह तो उनके निकट जाकर ही जाना जा सकता है।'' कृति की भूमिका में उल्लेखित उक्त पंक्तियाँ इस बात का स्पष्ट संकेत देती है प्रकृति और मनुष्य को भिन्न करके नहीं देखा जा सकता।

प्रकृति के निकट जाने का आग्रह करती समीक्ष्य कृति में यात्राओं के अनुभव को जितनी ख़ूबसूरती से शब्दों में बाँधा है उतनी ही ख़ूबसूरती से उनके स्थलों का मनभावन चित्र भी अंकित किया, जो निश्चित ही स्थलों की यात्रा करने का आकर्षण जागते हुए इतिहास बोध भी देते हैं; मसलन -''चारों ओर बर्फ के बीच झाँकते हुए काले पत्थर ऐसे चुम्बक थे जो हमें अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे।''(पृ.सं.9) कैलाश मानसरोवर की दैवीय अनुभूति में प्रसिद्ध पोटाला पेलेस, चोखंग टेम्पल, के वर्णन उनेक इतिहास बोध से वृतांत को सम्पन्न बनाते हैं, तो इतिहास की कुछ मान्यताओं, प्रतीकों और रहस्यों की सारगर्भित सुंदर व्याख्या भी प्रस्तुत करते हैं। चोखंग टेम्पल के संदर्भ में वे लिखती हैं -'कुछ प्रतिमाएँ बेहद डरावनी थीं, जिनके बारे में पता चला कि वे रक्षक देवताओं की मूर्तियाँ हैं। माना जाता है इन देवों के चेहरे डरावने इसलिए हैं क्योंकि मृत्यु के बाद परलोक में जाने के बाद मनुष्य ऐसे चेहरे को देखकर डरे नहीं बल्कि उन्हें अपना रक्षक महसूस करे।'(पृ.15)बुद्ध के साथ आठ बोधिसत्व सहित कई प्रतिमाएँ चोखंत टेम्पल की उत्कृष्ट कला का परिचय देता है। इस प्रकार कैलाश की विरल अनुभूति को शिवमय करती अनुभूति से स्वयं को मुक्त न करने वाली लेखिका विकल मन से इस यात्रा के दोहराव को अपने में समेटे आगे बढ़ती हुई चकित कर देने वाले सौन्दर्य लेह-लद्दाख के अप्रतिम वर्णन में अनेकता में एकता को चरितार्थ पाती है। कुदरत की ख़ूबसूरत कारीगरी के विषय में वे लिखती हैं -समुद्र तट को छोड़ दें तो बर्फीली घाटियों से ढके पहाड़, हरियाली चूनर जैसे सिर से खींच ली हो, ऐसे भूरे, बंजर, पत्थरों से पटी विशाल पर्वत शृंखलाएँ, हज़ारों फीट की ऊँचाई वाले पर्वतों के बीच बेहद ख़ूबसूरत घाटियाँ, कल-कल करते ठंडे झरने, काँच की तरह साफ़ व मटमैली नदियाँ, किसी रेगिस्तान की तरह बिछी रेत, पठार और उस पठार में ख़ूबसूरत झील।'(पृ.सं.23)

लेखिका ने इन अनुभवों में लद्दाख के भोलेपन, निष्कपटता, सहयोगी रवैये, फ़ौजियों का जज़्बा, उनकी देशभक्ति को चलचित्र की भाँति निगाहों में समेटकर, वहाँ की स्थानीय भाषा को अपने अनुभवों में साथ लेकर कुछ इस तरह शब्दबद्ध किया है, जो पाठकों के मानस पटल पर एक सौन्दर्यमय चित्र अंकित कर देता है। वहीं सिक्किम की यात्रा में सूर्योदय के अलौकिक दृश्य से लेकर उसकी रश्मियों से चकाचौंध होती कंचनजंघा सहित अन्य बर्फीली पहाड़ियों का वर्णन पाठक को प्रकृति के रस में डुबो देता है। जहाँ कुदरत की नियामत को पेश करता सम्पन्नता और पूर्ण साक्षरता के लिए जाने जाते केरल की यात्रा में सुखद आश्चर्य की अनुभूति देते नारियल के वृक्षों की कतारें, धरती के वैभव को नया आयाम देती दिखाई पड़ती है; वही धरती की सुन्दरता से मंत्रमुग्ध करता 'स्पाइस गार्डन' मसालों को रसधार में डुबोता श्रेष्ठ को निहार लेने जैसी अनुभूति दे जाता है।

तारकली-गोवा में अपने वाटर स्पोर्ट्स के रोमांच के साथ ज्योति जैन अपने स्वप्न को शब्दों के विचरण से कुछ बाहर लाती हैं, जिसमें 'एडवेंचर ग्रुप आफ़ इंदौर' के ज़िक्र में उन्होंने लिखा है - इस ग्रुप के माध्यम से 'जेब में सपने भरकर स्कूबा ड्राईविंग व पेरोसेलिंग के जरिए उन्हें पूरा करने चल पड़ी'(पृ.सं.51)। अपने

अगले पड़ाव सोना उगलने वाली भूमि थाईलैंड में भारतीय संस्कृति के प्रभाव के साथ वहाँ की आर्थिक व्यवस्था, चरित्र एवं देश प्रेम के परिप्रेक्ष्य में सम्पन्नता भी उनके अनुभवों का हिस्सा बनी। जिसमें विदेशों के स्वानुशासन और सड़क स्वच्छता को उन्होंने कृति में विशेष रूप से उल्लेखित किया। सबसे अंत में पर्यावरण क्रांति के अग्रदूत के रूप में 'झाबुआ' कुछ इस तरह रेखांकित किया है -ज़िंदगी आनंद के साथ जीना, कड़ी मेहनत के बाद रोटी -भाजी में भरपूर तृप्ति .....बहुत कुछ सीखने की ज़रूरत तो हम शहरी लोगों को है। झाबुआ के आदिवासियों को शहरी प्रांजल की प्रेरणा स्रोत के रूप में देखती लेखिका ने उनके आपसी सामंजस्य और परम्परा के प्रति समर्पण को कुछ इस तरह उकेरा है-- गेती-फावड़े व तगारी के साथ अपने आजीविका चलाते 'हालमा' परम्परा (भीली परम्परा) को निभाते ये भीली सबके साथ सामंजस्य बैठाने की प्रेरणा देते हैं। हाथी पावा क्षेत्र में फैले आदिवासी जो आर्थिक उन्नति के लाभ से वंचित रहने के बाद भी अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत हैं, जो इस यात्रा वृतान्त को एकदम उर्जस्वित एवं सकारत्मक अंत देते हैं।

समग्रत: मनुष्य की प्राकृतिक विरासत का अभिषेक करती और जीवन को गतिमान बने रहने का सन्देश देती कृति इस विधा को नया आयाम देती है। यात्रा के दौरान और पूर्व आने वाली समस्याओं और सावधानियों का उल्लेख भी लेखिका ने इसमें कुशलता पूर्वक किया है, जो निश्चित ही उपयोगी है। संक्षेप में कहें तो कृति में उल्लेखित प्रकृति की समस्त नयनाभिराम विविधता जीवन के विविध रंगों में सहज, सरल, विमल बने रहने के साथ प्रकृति की नि:स्वार्थ उपादेयता से प्रेरित होने का आग्रह करते हुए ऐसे चित्र प्रस्तुत करती है कि कब लेखिका की यह यात्रा पाठक की अपनी यात्रा बन जाती है, पता ही नहीं चलता। यही कृति की सार्थकता है।

❐❐❐

'शुभाशीष' 201-A/369 सर्वसम्पन्न
नगर,इंदौर पिन-452016
मोबाइल : 9424509155
ई -मेल : idealshobhav@gmail.com

# पुस्तक चर्चा

## शिगाफ़

**समीक्षक : शशि बंसल**
**लेखक: मनीषा कुलश्रेष्ठ**
**प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन**

शिगाफ़ यानी दरार ... ज़मीन की दरार, दीवार की दरार, दिल की दरार ... उपन्यास की नायिका अमिता जो कश्मीर से निष्कासित हिन्दू है, अपने भीतर इसी दरार को पाटने की कोशिश करती है, जो रह-रह कर रिसती है। अमिता काश्मीर से विस्थापन के दर्द को रत्ती भर भूल नहीं पाती। उसके स्वप्नों में, ख़्यालों में उसका बचपन, कश्मीर की गलियाँ, ख़ूबसूरत वादियाँ, अपनी जड़ों से विस्थापन का दर्द, चलचित्र की भाँति चलता रहता है। इस उपन्यास को पढ़कर सहज ही समझा जा सकता है उस दर्द को, विसंगति को, सोच को, जो यह समझती है कि कश्मीर से सिर्फ़ हिन्दू ही खदेड़े गए। वहाँ रह गए मुस्लिम समुदाय ''जो स्वयं भी शिया-सुन्नी जैसी कई जातियों में विभक्त हैं'' को कुछ नहीं सहना पड़ा। लेखिका ने इसे एक बहुत ही सटीक उदाहरण से समझाया है, मशरूम और फ़र्न वनस्पति के माध्यम से। वाक़ई दो वृक्ष पास-पास उगे हों तो उनकी जड़ें आपस में इतनी गड्ड-मड्ड हो जाती हैं कि पहचानना मुश्किल हो जाता है कौन सी जड़ किस तने की है ? यदि एक को उखाड़ा जाये तो दूसरी खुद-ब-ख़ुद उखड़ जाती है, ज़मीन से बाहर झाँकने लगती है। ठीक वही स्थिति है वहाँ रह रहे बाशिंदों की। वे भी कौन सा चैन की नींद सो पा रहे हैं। उनकी बेटियाँ-बेटे भी कहाँ सुरक्षित हैं? कभी ज़ेहाद के नाम पर कभी सुरक्षा और पूछताछ के नाम पर हर ओर से शोषण हो रहा है। कहीं ज़ुलेखा का पिता है, जो आतंकियों को पनाह देता है थोड़े से लालच की ख़ातिर और उसकी बेटी भी ऐसे ही एक आतंकी से प्रेम कर बैठती है। और अंत में मारी जाती है या ज़िंदा रहती है, इस पर पाठकों को निर्णय लेने के लिए छोड़ दिया गया है। लोग उसके अंत को लेकर तरह-तरह के कयास लगाते हैं और लेखिका उस सच को जानने के लिए अपनी सम्पूर्ण इच्छा शक्ति लगा देती है। कश्मीर के नाम पर ख़ूब राजनैतिक रोटियाँ सेंकी गई। मेरा हिस्सा, मेरा हिस्सा का शोर दोनों ओर से मचाया गया परंतु निदान के नाम पर सात दशक बीतने पर भी सिर्फ़ डुगडुगी ही बजाई गई है।

'शिगाफ़' उपन्यास पूरे काश्मीर का एक ऐसा खाका है जिसे बिना वहाँ जाए, रू-ब-रू हुए बिना ही सहज रूप में समझा जा सकता है। इसे पढ़ते हुए एक पल को भी नहीं लगता कि हम पाठक हैं, बल्कि एक दर्शक की भाँति सब कुछ अपनी आँखों के सामने से गुज़रते हुए देखते हैं, परकाया प्रवेश लेखिका का ही नहीं पाठक का भी होने लगता है। इतना ज्वलंत विषय होने के बाद भी कहीं भी बोझिलता नहीं आती। लेखिका ने जो कहना चाहा है, खुलकर कहा है, पाठकों को कहीं भी उलझाया या संशय में नहीं छोड़ा है। निश्चित तौर पर इसे पढ़ना एक पाठक को मानसिक रूप से तृप्त करता है। लेखिका अपने उद्देश्य में पूर्णरूप से सफल रही हैं। कश्मीर का वो चेहरा जिसे गैर कश्मीरी सतही तौर पर जानता था, इसे पढ़कर महसूसता है कश्मीर को और करीब से जानने को, समझने को। मुख्य कथानकों के साथ अन्य कथानकों को समेटे, हर किरदार -कथानक अपनी पीड़ा वयक्त करते हुए छोटी भूमिका में भी इतना सशक्त है कि ज़रा सा भी कहीं गौण नहीं होता है। किसी भी पात्र को सिर्फ़ कथानक बढ़ाने के उद्देश्य से अनावश्यक ठूँसा नहीं गया है। यथार्थ की पृष्ठभूमि पर लिखा गया यह एक बेहतरीन उपन्यास है।

❐❐❐

संपर्क: J - 61 , गोकुलधाम, अपोजिट सेंट्रल जेल, भोपाल - 462038
मोबाइल : 7697045571, ई-मेल : bansal.shashi98@gmail.com

# पुस्तक समीक्षा

## यादें

**समीक्षक : डॉ. मलय पानेरी**
**लेखक : क़मर मेवाड़ी**
**प्रकाशक : नीरज बुक सेंटर**

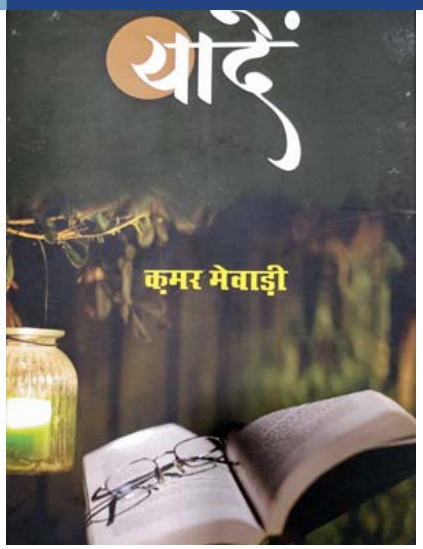


सामान्य तौर पर हम यह जानते रहे हैं कि संस्मरण विधा का संबंध उस अतीत से है जिसे हम वर्तमान में जीते हैं। एक साधारण व्यक्ति भी अपने जीवन में कुछ यादों को सँजोता है। वे यादें या तो कटु होती हैं या फिर मधुर होती हैं। इसीलिए स्मृतियों की जीवंतता मनुष्य या साधारण सामाजिक प्राणी के लिए एक सुकून होती हैं। हम अपने बीते समय की यादों को किस प्रकार रचनात्मक रूप प्रदान करते हैं–यह बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। इस विधा में किसी भी सच के स्वीकार की अनिवार्यता होती है। हाँ, यह बहुत स्पष्ट है कि किसी रचनाकार के जीवन के सुखद–दुखद क्षण उसी के होते हैं, किंतु वह अपनी रचनात्मक कुशलता से साधारण पाठक को भी अपने साथ ले लेता है। इस कला में बहुत निपुण हैं प्रसिद्ध कथाकार,कवि क़मर मेवाड़ी। एक कथाकार के रूप में उनकी पहचान बहुत व्यापक है और साहित्य की दूसरी विधाओं में भी उनकी रचनाएँ खूब पढ़ी जाती रही हैं।

'यादें' क़मर मेवाड़ी का हाल ही में प्रकाशित संस्मरण–संग्रह है। इसमें उन्होंने अपने गुज़र चुके समय के उन साथियों को बहुत सम्मान से याद किया है, जिनसे उन्हें अपने जीवन के विविध प्रसंगों में संबल और हताशा मिली। इस संग्रह का आरंभिक संस्मरण प्रसिद्ध कवि प्रो. नंद चतुर्वेदी पर है, जिसमें वे नंदबाबू की छवि को रेखांकित करते हुए अपने रचनात्मक जीवन में उनकी भूमिका को ज़्यादा याद करते हैं और यत्र–तत्र आए प्रसंगों में नंदबाबू की विद्वता के साथ–साथ उनके विनोदी स्वभाव को भी पूरी तन्मयता से उकेरा है। आगे के संस्मरणों में लेखक ने एक पूरी सुखद यात्रा की तस्वीर खींची है। इसमें उन्होंने हरीश भादानी से आलमाशह ख़ान के साथ स्वयं की उस आकस्मिक भेंट का उल्लेख किया है, जिसमें नई स्मृतियों का संसार बन सका है। इस संग्रह में लेखक ने अपने उन सभी दोस्तों और दोस्तनुमा इंसानों को भी याद किया है, जिनसे उनका आत्मीय या साधारण स्वभाव भी उन्हें प्रभावित कर गया है। इस संग्रह में लेखक ने कई रचनाकारों को, उनके अन्तर्मन को पाठकों के लिए विशेष पठनीय बनाया है।

क़मर मेवाड़ी मूल रूप से कथाकार के रूप में जाने जाते हैं, इसलिए निश्चित रूप से हिन्दी के समकालीन कथाकारों से उनके संबंध रचनात्मक और इससे इतर भी रहे हैं। संस्मरणों में ऐसे ही कोई व्यक्ति चित्रित नहीं होता है, उसके चित्रण की भूमि नम यादों से उर्वर होती है, क़मर जी के लिए कथाकार स्वयंप्रकाश,कमलेश्वर और राजेन्द्र यादव स्मृतियों के केन्द्र रहे हैं। क़मर जी के लिए 'संबोधन' का प्रकाशन भी कथाकारों से मजबूत रिश्तों का कारण रहा है। कुछ ख्यात रचनाकारों से पत्रिका चलती रहती है वहीं कुछ रचनाकार पत्रिकाओं की प्रतिष्ठा से चलते रहते हैं। लेकिन 'संबोधन' के लिए क़मर जी ने ऐसे संतुलन का कभी प्रयास नहीं किया चाहे कितना ही नुकसान कभी उठाना पड़ा हो। आचार्य निरंजननाथ से अपनी भेंट को लेखक ने इसी प्रसंग के लिए शब्दबद्ध किया। एक छोटे से आग्रह पर रचना भेज देने की साधुता के लिए वे स्वयंप्रकाश के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करना भी अपनी नैतिक ज़िम्मेदारी समझते हैं। ठीक इसी तरह क़मर जी ने प्रो. हेतु भारद्वाज एवं अकादमी के पूर्व अध्यक्ष वेद व्यास से अपनी अटूट मैत्री को भी रेखांकित किया है। लेखक संगठनों में रहकर कभी–कभी मन की दूरियाँ होना बहुत सामान्य–सी बात होती है क्योंकि विचारधारा के अन्तर से मन के सामीप्य की कठिनाई होती है। ऐसी परिस्थितियों से भी क़मर जी निबट लेते हैं और रचनाकार को, उसकी उच्चता को शिखर पर रखते हैं।

इस संग्रह के संस्मरण सामान्य पाठक को उस समय से जोड़ते हैं जो विशुद्ध रूप से लेखक का भोगा हुआ है। लेखक के लिए भी यह एक चुनौती जैसा ही है कि वह आप–बीती को कैसे सरस बनाकर पठनीय बनाए। क्योंकि किसी लेखक के अभिन्न मित्रों अथवा शाश्वत रिपुओं से पाठक का कोई लेना–देना नहीं होता है। फिर भी पाठक उन्हें पढ़कर कुछ अनुभव कर सके–यह संस्मरण लेखक की ही कला होगी। क़मर जी ने इसमें प्रसिद्ध कथाकार काशीनाथ सिंह को याद करते हुए उनके प्रभावों को बेझिझक पाठकों से साझा किया है। लेखक का अपना परिवेश, प्रकृति, स्वभाव, शाब्दिक प्रस्तुतीकरण, प्रिय–अप्रिय प्रसंगों का स्वीकार्य आदि ही संस्मरण को अधिक सच्चा बनाते हैं। क़मर जी ने इस विधा की गुणात्मक रक्षा करते हुए घटित प्रसंगों के सच को सच ही रहने दिया है। अपने मित्रों की मुलाकातों पर कहीं भी लीपा–पोती नहीं की है। इसका स्पष्ट प्रमाण है कथाकार स्वयंप्रकाश से उनकी दोस्ती के वर्णित प्रसंग, जिसमें वे रिश्तों की ऊष्मा को कम पड़ता अनुभव करते हैं। ये स्थितियाँ लेखक को टीस देती है फिर भी वो अपने मूल्यांकन को ही संदिग्ध मानते हैं।

आत्मीय व्यक्तियों से संपर्क के कोई भी अवसर क़मर जी चूकना नहीं चाहते चाहे उन्हें कुछ मिनिट किसी व्यस्त चौराहे पर ही क्यूँ न मिल जाए। वे अपने रिश्तों का तुरंत नवीनीकरण कर देना चाहते हैं। क़मर जी के रिश्तों का अकाउंट अपडेट रहता है, इसीलिए वे हमें समय के साथ दिखाई देते हैं। क़मर मेवाड़ी कहीं खड़े हैं तो भी और यात्रारत हैं तो भी संस्मरण बनेगा। स्वभाव का खरापन किसी भी रचनाकार को अधिक ईमानदार बनाता है। जीवन की घटनाओं के संदर्भ लेखक को लेखन के लिए विवश करते हैं। और यदि कोई लेखक किसी नौकरी से संबंद्ध है तो उसके लिए लेखन की स्थितियाँ अधिक सुलभ होती हैं। उसे हमेशा नई-नई कहानियों से गुज़रना होता है। क़मर जी का जीवन भी इसी प्रकार का रहा है, उन्हें कच्चे माल की ढुलाई नहीं करनी पड़ी है। नौकरी की व्यस्तता और जटिलता ने उन्हें एक परिपक्व रचनाकार बनाया है। घुमन्तू स्वभाव रचनाकार का न हो तो भी नौकरी का सिस्टम उसे बना देता है।

क़मर जी ने अपने जीवन की हर यात्रा की क़ीमत वसूल की है नहीं तो उन्हें एक इनसाइक्लोपीडिया के रूप में डॉ. महेन्द्र भानावत नहीं मिलते और अपने समय के युवा कवि राजकमल चौधरी से भी वे वंचित रहते। लगातार विचरण करते रहने के कारण क़मर जी ने बहुतों से संपर्कों का दायरा विस्तारित किया और अपने लेखन की श्रीवृद्धि भी की। संस्मरण की यही सफलता भी है कि वह पाठकों को कितना आत्मसात कर पाता है। क़मर जी के ये संस्मरण बेहद उनके होते हुए पाठक-प्रिय हुए हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि उनके संस्मरणों की भाषा बहुत सरल और समझ में आने लायक है। पाठकों को कोई भी घटना-प्रसंग बोझिल मालूम नहीं होते हैं। कथाकार क़मर मेवाड़ी की 'यादें' अब स्मृतियों के ख़ज़ाने से बाहर आकर सुधि पाठकों की हुईं। इन संस्मरणों में लेखक ने रचनात्मक नैतिकता का बहुत अच्छा परिचय दिया है।

❐❐❐

431/37,पानेरियों की मादड़ी,उदयपुर-313002 (राज.)
मोबाइल : 09413263428

# पुस्तक चर्चा

## चौपड़े की चुड़ैलें

**समीक्षक : अशोक अंजुम**

**लेखक : पंकज सुबीर**

**प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर**

एक अरसे बाद कहानियों का कोई ढंग का संग्रह क़िस्सागोई के बेहतरीन शिल्पी पंकज सुबीर का 'चौपड़े की चुड़ैलें' पढ़ गया! भई क्या सूत्र जोड़ते हैं... अद्भुत... नए, अनछुए विषय.... मुहावरों/कहावतों की रोचक दुनिया.... भाषा पर मजबूत पकड़ ....और अंत तक जिज्ञासा बनाए रखना.... न जाने कितनी खूबियों की शानदार नक़्क़ाशी इन की कहानियों में दिखाई देती है! संग्रह की पहली कहानी है 'जनाब सलीम लंगड़े और श्रीमती शीला देवी की जवानी' ! दैहिक वर्जनाओं को लेकर बुनी यह कहानी शीला की दैहिक आवश्यकता और सलीम लंगड़े का उस ताने-बाने में अपनी जान गँवा बैठना बड़े ही रोचक तरीके से हमारे सामने आता है। 'अप्रैल की एक उदास रात' संग्रह की दूसरी कहानी है। डॉक्टर शुचि भार्गव द्वारा डी डी सर से शादी करने के कारण का जब रहस्योद्घाटन होता है तो चिंकी पल्लवी ही नहीं....चौंकती बल्कि पाठक भी सकते में रह जाता है। तीसरी कहानी 'सुबह अब होती है...अब होती है...अब होती है' में समर द्वारा एक 78 वर्ष के व्यक्ति की हत्या का उसके सुपीरियर द्वारा इंवेस्टिगेशन करना और अंत में जाँच रिपोर्ट को बदल देना, सुकून देता है। संग्रह की शीर्षक कहानी 'चौपड़े की चुड़ैलें' को वर्ष 2016 का राजेंद्र यादव हंस कथा सम्मान प्राप्त हो चुका है। हवेली की स्त्रियों का जीवन यापन के लिए चुड़ैल रूप में प्रचारित होना और अंत में पोर्न साइट के तेजी से बढ़ते मकड़जाल को बड़े शानदार ढंग से सांकेतिकता के साथ स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं, 'अब वे ब्रह्मांड की चुड़ैलें हो चुकी हैं।' कहानी का अंत कवितामय है।

संग्रह की पाँचवी कहानी 'मैं इन दिनों पाकिस्तान में रहता हूँ' सांप्रदायिक सद्भाव की जीवंत मिसाल है। इंसानियत के जज़्बे को खाद-पानी देती ये कहानी कई बार मन की तप्त ज़मीन को करुणा की बूँदाबाँदी से भिगोकर एक बेहतरीन ख़ूबसूरत वातावरण का निर्माण कर देती है। कस्बे वालों से 'भासा' के मधुर रिश्ते... कोई मज़हबी बंधन नहीं। उन्हीं 'भासा' का भोपाल में बसने के बाद यह कहना कि 'मैं इन दिनों पाकिस्तान में रहता हूँ' मज़हब के नाम पर बढ़ती खाइयों के बीच एक सच्चे इंसान का दर्द बयाँ कर जाता है। छठी कहानी 'रेपिश्क़' भी रिश्तों के टूटने और जुड़ने की कहानी है। कहानी की नायिका आशिमा का रेप होना और उसका यह दृढ़ निश्चय करना कि वह रेप करने वाले को ढूँढ़ कर रहेगी। सातवीं कहानी 'धकीकभोमेग' फ्राड बाबाओं के मायाजाल की कहानी है। उनके कुत्सित साम्राज्य की कहानी है। आठवीं कहानी 'औरतों की दुनिया' में कोर्ट -कचहरी के चक्कर में रिश्तों का बिखरना और परिवार की औरतों द्वारा रिश्तों को सहेजना पढ़ते-पढ़ते मन में गीलापन भर देता है। गला कई बार रुँधता महसूस होता है।

'चौपड़े की चुड़ैलें' की हर कहानी कथ्य के स्तर पर लेखक के विराट अनुभव और दृष्टि की परिचायक है। चित्रात्मक शैली के प्रयोग के कारण पाठक कहानी को सदैव फ़िल्मी पर्दे की तरह घटित होते पाता है। अधिकांश कहानियों में अंतरंग संबंधों की चर्चा है किंतु उस चर्चा के लिए लेखक ने जिस सांकेतिक भाषा का प्रयोग किया है वह लेखक के कद को ऊँचा करती है। कहानियाँ अंत में जो रहस्योद्घाटन करती हैं, वह पाठक को हतप्रभ कर देता है- कुछ ऐसे -अरे ये!? ...ऐसा!?... वाह!?

❐❐❐

स्ट्रीट-2, चंद्रविहार कॉलोनी (नगला डालचंद) क्वारसी बाईपास, अलीगढ 202001
मोबाइल 9258779744

# पुस्तक समीक्षा

# झूठ बोले कौवा काटे

**समीक्षक : पंकज त्रिवेदी**

**लेखक : बीनू भटनागर**

**प्रकाशक : नीरज बुक सेंटर**

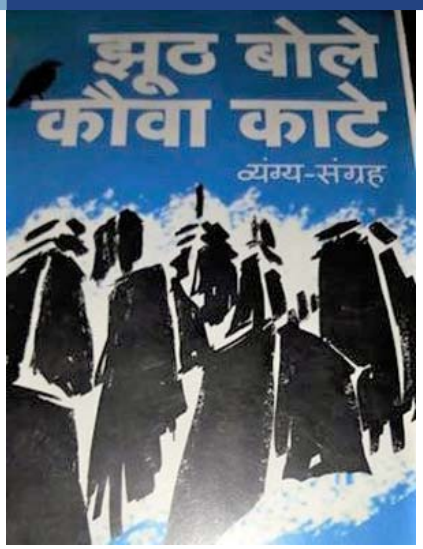




'झूठ बोले कौवा काटे' किसी व्यंग्य संग्रह के शीर्षक के रूप में हमें मिले तो मान लीजिए कि लॉटरी लग गई। अन्य विधाओं में रचना के शीर्षक से बिलकुल अलग और चुनौतीपूर्ण है, तो वो व्यंग्य रचनाओं के संग्रह का शीर्षक है। कोई भी व्यंग्यकार अपनी किताब के शीर्षक पर ही आधी बाज़ी मार लेता है और सजग व्यंग्य पाठक उस व्यंग्यकार का पूरा एक्स-रे देख लेता है। बीनू भटनागर में एक विशेष 'सेन्स ऑफ़ ह्यूमर' का ट्यूमर है। जो कभी भी किसी घटना या बात को लेकर इस तरह से उभर आता है कि चिंतित पाठक उस ट्यूमर के फटने से ठहाकेदार हँसी के बीच में भी अपने दिमाग़ का संतुलन रखते हुए उस व्यंग्य की अहमियत को बहुत गंभीरता से समझने के काबिल हो जाता है।

व्यंग्यकार जब भी किसी मुद्दे पर अपने व्यंग्य आलेखन के लिए कलम लिए बैठता/बैठती है, तब उस व्यंग्य की तीक्ष्णता, तीखापन और तीव्रता को ज़्यादा ही प्रभावक बनाने के लिए वो कहावतों या मुहावरों का आश्रय लेता है। मेरी दादी माँ कहती थीं; "जितना देखो उतना खाओ नहीं, जितना आता है, उतना कहो नहीं !" आप कहेंगे कि इसमें व्यंग्य है? व्यंग्य सिर्फ ठहाके लगाने का माध्यम नहीं है, उसके लिए चुटकुले हैं। जीवन की गंभीर समस्याओं को भी व्यंग्य के द्वारा कहने से न सिर्फ आनंद आता है; बल्कि पाठक की परिपक्वता के आधार पर गहन सोच-विचार करने के लिए मजबूर भी कर देता है। ऐसा होना ही व्यंग्य की सफलता है।

समाज संरचना में विचार की समृद्धि के साथ पर्यावरण मानव जीवन के लिए अनिवार्य है। इस देश में आज़ादी से आज तक के पर्यावरण मंत्री आशंका के घेरे में है, क्यूँकि गौरैया, तोता, मैना या कौवे को बचाने का ज़िम्मा उनके सर पे था! ग्लोबल वार्मिंग कुदरती नहीं, इंसान की ग़लतियों का परिणाम है। उस पर इस रचना के अंश को पढ़िए –

महानगरों में तो गौरैया, तोता मैना क्या,
कौवे भी अब दिखते नहीं।
"झूठ बोले कौवा काटे, काले कौवे से डरियो,
मैं मैके चली जाऊँगी तुम देखते रहियो",
जैसी धमकी भी अब पत्नी दे तो कैसे,
जब कौवे दिखते नहीं।

व्यंग्यकार बीनू भटनागर पर्यावरण पर गंभीरता से अपनी बात कहती है मगर एक पत्नी अपने पति को 'मैके जाने की धमकी' को माध्यम बनाती है।

'आत्मव्यथा' रचनाकार और संपादकों के बीच रचते सेतु का सत्य उजागर करता है। समसामयिक रचनाएँ जब समय के बाद छपती हैं, तब रचनाकार का दु:खी होना स्वाभाविक है। दीपावली की रचना का अंक होली पे आए और ग्रीष्म का आलेख शीतलहर में काँपते हाथों से पढ़ा जाए, तो पाठकों की मनोदशा भी समझने के लिए संपादकों पर किया गया तंदुरस्त व्यंग्य मन को भा जाता है। बीनू भटनागर की विशेषता है कि अनिवार्य शब्दों के बीच में 'वर्णनात्मक राग' आलापती नहीं हैं।

हमारे देश में विविध धर्मगुरुओं के लिए विविध उपाधियों से नवाज़िश होती हैं। आज के दौर में बिना इन्वेस्टमेंट कोई धंधा अगर है तो 'धर्म के नाम पाखण्ड' का है। 'बी.ए. ऑनर्स इन बाबागिरी/मातागिरी' – व्यंग्य उसी धरातल से है, जिसमें अपने शिष्यों के नाम भोले से जनों का ब्रेन वॉश करके उन्हें अपने सम्प्रदाय में प्रलोभन से खींचना और पूरे प्रोजेक्ट में शिष्यों (छात्रों) को अपनी योग्यता को प्रस्थापित करने का मौका दिया जाता है।

'दिल और दिमाग़ की जंग' के साथ बीनू भटनागर – 'दिल विल प्यार व्यार मैं क्या जानूँ रे' – गीत को याद करती हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से दिल का कार्य पूरे शरीर में खून पहुँचाने का है। मन विचार करता है। फिर भी हम जो भी कहते हैं वो 'दिल से !' निर्दोष दिल पर प्यार करने का ठीकरा फोड़ने की बात कहकर अलग विषय पर सफल व्यंग्य दिया गया है।

'कवि और कल्पना' में कल्पना जगत् एवं यथार्थ के धरातल में झूलते कवि की मन:स्थिति पर बड़ी कोमलता से व्यंग्य को नज़ाकत से पेश किया गया है। सद्य:स्नाता महिला की जुल्फ़ को देखकर कल्पना में रहता कवि जब अपनी साली के आने से आलू, टमाटर, गोभी लेने जाता है तब यथार्थ से जुड़कर फिर कल्पना में डूब जाता है। 'अकल बड़ी या भैंस..' के द्वारा महिलाओं के पुरुष के समकक्ष होने की विचारधारा पर पैना व्यंग्य है। गाय से ज़्यादा भैंस की ज़्यादा दूध देने क्षमता के बावजूद उसे गाय जितना सम्मान नहीं मिलता और उसे पाने के लिए संगठन बनाया जाता है। समाज में बिना सोचे-समझे अधिकार जमाने के लिए संगठनों की रचना करके शोर

मचाने वालों के लिए यह व्यंग्य एक तमाचा है!

'मैं और मेरा बेटा' संस्मरणात्मक व्यंग्य, 'रॉबोट' पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह और सोनिया गाँधी का प्रतीकात्मक व्यंग्य है। 'टी.वी. का लड्डू' में ज़रूरतों के अनुसार सीरियलों में कलाकारों की छुट्टी करने के लिए कथानक का तोड़-जोड़ करके अपने निहित स्वार्थ के लिए दर्शकों की भावनाओं से खिलवाड़ होता है वो दर्शाया गया है। ऐसे कार्य की जननी (अविवाहित) एकता कपूर है। 'उभरते कलाकार' में नींद में देखे सपने का टूटना और यथार्थ से जूझने का प्रभावक व्यंग्य है। 'फुलझड़ियाँ' में राहुल गाँधी, मोदी एवं केजरीवाल के राजकीय स्टंट एवं तुकबंदी से जनता को मूर्ख बनाने के उनके अंधे विश्वास को तोड़ता हुआ व्यंग्य है। क्यूँकि 'पब्लिक है ये सब जानती है, पब्लिक है..!'

'एक और पीपली लाइव' में पानी की बोरिंग व्यवस्था और बच्चों का गिरकर मर जाना, 'नाम में क्या रखा है' में नाम से जुड़े ज़ायकेदार मसले पर मसाले छिड़के हैं। 'मेरे नाम की कहानी', 'दिल्ली पुस्तक मेला के दोहे', 'फेसबुकी इश्किया शायरी' मज़ेदार व्यंग्य हैं। 'कल आ जाइए' में सरकारी दफ़्तरों में टाला मटोली के खेल पर व्यंग्यकार की तिरछी नज़रों के तीर चले हैं। बीनू भटनागर के शब्दों में कहें तो 'नोटबंदी-दोहे' में काले धन पर मोदी के द्वारा लगाई गई फ़ेयर लवली है, जो काले को श्वेत करती है। (?) अंत में बीनू भटनागर 'अगड़ों में पिछड़ें और पिछड़ों में अगड़े' के द्वारा अपनी ही जाति का ज़िक्र करते हुए कहती हैं कि हम 'भटनागर' कायस्थ होते हैं, जिन्हें मनु (भगवान) महाशय ने चारों में से किसी वर्ण में नहीं रखा है। मतलब कि व्यंग्यकार समाज और आसपास के किरदारों को लेकर व्यंग्य ज़रूर आलेखता है मगर जब खुद को भी कटघरे में खड़ा करके व्यंग्य को ज़्यादा ही पुष्ट बनाने लगें, तो उनकी पुख्तगी और परिपक्वता पर आशंका नहीं होनी चाहिए।

❑❑❑

गोकुलपार्क सोसायटी, 80 फूट रोड,
सुरेन्द्रनगर 363002 (गुजरात)
ई-मेल : vishwagatha@gmail.com

# पुस्तक चर्चा
# तुमसे उजियारा है

**समीक्षक : सुनीता काम्बोज**
**लेखक : ज्योत्स्ना शर्मा**
**प्रकाशक : हिंदी साहित्य निकेतन**

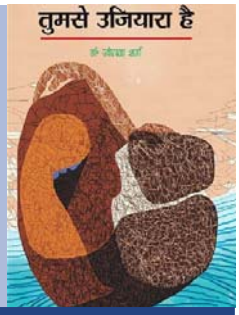


ज्योत्स्ना शर्मा का एकल हाइकु-संग्रह और एकल दोहा-संग्रह के बाद, उनका माहिया छन्द-संग्रह प्रकाशन में आया है। ज्योत्स्ना शर्मा की पुस्तक में संकलित माहिया इंद्रधनुषी रंगों की तरह अपनी ओर आकर्षित करते हैं। उनके काव्य में जीवन-दर्शन, प्रकृति-प्रेम, मरती संवेदनाओं का दर्द आदि भाव के दर्शन होते हैं। माहिया में कभी जीवन की गहन अनुभूतियों की झलक मिलती है, तो कभी हास्य, प्रेम के रंग की रंगोली, तो कभी विरह की व्यंजना है। देशप्रेम से परिपूर्ण माहिया पढ़कर मन द्रवीभूत हो जाता हैं। भाव और शिल्प दोनों ही दृष्टिकोण से यह एक अच्छी कृति है।

माहिया भी पंजाब का एक लोकगीत है। हास्य, माहिया छंद का प्रधान रस है प्रेमी-प्रेमिका या पति-पत्नी की मधुर नोकझोंक में पंजाबी भाषा में अनेक माहिया रचे गए हैं और यही छेड़छाड़ लोकगीतों में लोकरंजन का आधार रही है। उपर्युक्त माहिया प्रेम, मनुहार, मीठी अनबन से सराबोर हैं। पाहन पर दूब उगी/ 'मेल' मिली हमको/ उनकी कल प्रेम पगी।

जीवन को होम किया/ पर ज़िद ने मेरी/ पत्थर को मोम किया।

कवयित्री नए युग में नई तकनीक ''मेल'' द्वारा प्रेमी से प्रेम-वार्ता करती प्रतीत होती हैं। आशावान कवयित्री आत्मविश्वास से भर कर पत्थर को मोम करने का सामर्थ्य रखती है। इन माहिया छन्दों में कवयित्री के स्वाभिमान, दृढ़ निश्चय का परिचय मिलता है। रिश्तों से परिवार और परिवार से समाज कैसे सँवरता है, देखिए-

आँचल की झोली में/ अक्षर ज्ञान मिला/ माँ तेरी बोली में।
चंदा था रोटी में/ माँ कितने किस्से/ गूँथे है चोटी में।
बदरी तो जा बरसे/ सुन, भैया बहना/ राखी पे क्यों तरसे।
दमके नैहर मेरा / खूब सजे भाभी/ शृंगार अमर तेरा।

माँ की ममता का स्पर्श और बचपन के मधुर क्षण याद कर कवयित्री ने मनभावन माहिया रचे हैं। रिश्तों-नातों की मधुरता तथा त्योहारों की सुगंध मानव जीवन को आनन्दमय बना देती है। यह माहिया जीवन के गीतों जैसे प्रतीत होते हैं।

थोड़ी मजबूरी थी/ सीमा की रक्षा/ भी बहुत ज़रूरी थी।
कितनी बरसात हुई/ वीर शहीदों से / सपने में बात हुई।
लिख गीत जवानों के/ जिनके दम पर हैं/ मौसम मुस्कानों के।

लगभग सभी विषयों पर कवयित्री ने महिया रचे हैं। माहिया में कभी जीवन-दर्शन के रंग बिखर जाते हैं तो कभी विरोध के स्वर सुनाई देते हैं। 'नस-नस में घोटला' माहिया द्वारा देश की वर्तमान स्थिति का सजीव चित्रण किया गया है। आज मानव अपने पथ से भटक, यश को अपयश में बदल रहा है। यह देख कवयित्री कलियुग के पथभ्रष्ट मानव का वर्णन करती है। ''तुमसे उजियारा है'' माहिया छंद-संग्रह छंद परम्परा को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगा। आधुनिक कवियों में माहिया जैसे लोकछन्दों की रचना के प्रति यह संग्रह आकर्षण उत्पन्न कर उन्हें संरक्षित करने में बड़ा योगदान देगा। यह आधुनिक रचनाकारों का कर्त्तव्य है कि हमारी अनमोल निधि 'छंद' अपने सही स्वरूप में अगली पीढ़ी तक पहुँचें, उसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु कवयित्री का यह प्रयास अवश्य रंग लाएगा।

❑❑❑

# पुस्तक समीक्षा

## देर आयद

**समीक्षक : दीपक गिरकर**
**लेखक : दिलीप जैन**
**प्रकाशक : बोधि प्रकाशन**

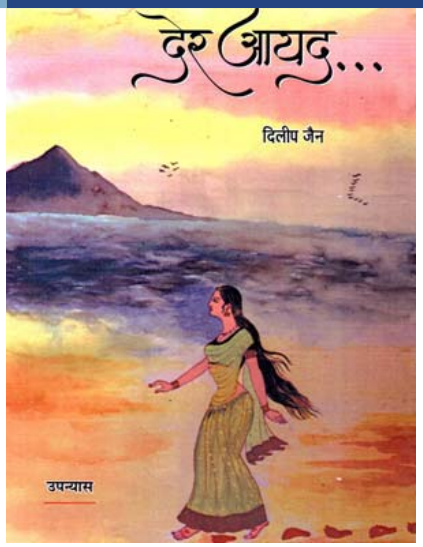


'देर आयद' दिलीप जैन का प्रथम उपन्यास है। दाम्पत्य जीवन में आई दरारों, बिखरावों और अकेलेपन के अँधेरे से रू-ब-रू कराता है उपन्यास 'देर आयद'। 'देर आयद' मध्यम श्रेणी के परिवार के लोगों के जीवन के ताने-बाने को बुनता हुआ एक सामाजिक उपन्यास है। यह हमारे आसपास की दुनिया है। इस उपन्यास में दिखने वाले चेहरे हमारे बहुत क़रीबी परिवेश के जीते-जागते चेहरे हैं। उपन्यास के केंद्र में विधा की मुख्य भूमिका है। यह उपन्यास अत्रेजी, सुविधा, विधा और विपुल इत्यादि पात्रों के जीवन, उनके सुख-दु:ख को बयाँ करता है। उपन्यास में दो अन्य गौण पात्र हैं सुधा और उसका पति। इनके अलावा इस उपन्यास में कपिल, कामवाली बाई कमला और विधा के ननिहाल वाली आंटी के अलावा भी कुछ चरित्र हैं।

विधा और विपुल अपने दाम्पत्य जीवन में सफल नहीं होते हैं क्योंकि उन दोनों के बीच में अहम की दीवार खड़ी होती है। अपने अहम् और हठधर्मिता के कारण विधा अपना दाम्पत्य जीवन दाँव पर लगा देती है। विधा हमेशा अपना तनाव अपनी मम्मी को ट्रांस्फ़र करती रहती है। स्त्रियों ने घर से बाहर निकलकर आत्मनिर्भरता हासिल की है और परिवार की आर्थिक स्थिति को मज़बूत किया है लेकिन इसकी वजह से पारिवारिक ज़िम्मेदारियों का बोझ सवाल खड़े कर रहा है और दाम्पत्य जीवन में खटास बढ़ती जा रही है। विधा अपनी शर्तों पर जीने वाली नारी है। वह अपनी पारिवारिक ज़िम्मेदारियों से दूर भागती है। विधा इस सदी की ऐसी भारतीय महिला का चेहरा है, जो स्वयं ही अपनी जड़ों को काटती है और इस सब में उसकी सहायता करती है उसकी ही अपनी मम्मी सुविधा।

लेखक ने बिना लाग-लपेट के एक समाजशास्त्री की तरह रिश्तों में आई दरारों, बिखराओं और अकेलेपन के अँधेरे को चित्रित किया है। इस उपन्यास में दिलीप जैन ने नौकरीपेशा दंपत्ति की समस्याओं, कलहों को दर्शाया है। यह उपन्यास जीवन के यथार्थ और सच्चाइयों से रू-ब-रू करवाता है। इस सदी के दूसरे दशक में सामाजिक-पारिवारिक यथार्थ और मूल्यों में जो बदलाव घटित हुआ है, जो उत्तर आधुनिकता है, उसको भी पकड़ने की कोशिश है। किस तरह मध्यम वर्ग की नई पीढ़ी पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव पड़ रहा है और शादी जैसा पवित्र बंधन भी ''यूज़ एन्ड थ्रो'' कल्चर का शिकार होता जा रहा है। महिलाएँ नौकरी करके आत्मनिर्भर तो हो रही हैं लेकिन आज़ादी के नाम पर अपनी पारिवारिक ज़िम्मेदारियों से दूर होती जा रही हैं, दाम्पत्य जीवन में संवादहीनता बढ़ती जा रही है, इन सब चीज़ों की पड़ताल इस उपन्यास के माध्यम से हुई है।

इस उपन्यास में पारिवारिक मूल्यों की मुख्य धारा से भटके हुए परिवार की कथा है जिसे लेखक ने अपने ज्ञान व अनुभव से दिशा-निर्देशित करने की कोशिश की है। स्त्रियों ने घर से बाहर निकलकर आत्मनिर्भरता हासिल की है और परिवार की आर्थिक स्थिति को मज़बूत किया है लेकिन इसकी वजह से पारिवारिक ज़िम्मेदारियों का बोझ सवाल खड़े कर रहा है और दाम्पत्य जीवन में खटास बढ़ती जा रही है।

उपन्यास में मौलिकता है। लेखन में कृत्रिमता नहीं है। कथाकार की दृष्टि यथार्थ के भीतरी तहों तक पहुँची है। एक उपन्यास में सामान्यत: छ: तत्व मौजूद होते है - कथानक, पात्र / चरित्र चित्रण, कथोपकथन / संवाद, देशकाल और वातावरण, भाषा शैली, उद्देश्य। इस उपन्यास में ये सभी तत्व मौजूद हैं। उपन्यास की बुनावट और कथा का प्रवाह पाठक को बाँधे रखता है, उपन्यास पठनीय है। क्यों एक स्त्री ही अपने अहम् का त्याग करके अपने पति के पास वापस लौटने का विचार करती है? पुरुष इस तरह की पहल क्यों नहीं करता है?

इस पुस्तक में केवल विधा ही बुढ़ापे में अपने पति के पास वापस जाने का विचार करती है, उसका पति विपुल नहीं। यह समाज की बहुत बड़ी विसंगति है। यह उपन्यास कई विषयों पर सोचने को मजबूर कर देता है, जैसे आज की शिक्षा प्रणाली, बच्चों की परवरिश, बच्चों का सर्वांगीण विकास, युवा पीढ़ी की मानसिकता, भौतिक सुख-सुविधाओं के पीछे भागना, आज की युवा पीढ़ी में धैर्य और सहन शक्ति की कमी इत्यादि। इस उपन्यास को पढ़ते हुए सामाजिक सरोकार स्पष्ट होते हैं।

❐❐❐

28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल : 9425067036
ई-मेल: deepakgirkar2016@gmail.com

# पुस्तक समीक्षा

# नि:शब्द नहीं मैं

**समीक्षक : प्रो. बी. एल. आच्छा**

**लेखक: नीरज सुधांशु**

**प्रकाशक: वनिता प्रकाशन**

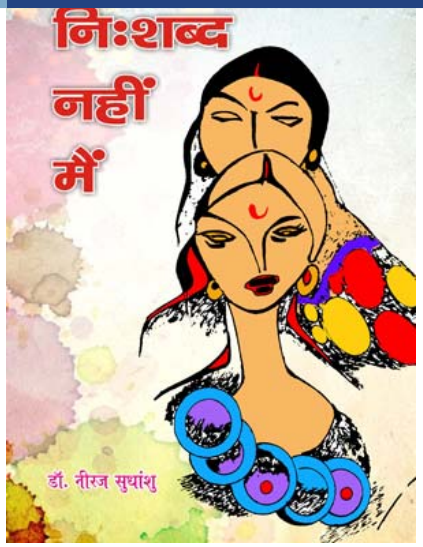


'नि:शब्द नहीं मैं' नीरज सुधांशु का पहला लघुकथा संग्रह है। इन लघुकथाओं में आक्रोश के तेवर हैं, ना बँधी हुई मुट्ठियों का संसार। यह अपनी कहन और संवेदना में बहुत सहज हैं। व्यथाएँ इनमें भी लहराती हैं, भीतर की ध्वनि तरंगें नृत्य के लिए विवश भी करती हैं, उपचार के व्यावसायिक लोभ बीमार के मनोविज्ञान को कुंठित भी करते हैं, पुलिसिया हरकतें सुरक्षा के सधे रास्तों को खरंजा भी बना देते हैं, बुज़ुर्गों की उपेक्षा के अनाचार समाजशास्त्र को जीने योग्य नहीं रहने देते, बेटी का जन्म परिवार में सन्नाटा पैदा कर देता है, भ्रष्टाचार नित नए अनुबंधों से पतनशील मूल्यों को आम बना देते हैं, ग़रीबों पर सदैव बेईमानी का शक करती पूँजी की नज़रें तीखी हो जाती हैं। इन सभी परिस्थितियों में कोई भी शब्द और समय-सजग रचनाकार नि:शब्द कैसे हो सकता है! ये अनेक सामाजिक, पारिवारिक, नैतिक, प्रशासनिक और अंतरात्मा को संवेदित करते सरोकार इस लघुकथा संग्रह में पाठक को जगाते हैं बदलाव की पैरवी करते हुए।

इसीलिए इन लघुकथाओं का तनी हुई मुट्ठियों से अलग एक ध्रुव भी है जहाँ बदलाव की गीली ज़मीन है। मानसिकता में भावनात्मक स्पर्श है और सांस्कारिकता का उपदेशविहीन संदेश भी। लेखिका ने तमाम सामाजिक जड़ताओं, उजड़ते संस्कारों, वृद्धावस्था की बेचैनियों, अनाथ बच्चों में सिसकते सूनेपन, रिश्तो में उभरती दरारों, वृद्ध और युवापन के टकरावों, मातृत्व की सिकुड़ती परिधियों, मृत्यु के परिदृश्य में सामाजिक दायित्व के बीच भी कोमलतम मानवीय पहलू को बिना शिक्षाबोध, दृष्टांत या उपदेशात्मकता के साथ सिरजा है, जो व्यक्ति और समाज के सोच में भावांतर के लिए मन को स्पर्शिल बना देता है। आखिर साहित्य ही है जो तमाम विकृत मानसिकताओं को एक छोर तक ले जाता है और उसी परिदृश्य में उन भावों का कथाविन्यास भी करता है जो बदलाव और रूपांतरण की ज़मीन तैयार करते हैं। एक तीसरा पक्ष भी इन लघुकथाओं का है, जहाँ नि:शब्दता तो दूर व्यंग्य और प्रहार अपने शब्द-कर्म को मारक बना देते हैं। अस्पतालों में वसूली के मनोविज्ञान, पुलिसिया चरित्र में दलाली की साँठगाँठ, मीडिया के दाँव पेच, सरकारी कार्यक्रमों में बेखौफ उचक्के नेताओं के लाभवादी गणित, लड़की पैदा होने के सन्नाटे की लिंगभेदी सोच, गुलामी का गले का पट्टा जैसे अनेक कथानक व्यंग्य की ही अपेक्षा करते हैं, लाइलाज विकृतियों पर मारक प्रहार।

पहले पक्ष को अपने कथाविन्यास में रचती कुछ लघुकथाएँ उल्लेखनीय हैं, जहाँ यथार्थ खुलकर खेलता है। ये ज़मीनें केवल खुरदरी नहीं हैं बल्कि पतनशीलता, सामाजिक- प्रशासनिक और पारिवारिक परिदृश्य को मन:स्थितियों के अनुरूप रचती हैं। इनकी पीड़ाएँ नि:शब्द नहीं रहने देतीं। 'दबे पाँव' मैं कीड़े को घटकती हुई छिपकली के सांकेतिक प्रतीक और समानांतर कथाविन्यास में अस्पतालों की लूट और रोगियों को भय के मनोविज्ञान से पस्त करने वाली त्रासद वास्तविकता व्यक्त हुई है। सलाह, चाल, डर लघुकथाओं में पुलिसिया चरित्र और साँठगाँठ की दलाली। पर पारिवारिक, सामाजिक धरातल पर दुआ, माँ, पिन ड्रॉप साइलेंस, कुदरत की नैमत जैसी लघुकथाएँ सिकुड़ते मन, वृद्धों के पिता, छीजती हुई सेवा भावना, कन्याओं के प्रति सामाजिक उदासीनता और परिवार की अपेक्षा कुत्तों के प्रति लगाव को दर्शाती है। उगाही, सक्षम, निक्कू नाच उठी, मंथन, सकल तीरथ, जीत, पिघलता पत्थर, संकल्प, एक समय की बात जैसी लघुकथाएँ उन मूल्यों को सिरजती हैं, जो मानवीय अर्थवत्ता का सांस्कृतिक परिष्करण है।

'नि:शब्द नहीं मैं' की लघुकथाएँ अपने कथा विन्यास में कथानक को कभी नहीं छोड़तीं। इनमें कथाकथन उतार-चढ़ाव, मनोव्यथा, चारित्रिक गठन और अंत में नुकीले स्पर्श या व्यंग्य बहुत सहजता से विन्यस्त हैं। सैद्धांतिक विमर्श इनमें घंटी बजाता ही नहीं, इसलिए कथा मंथर गति से अपने उद्दिष्ट की ओर जाती है, अलबत्ता कहानी बनने से पहले ही अपने लघु रूप में सिमट जाती हैं। लेखिका किसी उद्देश्य को खूँटे की तरह गाड़ कर आगे नहीं बढ़ती, पर यथार्थ की खुरदरी ज़मीन के साथ वह उस नरमीली ज़मीन को भी तलाशती हैं जहाँ भावों का सिंचन कथा-बीजों से नए मूल्य उगा सकता है। कहीं वह प्रतीकों से तो कहीं द्वंद्वों से भाव बोध को मुखर करती हैं।

❐❐❐

36, क्लीमेन्स रोड, सरवना स्टोर्स के पीछे पुरुषवाकम्, चेन्नई (तमिलनाडु) 600007
ई-मेल : balulalachha@yahoo.com
मोबाइल : 9425083335

# पुस्तक समीक्षा

# कई-कई बार होता है प्यार

**समीक्षक : डॉ. भावना**

**लेखक : अशोक सिंह**

**प्रकाशक : बोधि प्रकाशन**

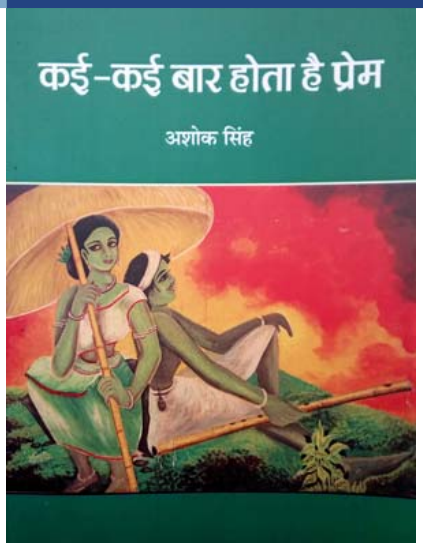




''कई –कई बार होता है प्रेम'' प्रगतिशील, प्रतिबद्ध एवं प्रयोगधर्मी युवा कवि अशोक सिंह का सद्य प्रकाशित काव्य–संग्रह है, जो बोधि प्रकाशन से छप कर आया है। अशोक सिंह का यह संग्रह कई मायनों में ख़ास है। परिवार व समाज की घटनाएँ संवेदना के केंद्र में हैं। कवि ने परिवार में रोज़ घटित होने वाली घटनाओं व प्रसंगों को कविता का विषय बनाया है, चाहे मध्यमवर्गीय परिवार की कमर–तोड़ महँगाई का एहसास हो, या माँ का स्नेहिल स्पर्श। दादी का जाना हो या अपने गाँव की पुश्तैनी ज़मीन के बिकने की ख़बर। संवेदनाओं की बुनियाद पर टिके हर रिश्ते पर कवि की पैनी नज़र है। कविता को रचते हुए कवि स्वयं को रचता प्रतीत होता है। संग्रह की पहली कविता 'माँ का ताबीज़' कई अर्थों में एक अद्भुत कविता है। कवि यूँ तो ताबीज़ पर विश्वास नहीं करता। फिर भी वह माँ का दिया ताबीज धारण करता है। यह कहते हुए कि ''मैं ताबीज़ नहीं तुम्हारा विश्वास पहन रहा हूँ माँ'' यह माँ के प्रति अद्भुत सम्मान एवं स्नेह का ही प्रतिफल है। माँ के प्रति यही अगाध प्रेम आज के जीवन से गायब हो गया है। तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग प्रगतिशीलता की आड़ में अपने सिद्धांतों के लिए बड़े–बुज़ुर्गों की अवहेलना करने से भी नहीं चूकता। मुझे नहीं पता कि बुज़ुर्गों की इच्छाओं का सम्मान न कर हम कौन–सी प्रगतिशीलता का परिचय देते हैं। मुझे यकीन है कि अशोक सिंह की यह कविता नई पीढ़ी को अपने पूर्वजों के प्रति सम्मान रखने को अवश्य प्रेरित करेगी। संग्रह में कुल 68 कविताएँ हैं, जो शुरू से अंत तक पाठकों को खुद से जोड़ने में पूर्ण रूप से सक्षम हैं। संग्रह की तमाम कविताएँ कवि के भोगे हुए क्षण की सहज–सरल अभिव्यक्ति है, कहीं से भी काल्पनिक होने का भ्रम पैदा नहीं करती। संग्रह की तमाम कविताएँ न केवल भाषा, शिल्प और संप्रेषण के स्तर पर नवीनता लिए हुए हैं, अपितु कविता की अंतर्वस्तु को युगानुकूल सामाजिक चेतना देकर प्रासंगिक बनाने का हुनर भी अशोक सिंह रखते हैं। यही तेवर उन्हें अपने समकालीनों से अलग करता है। एक सभागार में बुद्धिजीवी, यह चुप रहने का वक्त नहीं है, हमें कुछ करना चाहिए, कितना मुश्किल है, कोई तो है सुनील भाई, जैसी कविताओं से गुज़रते हुए आज के बदलते परिवेश और उसकी धड़कनों को सहज ही महसूस किया जा सकता है तथा एक सहज, सहृदय कवि की बौद्धिकता की चमक को भी देखा –समझा जा सकता है।

संग्रह में समाज की विसंगतियों एवं विकृतियों को ध्यान में रखकर भी कई कविताएँ कही गई हैं। 'जवान होती लड़कियाँ' में जब कवि कहता है कि ''जवान होती लड़कियाँ जानती हैं/उसके समय का सबसे ख़राब समय चल रहा है यह/वे ये भी जानती हैं/कि एक ऐसे समय में जी रही हैं वे/ जहाँ ख़तरनाक होता है मुस्कुराना'' तो बरबस ही समाज का असली चेहरा हमारे सामने आ जाता है। आज लड़कियाँ कहीं भी सुरक्षित नहीं हैं। न घर में, न ही विद्यालय में, न ही ऑफिस और न ही राह चलते हुए ही। अख़बार की कतरनें गवाह हैं कि किस कदर आज लड़कियाँ बलात्कार और यौन शोषण का शिकार हो रही हैं। ऐसे बर्बर और अराजक समय में स्वाभाविक है कि लड़कियाँ अपनी हँसी भूल गई हैं।

अशोक सिंह एक ऐसे कवि हैं जो न तो खुद को नारीवादी कवि होने का मुगालता पालते हैं और न ही स्त्रीवादी सोच का प्रदर्शन ही करते हैं। अशोक सिंह बिना लाउड हुए बड़ी शिद्दत से स्त्री के तमाम रूपों को अपनी कविता का विषय बनाते हैं। जैसे ''बहनें और घर'' कविता में लिखते हुए वे कहते हैं कि ''वे जानती हैं/पिता को चाहिए कब कौन–सी दवा/और माँ के मंदिर जाने के पहले/रख आती हैं उसकी साजी में फूल/वे होती हैं/माँ का हाथ/पिता की आँखें/घर की ताज़ा हवा।'' उनकी दूसरी कविता ''बेटियाँ'' भी कुछ इसी तरह के भाव लिए हुए है। कवि कहता है कि ''घर का बोझ नहीं होती हैं बेटियाँ/बल्कि ढोती हैं घर का सारा बोझ।'' ''औरतें'' शीर्षक कविता में कवि औरत के जीवन को व्यक्त करते हुए कहता है कि ''वे सोती हैं/सोता है घर/करवट लेती हैं/बदलता है युग/बावजूद इसके पूरे घर में बिछी/वह नहीं जानतीं/उन्हीं से बाकी है/धरती की सिहरन।''

अशोक सिंह ने अपने व्यवहारिक जीवन में प्रेम को बड़ी संजीदगी से जिया है। कहीं उनका प्रेम आठवीं कक्षा के छात्र का किशोर व अबोध प्रेम है, जिसे प्रेम आकर्षित करता है। पर वह उसकी गहराई को नहीं जानता। उनका प्रेम ईश्वरीय नहीं मानवीय प्रेम है। निरपेक्ष नहीं, सापेक्ष है। ''मुझे ईश्वर नहीं तुम्हारा कन्धा चाहिए'' कविता में वे कहते हैं कि ''मुझे सिर झुकाने के लिए/ ईश्वर नहीं /सिर टिकाने के लिए/एक कंधा चाहिए /और वह ईश्वर

नहीं/तुम दे सकती हो।'' तो, स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें प्रेम की दिलासा नहीं बल्कि प्रेम का स्पर्श चाहिए। प्रेम की कल्पना में जीने वाला कभी यथार्थ की इतनी सच्ची तस्वीर पेश कर भी नहीं सकता। कवि की नज़र में प्रेम किसी प्रेमी की ताक़त होना चाहिए, कमज़ोरी नहीं। ''मैं तुमसे इसलिए प्रेम नहीं करता'' शीर्षक कविता में कवि कहता है कि ''मैं तुमसे इसलिए/प्रेम नहीं करता कि/तुम्हारे पीछे दौड़ते-भागते/बेकार, निकम्मा, अपाहिज हो जाऊँ/बल्कि इसलिए करता हूँ प्रेम/कि तुम्हारे कदमों से चलकर/अपनी मंज़िल को पा सकूँ।'' यानी कि कवि प्रेम के सहारे दुनिया जीतने का ख़्वाब लिए उस रास्ते चल पड़ा है। पर जब उसे पता चलता है कि वह उसके पीछे दौड़ते-भागते दुनिया की नजर में बेकार और निकम्मा साबित हो गया है। तो वह सचेत हो जाता है। अपनी टूटन, बिखरन को शब्दों में पिरोते सँभलने की कोशिश में कई बार टूटता-बिखरता है। पर, उसे भुला नहीं पाता। ''काश एक बार फिर तुम जीवन में आती'' कविता में कवि कहता है कि ''काश एक बार फिर/तुम जीवन में आती/और मैं हर रोज तुमसे/किसी दार्शनिक की तरह/जीवन और मृत्यु के बीच/प्रेम के महत्त्व पर चर्चा करता।'' कविता संग्रह के शीर्षक वाली कविता ''कई-कई बार होता है प्रेम'' जीवन में एक बार होता है प्रेम की धारणा से अलग प्रेम को अलग तरह से परिभाषित करता नज़र आता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि अशोक सिंह का यह संग्रह पाठक को आज की गद्यात्मक कविताओं से इतर पूर्ण रूप से बाँधे रखने में सक्षम है। कवि ने संग्रह की कविताओं में परिवार, समाज व आपसी रिश्तों को केंद्र में रखा है। काव्य-भाषा में नयापन है। कई कविताओं के बिंब मन मोह लेते हैं। कवि ने प्रेम को विविधता के साथ विस्तृत आयाम दिया है। हालाँकि कई कविताओं में दुहराव भी दिखता है, जो कविता की धार को कुंद करता है, बावजूद इसके यह काव्य-संग्रह पठनीय है।

❐❐❐

सम्पर्क : बलुआ निवास, आवास नगर,
रोड नं.-2, नियर न्यू पुलिस लाइन,
बैरिया, मुजफ्फपूर-842003 (बिहार)
मोबाइल : 9546333084

# पुस्तक चर्चा

## उस दौर से इस दौर तक

**समीक्षक : प्रतीक श्री अनुराग**
**लेखक: डॉ. मनोज मोक्षेंद्र**
**प्रकाशक: राज पब्लिशिंग हाउस**

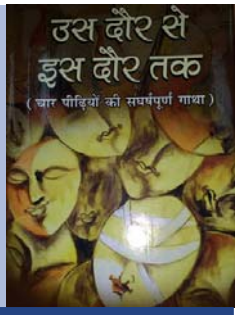


उपन्यासकार डॉ. मनोज मोक्षेंद्र के सद्य: प्रकाशित उपन्यास ''उस दौर से इस दौर तक'' की हम यहाँ चर्चा करना चाहते हैं। कुल सत्ताईस अध्यायों में लिखा गया इस उपन्यास का कथानक एक वृहत कालखंड को स्वयं में समाहित करता है। स्वतंत्रता-संघर्ष के उत्तरवर्ती काल से लेकर आज तक के दौर तक बदलते जीवन के विभिन्न प्रतिरूपों को वर्णित करने में उन्हें विशेष सफलता मिली है। बदलते इंसानी फ़ितरत को उन्होंने हमारे सामने रखा है। स्वतंत्रता की बलि-वेदी पर जो पीढ़ी अपना सर्वस्व लुटा चुकी है, उसका आशानुरूप प्रतिदान उसकी आने वाली संततियाँ देने में पूरी तरह विफल रही हैं। वे संततियाँ आपत्तिजनक बातों में संलग्न होकर आज़ादी के रणबाँकुरों द्वारा शिद्दत से कमाई गई आज़ादी को व्यर्थ गवाँ चुकी हैं। जो चुनिंदा रणबाँकुरे आज़ादी के कुछ दशकों के पश्चात् वयोवृद्ध हो गए, उनकी हालत और भी शोचनीय हो गई है। स्वातंत्र्योत्तर काल की किंकर्तव्यविमूढ़ पीढ़ी ने उनके श्रम के पुरस्कार के तौर पर उन्हें क्या दिया है-इस पर गहनता से विचार करने की आवश्यकता है। रक्तसंबंधियों से विछोह, अपने ही घर से निष्कासन, वृद्धों में अपने भविष्य की चिंता, वृद्धावस्था के कष्टकर दौर में विधुरों और विधवाओं की दुर्दशा आदि ऐसे सवाल हैं जिन पर बहुत कम कथाकारों ने लिखा है।

इस उपन्यास में लेखक ने परित्यक्त स्त्रियों, मुस्लिम परिवार में बहुपत्नी-विवाह के दुष्परिणामों को झेलने वाली औरतों, बलात्कृता, विवाहपूर्व गर्भवती हुई लड़की और दत्तक पुत्रियों की समस्याओं पर भी ध्यान केंद्रित किया गया है। ऐसी समस्याओं को केंद्र में रखकर उपन्यासकार अपने पाठकों से इनके समाधान के लिए आग्रह भी करना चाहता है। लेखक समाज के हर पुरुष से रंजन जैसा बनने की अपेक्षा करता है; तभी अनेकानेक समस्याएँ सुलझ सकती हैं। वह भावुक, प्रकृति-प्रेमी और कोमल-हृदय व्यक्ति है जिसे स्वयं के बजाय दूसरों की ज़्यादा चिंता है, कम-से-कम उनकी चिंता तो वह हमेशा करता है जो कमज़ोर, विकलांग, दलित और शोषित हैं जिसका प्रमाण वह अपने ऑफ़िस में रहते हुए दे चुका है। बहरहाल, लेखक उसके माध्यम से पुरुष-विमर्श के लिए बौद्धिक समाज को आमंत्रित करना चाहता है। उसके सद्गुण ही उसकी कमज़ोरियाँ बन जाते हैं जिनका अनुचित लाभ स्त्रियों का एक संगठित समूह उठाता है। दकियानूस स्त्रियों का एक पूरा समूह, जिसमें उसकी पत्नी भी शामिल है, उसके और उसकी अच्छाइयों के विरुद्ध खड़ा है।

कथानक का विस्तार सोची-समझी रणनीति के अनुसार किया गया है और उपकथाओं के तंतुओं से बुना गया है। पाठकों के लिए वह विभिन्न स्थलों पर सबक और उपदेश देता हुआ भी नज़र आता है। पात्रों के मनोविज्ञान को भली-भाँति निरूपित करते हुए, वह उनके स्वभाव को रूपायित करता है। दरअसल, इस उपन्यास में मुख्य धारा से भटका हुआ एक पूरा समाज है जिसे दिशा-निर्देशित करने की कोशिशों के तहत एक सशक्त कहानी से रू-ब-रू कराया गया है।

❐❐❐

प्रधान संपादक 'वी विटनेस' गिरि नगर वाराणसी (उ. प्र.)
ईमेल: wewitnesshindimag@gmail.com
मोबाइल : 09648922883; 9129872300

# पुस्तक समीक्षा

## वार्ता का विवेक

**समीक्षक : प्रो. बी. एल. आच्छा**

**लेखक : राकेश शर्मा**

**प्रकाशक : भावना प्रकाशन**

लेखक का रचना संसार भले ही शब्दों में उतरकर प्रकाशित हो जाता हो पर बहुत कुछ छूटा रह जाता है। असल में परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी वाणी की अपनी भूमिकाएँ हैं, लेखक चाहकर भी परावाणी को वैखरी में हू-ब-हू तब्दील नहीं कर पाता। इसीलिए पेट की बोली और कण्ठ की बोली का बलाघात अलग ही होता है। यह भी कि रचना के साथ उसकी पृष्ठभूमि या रचना-प्रक्रिया का नेपथ्य सामने नहीं आता। कई रचनाएँ अपने परिवेशगत भूगोल में अधिक अर्थवान होती हैं। कई बार उसकी अवधारणाएँ अपने समकालीनों से टकराती हैं और सवालों से घिरती हैं। कई बार रचना की अर्थच्छायाएँ पाठक से दूरी बनाए रखती हैं और उनके उत्तर लेखक से ही प्राप्त होते हैं। ऐसे में साक्षात्कार के सवाल लेखक को उकसाते हैं, उलझाते हैं और वह सब कहने को मजबूर करते हैं, जो रचनाओं में बसा है। या कि समकालीन परिदृश्य में लेखकीय पक्ष को सरेआम करना होता है, जो भले ही रचनाओं का विषय न हो पर समकालीन, चिन्ताधाराओं से ज़रूर जुड़ा है।

'वार्ता का विवेक' इस दृष्टि से काफी सकारक और सार्थक संग्रह है, साक्षात्कारों का। राकेश शर्मा ने रचनाकारों के रचना संसार से अंतरंग होकर सवाल किए हैं, जो साहित्य के साथ सांस्कृतिक परिदृश्य और रचनाकारों के निजी वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हैं।

इन ख्यातनाम रचनाकारों में हमारे देश का सांस्कृतिक कालमान और हज़ारों साल की शब्द-यात्रा की निरन्तरता का स्वर सुना जा सकता है। अँग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर रमेशचन्द्र शाह ने वैदिक वाणी से लेकर गाँधी, अरविन्द के रास्ते गुज़रते हुए अपने समकाल को तरजीह दी है- 'काल जो अविच्छिन्न हैं, अटूट श्रृंखला है। सबसे महत्त्वपूर्ण है तो वर्तमान का क्षण ही है, वर्तमान के क्षण में ही अतीत और भविष्य मिलते हैं।' वेदों की जीवन विधायक वाणी के साथ देव-मूर्तियों में वे सौन्दर्य दृष्टि और धर्म भावना का मेल देखते हैं, पर 'गोबर गणेश' उपन्यास की रचना भी करते हैं। मैथिलीशरण गुप्त, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, अज्ञेय और समकालीन कवियों के साथ पुनर्जागरण के चिन्तकों के अन्तरंग स्वर को व्यक्त करते उनके उत्तर हमारी जीवनी शक्ति के व्यंजक हैं।

नरेन्द्र कोहली ने पौराणिक सन्दर्भों को समकालीनता के साथ जोड़कर सांस्कृतिक और सामयिक दृष्टि को उकेरा है। राम, युधिष्ठिर, कृष्ण, विवेकानन्द आदि को उपन्यासों के कथानक बनाने वाले कोहली जी कहते हैं- 'पश्चिम का बल बाहर की तरफ है, भौतिक संसार पर अधिक रहा है, हमारा भीतर की तरफ रहा है, जिसकी निरर्थरकता को पहचानकर हम भीतर की ओर मुड़े हैं।' इसीलिए वे कार्बन डेटिंग से इतिहास की तथ्यात्मकता को स्वीकार नहीं करते। और यह भी कहते हैं कि ये इतिहासकार रामसेतु के साथ रामेश्वरम्, धनुषकोटि और रामनाल, यहाँ तक कि सौ वर्ष पुराने वहाँ के राज परिवार के तथ्यों की अनदेखी भी करते हैं। इसीलिए वे माइथोलॉजी में भी इतिहास की तलाश करते हैं, पुराण-कथाओं के गैप्स में भी इन आंतर सत्यों को मौलिक बनाते हैं। रचना प्रक्रिया, रचनाकार के भीतर की अंत:सलिला, ऐतिहासिक-आध्यात्मिक सम्पदा, समकालीन चिन्ताएँ, व्यंग्यात्मक सृजन जैसे कई बिन्दुओं पर उनकी चिन्तना किए गए सवालों से उकसकर व्यक्त हुई है।

स्वर्गीय कृष्णदत्त पालीवाल दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष रहे और विदेशों में विजिटिंग प्रोफ़ेसर भी। उनकी मान्यता है कि राहुल सांकृत्यायन और रामविलास शर्मा भारतीय अस्मिता के प्रचेता है। रामविलास शर्मा ने तो मार्क्सवादी चिन्तन की तमाम धाराओं का साहित्य में भारतीयकरण किया है। जातीय कवि में वे तुलसीदास को शीर्षस्थ मानते हैं और भारतीय अस्मिता के लिए विवेकानन्द और रामकृष्ण परमहंस के परिप्रेक्ष्य में निराला जी का आख्यान करते हैं। डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने पश्चिमी काव्यशास्त्र के साथ भारतीय काव्यशास्त्र को रखते हुए कहा है कि अनेकार्थकता, लालित्य बोध, टेक्स्ट और इंटरटेक्स्ट, थ्योरी ऑफ़ डिस्कोर्स, रोमांटिक चेतना, ट्रेडिशन, पोस्ट मॉडर्निज़्म आदि को भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखना हो तो रस और वक्रोक्ति सिद्धान्त, षड्रसवाद, नागेश भट्ट और मल्लिनाथ की टीकाओं, कालिदास के पुराणमित्येव न साधु सर्वं, शब्दार्थ के वक्रव्यापार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की हृदयवाद से इतर बौद्धिक व्याख्याओं तक जाना होगा। पर उन्होंने आलोचना के शुक्ल-प्रस्थान के अन्तर्विरोधों, पश्चिमी आधुनिकता के सन्दर्भ में अरविन्द की मान्यताओं, मुक्तिबोध की 'अँधेरे में' को अस्तित्ववादी मंडल में लाने की कोशिशों और मुक्तिबोध की गाँधी के सम्बन्ध में तथाकथित व्याख्याओं पर खुलकर विचार रखे हैं। यही नहीं "अज्ञेय पूँजीपति थे और

मुक्तिबोध मार्क्सवादी, इन धारणाओं का भी वे मुक्तिबोध, अज्ञेय के बीच की पत्रावली के माध्यम से खण्डन करते हैं। आलोचना में कृति केन्द्रित समीक्षा की वकालत करते हैं।

प्रेमचन्द साहित्य के गवेषक और आख्याता कमलकिशोर गोयनका की मान्यता है कि साहित्यकार प्रकृति से ही प्रगतिशील होता है। लंदन में मुल्कराज आनन्द और सज्ज़ाद ज़हीर ने प्रगतिशील राइटर्स एसोसिएशन बनाया था। प्रेमचन्द असल में न तो मार्क्सवाद से जुड़े हैं, न विचारधारा से। वे तो भारतीयता के बड़े लेखक थे। वे पुरातन भारतीय मूल्यों के साथ पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान की स्वीकृति के बावजूद, पश्चिमीकरण के बजाय गाँधी के हिन्द स्वराज के हिमायती थे। प्रेमचन्द का पूरा साहित्य गाँधीवाद का साहित्यिक संस्करण है। प्रेमचन्द के साहित्य में दलित चेतना और प्रेमचन्द-प्रसाद के साहित्यिक तेवर भी उनके साक्षात्कार का हिस्सा है।

विजय बहादुर सिंह ने आर्य समाजी उत्थान को प्रगतिशील ही माना है, एक तरह का वामपंथ। पर निष्कर्ष यह भी है कि मार्क्सवाद एक औद्योगिक सभ्यता का चिन्तन है। भारत में हल्का-फुल्का पूँजीवाद था, जिसे रामविलास शर्मा साहूकारी पूँजीवाद कहते हैं। वे केवल कृतिपरक आलोचना के बजाय मूल्य केन्द्रित आलोचना के विश्लेषी पक्षधर हैं। इसीलिए भाव-संसार की सामाजिक पक्षधरता को केन्द्रीय बनाते हैं। वामपंथ के बारे में वे कहते हैं कि सांस्कृतिक सुगंध को समझे बगैर वामपंथ छद्म या हवाई होगा। कला-मूल्य उनके लिए उतना स्वीकार्य न हो, पर शिविरबद्धता को लोक का सच नहीं मानते। वे लोक संवेदना को मानव केन्द्रित नहीं बल्कि प्राणिलोक के मंगल से योजित करते हैं।

प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित का अकादमिक संसार बहुत उजला है। छायावादी कविता के सौन्दर्य विधान पर उनका शोधकार्य बहुत चर्चित रहा। हिन्दी में रोज़गार की दृष्टि से प्रयोजनमूलक हिन्दी के लिए लेखन के साथ विश्वविद्यालयीन पाठ्यक्रमों में नियोजन के लिए कार्य किया। भाषा प्रौद्योगिकी और उसकी विश्वस्तरीय उपयोगिता को प्रबंधन के आयाम दिए। हिन्दी में बदलाव और अँग्रेज़ी शब्दों के बढ़ते उपयोग को वे नकारात्मक दृष्टि से नहीं देखते। पर चीनी-मंदारिन लिपि सीखने की कठिनाई के संदर्भ में हिन्दी को आसान एवं विश्वभाषा के नज़दीक पाते हैं। वे हिन्दी की शुद्धता की अपेक्षा लोकप्रियता के हिमायती हैं। साहित्यिक आलोचना में रंग विशेष की विचारधारा को हित साधक नहीं मानते, बल्कि आलोचकीय बेईमानी की बढ़त भी।

डॉ. देवेन्द्र दीपक पुनर्मूल्यांकन को साहित्य की अनिवार्य प्रक्रिया मानते हैं। पाठक वर्ग में साहित्यिक संभावना को जगाने के लिए वे उनके स्तर तक जाने की वकालत करते हैं, तो व्यावसायिक युवाओं की पठनशीलता को केवल गंभीर साहित्य तक सीमित नहीं करते। आज़ादी के आन्दोलन के परिप्रेक्ष्य में वे कहते हैं कि त्याग की हवन-संस्कृति अब भवन-संस्कृति में बदल गई है। वेदान्त, समरसता, निराला, मार्क्सवाद, विश्व-बंधुत्व, अध्यात्म, अस्पृश्यता आदि के सम्बन्ध में डॉ. दीपक ने विश्लेषणात्मक निष्कर्ष दिए हैं।

कथाकार बलराम ने गाँव की पृष्ठभूमि से निकलकर अपनी सृजन यात्रा का उपन्यास कहानियों के सन्दर्भ में आख्यान किया है। सारिका, दैनिक आज आदि में फीचर संपादक रहते हुए उन्होंने 'कलम हुए हाथ', 'मृगजल', 'जननी-जन्मभूमि' जैसे कहानी-संग्रहों तथा काश (उपन्यास) के साथ कई संस्मरणात्मक पुस्तकों की रचना की। प्रेमचन्द रचनावली के साथ 'विश्व लघुकथा कोश' का सम्पादन किया। पत्रकारिता में उनकी सम्पादकीय यात्रा के साथ के अनुभव भी साझा हुए हैं और संघर्ष भी।

मंचीय कविता के सशक्त हस्ताक्षर के रूप में गीतकार भारत भूषण गीत और प्रेम के सहचार को संवेदनीय बनाते हैं। 'राम की जल समाधि' गीत की मौलिकता, पारंपरिक गीत और नवगीत के फर्क एवं आधुनिक परिप्रेक्ष्य में संवेदना को लेकर बातें भी की हैं और गीत भी प्रस्तुत किए हैं।

सूर्यप्रकाश चतुर्वेदी अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर रहे पर उनका योगदान हिन्दी में लिखी खेल पुस्तकों के कारण पुरस्कृत हुआ है। यह भी हिन्दी लेखन का नया पन्ना है, प्रयोजनमूलक हिन्दी के नज़रिए से। वे हिन्दी कवि सम्मेलनों के खासे श्रोता रहे, पर आज की मंचीय कविताई से ठहरे से हैं। पर उर्दू में खुमार बाराबंकी से खासे परिचित। खेल पत्रकारिता के साथ उनके अनुवाद भी। कर्नल सी के नायडू पर पूरी पुस्तक। श्री मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति के सर्वोच्च कार्यकारी होने के नाते वे चाहते हैं कि जितनी भी प्रवृत्तियाँ, तकनीक, ज्ञान-विज्ञान की दिशाएँ हों, हिन्दी उनमें चल निकले और बोलियों के साथ देवनागरी लिपि की केन्द्रीयता बने। इस साक्षात्कार के अंतरंग भी संजय जगदाले एवं सुशील दोषी के वक्तव्य भी शामिल हैं।

इतिहासकार एवं उपन्यासकार शरद पगारे ने आठ उपन्यासों एवं पाँच कथा-संग्रहों के माध्यम से ख्याति पाई हैं। माखनलाल चतुर्वेदी एवं किशोर कुमार की जन्मभूमि खंडवा में जन्मे पगारे जी ने बचपन में सुभद्राकुमारी चौहान, प्रेमचन्द, विष्णु प्रभाकर, जैनेन्द्र, शरच्चन्द्र के साहित्य को पढ़ा। 'गुलारा बेगम' की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में वे मानते हैं कि तथ्य और कल्पना के योग से ही सच्चा सृजन होता है।

बालकवि बैरागी से साक्षात्कार इस पुस्तक की उपलब्धि है। अभावों की खुरदरी ज़मीन पर साहित्य का यह प्रवाह कैसे बह निकला, पूरी व्यथा कथा का फलित बहुत यशस्वी है, जिसमें लोक साहित्य-सी सरसता है, राष्ट्रीय जागरण के आह्वान में, दीप की सी त्यागमय उज्ज्वलता है। राजनीति के शीर्ष पर मर्यादाओं के मूल्य हैं। गलियों के भिखमंगे से राष्ट्रीय स्तर पर पहचान बनाने वाले साहित्य और फ़िल्मी दुनिया के गीतकार ने बेबाक कहा है, गरीबी में स्वाभिमान और जन-सहकार को मान दिया है, पर भावों को आँसुओं के गलनांक तक पहुँचाते इस साक्षात्कार में कई वाक्य हिला देते हैं-''मेरी माँ मर गई तब तक उसके पल्लू में एप्लिकेशन लिखने से मिले दो आने पैसे बँधे रहे कि ये मेरे बेटे की पहली कमाई है।'' और पत्नी की मृत्यु के समय वह त्याग -''अगर तू नहीं रहेगी तो मेरा तो मुख्य श्रोता ही चला गया। क्या सुनाएँ किसी को?'' पत्नी को कंठ ही दे दिया। शिवमंगल सिंह सुमन, पी.डी. शर्मा,

श्याम सुन्दर व्यास जैसे गुरुओं के प्रति कृतज्ञ प्रणिपात भी। असल में बालकवि की स्मृतियों में गहरे स्पर्श हैं, संवेदना के, हर रूप के। हिन्दी के लिए उनकी अवधारणा साफ है –''जैसी हिन्दी आ रही है, आने दो रोको मत।'' 'तू चन्दा मैं चाँदनी' के रेशमा-शेरा फ़िल्म के गीत के साथ फ़िल्मी गीतों की भी उनकी दुनिया है। अपने संसदीय जीवन और मध्यप्रदेश सरकार में मंत्रित्व काल के संस्मरणों में उनका दमकता बेलौस और संयमित व्यक्तित्व इन संवादों में झलकता है। शायद यह उनके जीवन का अंतिम और लम्बा साक्षात्कार है।

हिन्दी के ललित निबंधकार श्यामसुन्दर दुबे की अनेक विधाओं में प्रकाशित पुस्तकें पुरस्कृत भी हैं और चर्चित भी। वे मानते हैं कि कविता में लय के अभाव से विचारों का बोझ बढ़ा है। समय के संक्रमण ने समाज में संवेदना की हानि की है तो कविता की भी हानि हुई है। आधुनिक तकनीक ने लोक का विलोपन किया है। इसी से बोली, वेशभूषा, खान-पान, तीज-त्योहार, कला-संदर्भ सभी को द्वेषता से लोक अनुभव कर रहा है। नगर बोध ने लोक में स्थाई कुंठा के साथ विस्थापन के रास्ते खोल दिए हैं। पर वास्तविकता यह है, लोक लय के पुट के बिना फ़िल्मी गाने हिट नहीं होते। जातीय स्मृतियाँ भारतीयता को पुष्ट करती है, अत: लोक की लय ज़रूरी है जीवन में। गीत-नवगीत पर लेखक ने खुलकर बात की है।

भाषा विज्ञानी एवं प्रख्यात कवि डॉ. जयकुमार जलज ने बचपन की स्मृतियों में लोक जीवन और साहित्यिक रचनाओं के आस्वादन की स्मृतियों के साथ उच्च शिक्षा काल में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वैभव को उकेरा है। निराला जी, डॉ. रामकुमार वर्मा, महादेवी, पुरुषोत्तमदास टंडन, धर्मवीर भारती जैसी हस्तियों के साथ उनकी स्मृतियाँ और साहित्यिक परिदृश्य प्रभावी हैं। उनका मानना है कि छंदबद्ध कविता चाहे अर्थ कम देती हो, पर छन्द की ताकत के बल पर दिमाग में रह जाती है। निराला ने छन्द को तोड़ा पर नई लय के साथ। पर हम उस घड़ी साज़ की तरह हैं जो घड़ी खोलकर रख देता है, पुर्जों को जोड़ना नहीं जानता। नई कविता की तरह-तरह किस्मों के सन्दर्भ में वे मानते हैं कि भारतीय समाज विशेषणों की पूजा करता है, विशेष्य की पूजा नहीं करता। यह भी कि चरम भौतिक और चरम भावनात्मक सृजन साहित्य को यथेष्ट ऊँचाई नहीं दे सकते। जलज जी ने 'भगवान् महावीर का बुनियादी चिन्तन' पुस्तिका भी लिखी है, जिसका पचासवाँ संस्करण और अब तक एक लाख प्रतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

ज्योत्स्ना मिलन कथा साहित्य की जानी मानी लेखिका हैं। नारी विमर्श के सन्दर्भ में उनकी मान्यता है कि पुरुषों से नफ़रत नहीं, अपने साथ शामिल करें। 'अपने साथ' और 'अ-अस्तु' उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंधों की, उनकी परिवेश-संरचना के सम्बन्ध में उन्होंने सकारात्मक भूमिकाओं को व्याख्यायित किया है।

चन्द्रसेन विराट यों इंजीनियर हैं, पर हिन्दी गीत-ग़ज़ल के पोएटिक इंजीनियर भी। वे ग़ज़ल को हिन्दी की सांस्कारिकता और छन्द के पैमानों में छूट के साथ विन्यास देते हैं। वे मानते हैं कि सृजन के क्षणों में पूरी कायनात होती है, जो जाति, भाषा, लिंग, वंचित-दलित नहीं देखती बल्कि संवेदना के गहन और सूक्ष्म को परिदृश्य के अनुरूप संजोती है। दुष्यंत की ग़ज़लों, गीत-नवगीत, मंचीय-साहित्यिक रचनाओं, वर्णिक-मात्रिक छन्दों पर उनके उत्तर बहुत स्पष्ट हैं।

'नई धारा' के सम्पादक शिवनारायण का मानना है कि प्रतिरोध साहित्यिक पत्रकारिता का मूल मंत्र है। वे मानते हैं कि हिन्दी ने वैश्विक स्तर पर हज़ारों भाषाओं के बीच जो पहचान बनाई हैं, वह सत्ता के कारण नहीं बल्कि लचीली बनावट और प्रयोग में सामासिक उदारता के कारण। जनपक्षधरता और धर्मनिरपेक्ष जीवन-मूल्यों के साथ समरस-सामासिक जीवन उनकी रचनाधर्मिता का अंग है।

कथाकार-व्यंग्यकार सूर्यकान्त नागर रचनाओं में 'स्व' के अति आग्रह को रचनाधर्मिता में बाधक मानते हैं। बचपन की शाजापुरिया स्मृतियाँ, इन्दौर में साहित्यिक-समवाय को दृश्यमान करते हुए वे अपनी रचना प्रक्रिया, कल्पनाशीलता, प्रतिबद्धता, सामाजिक सरोकारों को समकालीनता के सन्दर्भ में व्याख्यायित करते हैं।

'तार सप्तक' के कवि राजकुमार कुम्भज ने कविता में संवेदना के पक्ष को केवल जोड़ने तक नहीं बल्कि मुक्त करने की अन्तरंगता के साथ लक्षित किया है। वे मानते हैं कि कविता में भी कुछ शीर्ष हम कह नहीं पाते तो गद्य के पास जाना पड़ता है। कविता के बाज़ारीकरण, विचारधाराएँ और कविता में विचार, आपातकालीन परिदृश्य, पूँजीवाद और वामपंथ, अज्ञेय और प्रयोग, जैसे अनेक विषयों पर उनकी मंत्रणाएँ उनके वक्तव्यों में स्पष्ट हुई हैं।

कवि कृष्णकान्त निलोसे मानते हैं कि कविता या सृजन का स्वप्न छोटा है या बड़ा; समय ही बताता है। विचारधाराओं के अंधानुकरण, राजनीति और साहित्य की सहभागिता, आपातकाल, भारतीय चेतना की वैश्विकता, प्रेम की दरकार जैसे अनेक विषयों पर उनकी टिप्पणियाँ बेलाग है।

व्यंग्यकार जवाहर चौधरी मानते हैं कि हमारे समय में सामाजिक जटिलता बढ़ी है। सभ्यता के आवरण में लोग दूसरे ही रूप में विचर रहे हैं। इन्हीं विसंगतियों को व्यंग्य पकड़ता है और मार करता है।

दरअसल साक्षात्कारों के ये मर्म सामाजिक परिदृश्य में साहित्य की स्थिति को ही रेखांकित नहीं करते बल्कि विवादों-संवादों के साथ ऐतिहासिक सृजन, विवादों के मत-मतांतर, विचारधाराओं की उखाड़-पछाड़, संवेदनाओं की साहित्यिक रचना प्रक्रिया, विधाओं के वैशिष्ट्य और रचनागत बदलाव, रचनाकारों के बचपन के परिदृश्य, मौलिक सृजन की अवधारणा, समकालीन जीवन में साहित्य की स्थिति, साहित्य को जीवन-संवादी और लोक-सम्प्रेषी बनाने की ज़रूरत, तकनीक के विकास में लोक-सम्पदा की स्थिति, अकादमिक परिदृश्य जैसे अनेक पक्षों को विभिन्न अक्षों के साथ सामने लाते हैं। यह भी कि लेखन में कई बातें रचनाकार पचा जाता है, पर साक्षात्कार उसे उकसाते-उगलवा लेते हैं। कुछ साक्षात्कारों मे यह कला इसलिए उत्कट सिद्ध हुई हैं कि सवाल लेखक के साहित्य से गुज़रकर आए हैं।

❑❑❑

36, क्लीमेन्स रोड, सरवना स्टोर्स के पीछे
पुरुषवाकम्, चेन्नई (तमिलनाडु) 600007
ई-मेल : balulalachha@yahoo.com
मोबाइल : 9425083335

# शिवना प्रकाशन - नई पुस्तकें

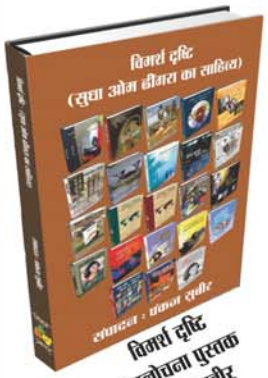


विमर्श दृष्टि
आलोचना पुस्तक
पंकज सुबीर

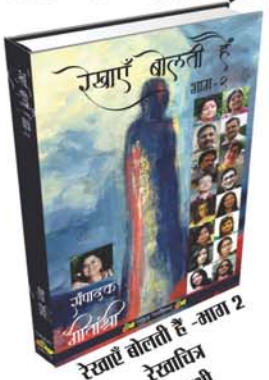


रेखाएँ बोलती हैं -भाग 2
रेखाचित्र
गीताश्री

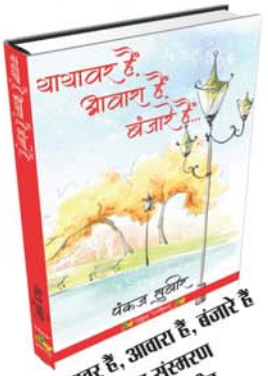


सायावर हैं, आवारा हैं, बंजारे हैं
यात्रा संस्मरण
पंकज सुबीर

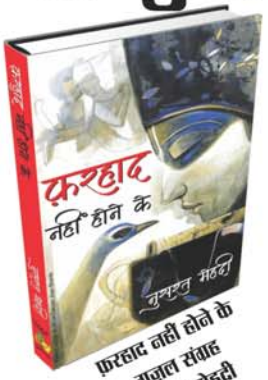


फ़रहाद नहीं होने के
ग़ज़ल संग्रह
नुसरत मेहदी

चुनी हुई कविताएँ
कविता संग्रह
राजेन्द्र नागदेव

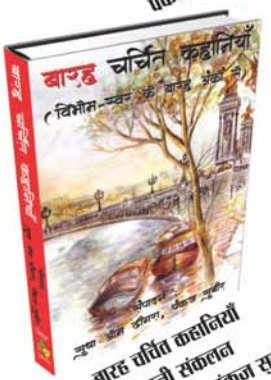


बारह चर्चित कहानियाँ
कहानी संकलन
सुधा ओम ढींगरा, पंकज सुबीर

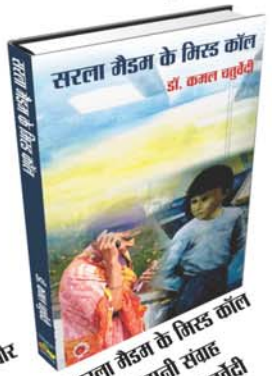


सरला मैडम के मिस्ड कॉल
कहानी संग्रह
डॉ. कमल चतुर्वेदी

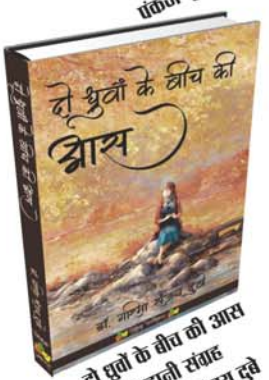


दो ध्रुवों के बीच की आस
कहानी संग्रह
डॉ. गरिमा संजय दुबे

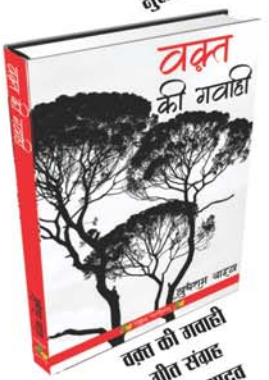


वक़्त की गवाही
गीत संग्रह
बुधराम यादव

खुद से जिरह
विनोद डेविड (कविता संग्रह)

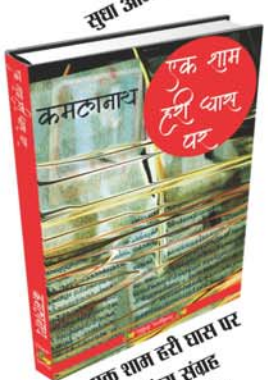


एक शाम हरी घास पर
व्यंग्य संग्रह
कमलानाथ

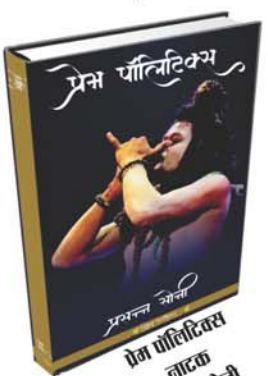


प्रेम पॉलिटिक्स
नाटक
प्रसन्न सोनी

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न
क़ानूनी शोध
शहरयार अमजद खान

# मी-टू
कहानी संग्रह
आकाश माथुर

सुख घातक है
सरोजकुमार (कविता संग्रह)

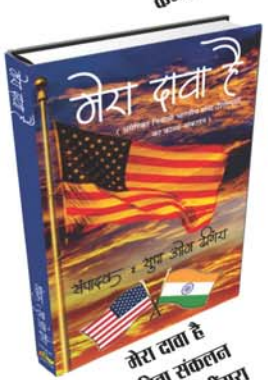


मेरा दावा है
कविता संकलन
सुधा ओम ढींगरा

कुबेर
उपन्यास
डॉ. हंसा दीप

51 किताबें ग़ज़लों की - भाग 2
पुस्तक समीक्षा
नीरज गोस्वामी

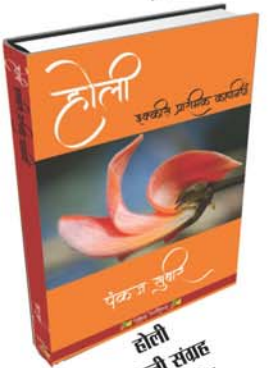


होली
कहानी संग्रह
पंकज सुबीर

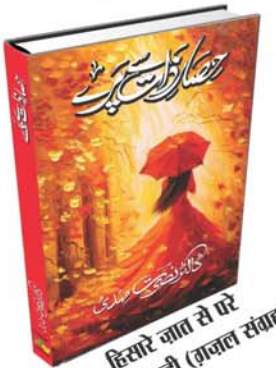

हिसारे जात से परे
नुसरत मेहदी (ग़ज़ल संग्रह)

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर

amazon
http://www.amazon.in
flipkart.com
http://www.flipkart.com
paytm ebay
https://www.paytm.com
http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

Shivna Sahityiki ● Quarterly ● July-September 2019 ● RNI : MPHIN/2016/67929 ● ISSN : 2455-9717

## ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन अमेरिका द्वारा मध्यप्रदेश के सीहोर ज़िले में सीहोर तथा आष्टा में चलाए जा रहे आर्थिक रुप से कमज़ोर परिवार की बालिकाओं के लिए निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण योजना के तहत स्थापित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित कुछ कार्यक्रम

सीहोर में चलाए जा रहे 310 बच्चियों हेतु निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण कार्यक्रम सत्र 2019-20 का शुभारंभ करते अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव। श्री समीर यादव का स्वागत करते केंद्र प्रभारी श्री सनी गोस्वामी।

सत्र 2019-20 में प्रशिक्षण हेतु चयनित बालिकाएँ कार्यक्रम के दौरान मुख्य अतिथि अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव का उद्बोधन सुनते हुए। श्री यादव ने कॅरियर को लेकर कई विषयों पर बच्चियों को जानकारी प्रदान की।

## 400 बालिकाओं को सिखाएंगे कम्प्यूटर

सीहोर। नवदुनिया प्रतिनिधि

र कोई बालिकाओं की सुरक्षा को लेकर बालिकाओं को समझाईश देता है। यह सही है, पर उतना ही जरूरी है लड़कों को समझाना। लड़के बालिकाओं के साथ अच्छा व्यवहार करें। साथ ही उन्हें समझाना चाहिए कि लड़कियों के साथ व्यवहार कैसे किया जाता है। तब ही समाज में लड़कियां सुरक्षित होंगी। उक्त बातें एसपी समीर यादव ने कहीं। मौका था विंगस फैमिली फाउंडेशन अमेरिका द्वारा संचालित निशुल्क कंप्यूटर प्रशिक्षण शिविर के शुभारंभ का। शुक्रवार को आयोजित कार्यक्रम में एसपी समीर यादव बतौर मुख्य अतिथि उपस्थित थे। उन्होंने बालिकाओं से



बालिकाओं को सुरक्षा की जानकारी देकर कम्प्यूटर के बारे में बताया। ● नवदुनिया

में बाहर किसी काम, कोचिंग व कॉलेज सहित अन्य काम के लिए जाए तो अपने परिवार वालों को इसकी जानकारी जरूर दें। साथ ही अपनी लोकेशन की जानकारी संबंधी जानकारी दी और खुलकर बोलने के लिए प्रेरित किया। कार्यक्रम के अं में छात्राओं को सीहोर पुलिस द्वा बनाए गए विशेष नंबरों के स्मार्ट का

सत्र 2019-20 में प्रशिक्षण हेतु चयनित बालिकाओं को कार्यक्रम के दौरान मुख्य अतिथि अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक श्री समीर यादव मार्गदर्शन प्रदान करते हुए। समाचार पत्रों में कार्यक्रम का कवरेज़।

सीहोर में चलाए जा रहे निशुल्क कम्प्यूटर प्रशिक्षण कार्यक्रम में सत्र 2019-20 में प्रशिक्षण हेतु चयनित बालिकाएँ ढींगरा फ़ैमिली फ़ाउण्डेशन के आधुनिक कम्प्यूटर लैब में प्रशिक्षण प्राप्त करते हुए।

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।